# विचार विहान

[ ललित लेख एवं शोध-पत्र ]

प्रो० सीताराम बाहरी

एम० ए०, एम० ओ० एल०

लोकभारती प्रकाशन

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सितम्बर, १९६४

● विचार विहान—[ ललित लेख एव शोध-पत्र ]

● लेखक—प्रो० सीताराम बाहरी, एम० ए०, एम० ओ० एल०,
मोगा ( पंजाब )

● वितरक—लोकभारती प्रकाशन,
१५ ए, महात्मा गाधी मार्ग, इलाहाबाद—१

● मुद्रक—पियरलेस प्रिंटर्स, ४ बाई का बाग, इलाहाबाद ।

[ इस पुस्तक के प्रथम सस्करण के प्रकाशनार्थ पंजाब सरकार के हिन्दी विभाग ने ९५० रुपये सहायता अनुदान के रूप मे दिये है। लेखक और प्रकाशक भाषा विभाग एव पजाब सरकार के अनुगृहीत हैं । ]

मूल्य ७ ००

# परिचय

मेरी दृष्टि से साहित्य मे निबन्ध-लेखन की कला विशेष महत्त्व रखती है। हमारे आचार्यों ने गद्य-लेखन को कवियो की कसौटी कहा है। मै निबन्ध को गद्य की कसौटी मानता हूँ क्योकि किसी विषय विशेष पर लेखक को भावना और समीक्षा के अन्तर्तम पार्श्वो से अपनी व्यक्तिगत दृष्टि और आत्मीयता निबन्ध के रूपाकार मे सुसज्जित करने की आवश्यकता होती है। भावनात्मक अन्तर्दृष्टि के साथ ही साथ विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का समन्वय जिस कौशल से करना पडता है उस कौशल का लाघव निबन्धकार के पास ही होता है। लेख और समालोचना तो सहज साध्य है किन्तु निबन्ध की साधना साहित्यकार के लिए एक विशिष्ट अन्तर्दृष्टि की अपेक्षा रखती है।

भरतेन्दु युग से आज तक गद्य-साहित्य मे अनेक विधाओ का सूत्रपात हुआ है। समालोचना तो यथेष्ट रूप से निखरती गई है। भावात्मक, तुलनात्मक, ऐतिहासिक एवं, व्याख्यात्मक समालोचना के साथ मनोवैज्ञानिक समालोचना सापेक्ष और निरपेक्ष रूप से बराबर अग्रसर हुई है। किन्तु निबन्धशैली मे अपेक्षाकृत बहुत ही कम दिशान्तर देखा गया है क्योकि वास्तव मे निबन्ध का दायित्व 'व्यास' मे उतना नही है जितना 'समास' मे है।

यह गद्य-साहित्य के लिए एक प्रेय और श्रेय प्रसंग है कि श्री **सीताराम बाहरी** का नवीनतम निबन्ध-सग्रह 'विचार-विहान' प्रकाश मे आ रहा है। इस सग्रह मे लेखक की अन्तर्दृष्टि, विषय के गहनतम पार्श्वको को स्पर्श करती हुई निष्कर्ष-विन्दु पर पहुँची है। यह विश्वास होता है कि लेखक निबन्ध की समस्त विधाओ से परिचित है। जहाँ ललित लेखो मे लेखक किसी विषय के 'सत्य' में प्रवेश कर एक भावनात्मक चित्र खीचता है और पाठक के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध जोड़ता है, वहाँ शोध-पत्रो के अन्तर्गत लेखक अन्वेषण के गहन मार्ग पर चलता हुआ सामान्य परिस्थितियो को भी उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य मे उभार

कर पाठको के सामने प्रस्तुत कर देता है। इन दोनो दृष्टियों के मध्य मे कवि के पास एक नाटकीय दृष्टि भी है जो 'साहिबज़ादो का बलिदान' शीर्षक रूपक मे स्पष्ट हुई है। छोटे-छोटे वाक्यो के विचारों की राशि सचित कर देना लेखक का कौशल है।

मै इस सफलता के लिए लेखक को हार्दिक बधाई देना चाहता हूँ तथा चाहता हूँ कि यह पुस्तक न केवल विद्यार्थियो द्वारा पढी जाय प्रत्युत् विद्वानों का वर्ग भी इसे पढकर प्रसन्न और लाभान्वित हो। लेखक के भविष्य-लेखन के प्रति मेरी अनेक शुभ कामनाएँ है।

रामकुमार वर्मा
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

साकेत, प्रयाग
७ सितम्बर, १६६४ ई०

# शीर्षकावली

## [ क ] ललित लेख

## [ख] शोधपत्र

# पूर्व-प्रकाशित लेखों की तालिका

**सन्तानोत्पत्ति और नारी** : हिन्दुस्तान साप्ताहिक, नई दिल्ली, २५ जनवरी, '५३ ।

**देवर-ननद** : हिन्दुस्तान साप्ताहिक, नई दिल्ली; ५ जुलाई, '५३ ।

**हमारा दर्पण—लोकराज** : हिन्दुस्तान साप्ताहिक, नई दिल्ली, २३ जनवरी, '५५ ।

**पंजाब के कुछ सूफी कवि** : सप्तसिन्धु, पटियाला, अगस्त, '५५ ।

**तुलसीदास जी की उपदेशात्मक कविता** : सप्पसिन्धु, जनवरी, '५६ ।

**यशपाल के निबन्धों में व्यंग्य-छटा** : यशपाल अभिनन्दन ग्रन्थ : मार्च, '५६ ।

**स्वातन्त्र्य साधना** : श्री वेंकटेश्वर समाचार, बम्बई, ७ नवम्बर, '५८ ।

**मानव जीवन का उद्देश्य** : कल्याण, गोरखपुर, जनवरी, '५९ ।

**रानी केतकी की कहानी पर फारसी प्रभाव** : सप्तसिन्धु, अगस्त, '५९ ।

**हीर रांझा ( लोक कथा )** : जागृति, चडीगढ, दिसम्बर, '६१ ।

**हीर वारिस में सांस्कृतिक चेतना** : जागृति, दिसम्बर, '६१ ।

**निराला . कुछ संस्मरण** : सप्तसिन्धु, फरवरी, '६२ ।

**साहिबजादों का बलिदान** : जन साहित्य, पटियाला, जून, '६२ ।

**यंत्र एवं यंत्रणा** : हिन्दुस्तान साप्ताहिक, ८ अगस्त, '६२ ।

**मित्रस्य चक्षु** : सप्तसिन्धु, दिसम्बर, '६२ ।

**अँधेरा ढोना** : जागृति, जनवरी, '६३ ।

**हिवै का घर** : जन साहित्य, जुलाई, '६३ ।

**आकाश थम गया** : जन साहित्य, दिसम्बर, '६३ ।

**पंजाब का चिरंतन आदर्श** : सप्तसिन्धु, फरवरी, '६४ ।

**रावण-वध के पश्चात्** : जन साहित्य, अप्रैल, '६४ ।

**सो गिरही जो निग्रह करै** : हिन्दुस्तान साप्ताहिक, अप्रैल, '६४ ।

# ललित लेख

# विचार

न विचारं विना कश्चिदुपायोऽस्ति विपश्चिताम् ।
विचारादशुभं त्यक्त्वा शुभमायाति धीः सताम् ॥
बल बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिः क्रियाफलम् ।
फलन्त्येतानि सर्वाणि विचारेणैव धीमताम् ॥

—योगवाशिष्ठ

'बुद्धिमानो के लिए विचार के बिना कोई और उपाय ईश्वर की प्राप्ति का नही है। भले लोगो की बुद्धि विचार से अशुभ को त्याग कर शुभ मार्ग को प्राप्त होती है। बल, बुद्धि, तेज और कर्म फल की प्राप्ति—ये सब विद्वानो के लिए फलीभूत होते हैं विचार द्वारा ही।'

मनुष्य के व्यवहार का वास्तविक मूल्य उसका विचार है। इसी के आधार पर उसका कार्य व्यवहार होता है और इसी के परिणाम पर वह पहुँचना चाहता है। चितन, मनन और अनुशीलन ने ही मनु, मानव अथवा मनुष्य की प्रतिष्ठा स्थापित की। इसी विचार की शक्ति से मनुष्य हाथी और शेर को अपने वश मे कर लेता है, नदियो को मोड देता है, पहाड़ो को तोड़ देता है और समुद्रो के ओर-छोर और अतस्तल का रहस्य जानता है। विचार उसके ससीम को असीम के साथ मिला देता है।

# विहान

घने अधकार मे डूबी पृथ्वी चेतनाशून्य पडी थी। फिर वह दिन भी आया जब कोहरा, कुहासा और धुँधलका मिट गया। घने बादल वर्षा कर के विलीन हो गए। सूर्य का प्रकाश उदयाचल से उमडने लगा। उसकी प्रथम किरण का वही सन्देश था जो पिता के स्नेह-सकेत का अपनी कन्या के प्रति होता है।

सूर्य की कृपा से पृथ्वी को विहान मिला था, इसीलिए सप्ताह के प्रथम दिवस का नाम रविवार पड गया।

रविवार का प्रथम विहान वास्तव मे ब्रह्मज्ञान का प्रतीक था। चेतनता के प्रथम स्पदन को सूर्य की किरणो ने ब्रह्मोन्मुख कर दिया था। तत्त्व-विचार का जन्म उसी दिन हुआ था—उसे वेद-पर्व भी कह सकते है। रात्रि एवं दिवस की उस महान सध्या को स्वप्न एव जागृति के मध्य सुषुप्ति अवस्था कह सकते हैं। विहान वास्तव मे ज्योतिर्लिङ्ग की समाधि ही है।

समस्त रचना-शक्ति विचार-विहान पर आश्रित है।

# जगत

जगत बदल कर हमारे इष्ट रूप मे ढल नही सकता। हम जगत के एक तुच्छ ग्रश हैं फिर भी उस पर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते है। हम देखते हैं कि जगत की प्रत्येक वस्तु क्षणभगुर और परिवर्तनशील है फिर भी अनेक वस्तुओ को स्थायी रूप मे बनाए रखना चाहते हैं।

बसन्त के सूखे फूलो की ओर ध्यान दीजिए। उनकी सुगन्धि उड जाती है, रंगत फीकी पड जाती है, आभा विनष्ट हो जाती है और कलियाँ सिकुड सिमट कर टूट-फूट जाती है, फिर भी हम उन्हे सजीव देखना चाहते है। कैसा भ्रम है।

हिमालय की सर्वोच्च चोटी पर चढना, गभीरतम सागर की तह तक जाना, अन्तरिक्ष मे विचरना, चन्द्रमा की सैर करना आदि अनेक प्रयत्न मनुष्य सफल बना रहा है। प्रकृति के अनेक रहस्य वह खोल रहा है, किन्तु वह अपने आपको जान नही पाया। ऊँची उडान करने के स्थान पर मनुष्य अपने अन्दर भी उतर सकता तो वह कितना महान हो जाता !

मनुष्य का दुर्भाग्य उसे अनित्य का अन्वेषक बनाता रहता है यद्यपि मनुष्य देवत्व का प्रतीक है। उसकी कल्पना नये-नये जगत रचती रहती है, वह सपनो का राजा है, फिर भी उसके मन पर भौतिकता का आतक छाया रहता है। उसे अनेक बार यह भ्रम हो जाता है कि वह केवल शरीर है, जो अन्दर बोलता है, वह भी इसी शरीर का दास है !

मनुष्य इस जगत मे ईश्वर का प्रतिनिधि है—जगन्नाथ है; मननशील कवि, कल्पनाशील चित्रकार और भविष्य-द्रष्टा दार्शनिक है। चाहे वह जगत का अंश-मात्र है किन्तु उसकी आत्मा इस ब्रह्माण्ड की स्वामिनी है। मनुष्य वास्तव में ब्रह्माण्ड जितना विशाल है, तभी वह उसके प्रत्येक उपकरण की जिज्ञासा रखता है। मनुष्य जगन्नियन्ता ही है क्योकि वह जगत-सेवक है।

# समय

समय काटने की वृत्ति जीवन-सूत्र को काटने का प्रयत्न-मात्र है। समय तो ईश्वर की भाँति अनन्त वस्तु है, उसको विनाश-शील मनुष्य कैसे काट सकता है।

समय ही मनुष्य को धीरे-धीरे समाप्त कर देता है। वह मनुष्य के वश में नही अपितु मनुष्य उसके वश मे होता है।

विजय और पराजय मे समय के एक पग का अन्तर होता है। यदि कोई इसे पाट सकता तो दारा शिकोह भारतीय इतिहास को स्वर्णिम स्वर्गिक बना सकता।

किसी पूँजीवादी ने देखा, मिट्टी, अग्नि और पानी पर तो नियत्रण हो गया, वायु और आकाश तत्त्व पर भी पूँजी का शासन क्यो न हो जाए। साँस लेने का कर क्यो न वसूल किया जाए? टाइम इज मनी Time is money—समय ही पूँजी है तो समय से सबद्ध सभी वस्तुएँ पूँजी की परिधि मे आ सकती है। बेचारा यह नही जानता था कि समय तो जीवन का अग है—जीवन का लघु चित्र है। उसे अलग अमूर्त रूप मे देखना कठिन है।

धर्म देवता, काल देवता और अकाल पुरुष एक ही सत्ता के विविध नाम है। समय की सघनता का नाम शून्य है। उस जैसा हो जाना यह समय का सदेश है।

समय तो कर्मयोगी होता है। वह एक साथ जन्म-मरण, सुख-दु ख की अवतारणा करता रहता है किन्तु स्वय उनसे निर्लिप्त रहता है। इतिहास उसकी प्रक्रिया का अकन करना चाहता है किन्तु वह सदा अधूरा और थोथा रह जाता है क्योकि अन्दर और बाहर के सत्य को वह समाहित नही कर सकता।

समय कर्मयोगी है इसलिए उसका राज्य स्वमेव समस्त स्थान पर भी हो जाता है। बडे-बडे नक्षत्र उसके इगित पर चलते है, और जब वे विनष्ट हो जाते हैं, वे सूक्ष्मरूप मे समय के अग बन जाते है।

सारी शक्ति का आश्रय शिवरूप काल ही है। आर्ष ग्रन्थो में काल-देवता की स्तुति इसी दृष्टिकोण से गायी गई है।

कल, अकल, कलि, काल, अकाल, विकाल, सुकाल आदि भेद-प्रभेद मानवी बुद्धि ने डाल दिये है वरन् वह मूल रूप में ज्ञान-स्रोत, शक्ति-पुँज परम शिव है।

# व्यक्ति

मनुष्य का नाम व्यक्ति भी है क्योकि ईश्वर अपने समस्त सौन्दर्य, शील और सत्य को इसी मे भली प्रकार साकार कर सका है।

वह अनाहत नाद जो केवल सुर था मनुष्य मे व्यक्त होकर महाबिंदु बना है। मनुष्य इसीलिए व्यक्ति भी है। वह सगीत पुत्र है।

मनुष्य अपने अन्त करण के सत्य को प्रकट करना चाहता है, उसका सारा क्रियाकलाप उसी की प्रेरणा से व्यक्त होता है।

मनुष्य की वाणी गूढ से गूढ भावो को भी व्यक्त करने का प्रयत्न करती है। मनुष्य अन्दर की सुन्दरता, सरसता और सात्विकता को अभिव्यक्त करना चाहता है। इसीलिए उसका नाम व्यक्ति पड गया है।

दुराव-छिपाव, कूटनीति, मिथ्याचार, कपट, स्वार्थ आदि विकार मनुष्य को सच्चे अर्थों में व्यक्ति नही बनने देते। तपस्या, त्याग, उपकार, सेवा, भक्ति, दया, सन्तोष, दान, अहिंसा, अस्तेय—इनमे से एक भी सिद्ध हो जाये तो व्यक्ति प्रसिद्ध हो जाता है।

गाँधी एक जिद्दी बालक था किन्तु उसका मन अपनी जिद्द को केवल सत्य के फाटक से जाने की हठ करता था। सत्य का फाटक, वज्रकपाट था। जिद्द वहाँ सिर टकरा-टकरा कर रह गई, अत मे वह सत्याग्रह बन गई, फाटक अपने आप खुल गया, जो गुप्त था व्यक्त हो गया, जो मानव था महात्मा बन गया, जो अनुभूति थी विभूति बन गई।

# भूख

शरीर की रक्षा भूख ही करती है। अन्न, फल, वनस्पति आदि खाद्य पदार्थ जुटाना, बाँटना और भोगना इसी प्रक्रिया मे समाज की सारी व्यवस्था निहित है। भूख की तृप्ति केवल पदार्थों से नही होती, पदार्थों के वितरण मे जो न्याय, त्याग और दयाभाव होता है वही सन्तोष, समृद्धि और तृप्ति लाता है। अभाव और अतिशय दोनो ही भूख के दूत है। दुर्भिक्ष और विलासिता दोनो पाप है।

अन्याय, अत्याचार अथवा उच्छृङ्खलता चाहे राजनीति द्वारा हो चाहे समाज द्वारा वह मानव के अन्त करण को विद्रोह की ओर अग्रसर करने का प्रबल कारण है। इस दशा मे क्षुधा हुताशन बन जाती है, जिसे जनता अग्नि-काण्ड भी कहती है। पशु अग्नि से डरता है, वह क्रान्ति नही चाहता, केवल भूख की तृप्ति ही चाहता है, वह शरीर से परे कुछ नही देख सकता इसलिए उसे केवल पशु कहते है, द्रष्टा अथवा ऋषि नही। ऋषि तो भूख के मानसिक कारणो को भी देख सकता है। अहकार की भूख काम, क्रोध और मत्सर को उत्पन्न करती है। स्वार्थ की भूख लोभ, मोह और अत्याचार की जननी है।

हमारी दीर्घकालीन सस्कृति ने भूख को मिटाने का प्रयत्न किया किन्तु वह कभी मिटी नही। धर्म ने कहा भूख तो मानवता का सबल है, इसे सात्विक बनाने की आवश्यकता है।

भगवान भी भाव के भूखे है। भक्त का भक्ति-भाव ही लुप्त हो जाए तो उस परम सत्ता को भगवान कौन कहेगा ?

प्रभु-दर्शन की आशा मे भूख प्यास भुलाकर साधना करने वाला जब आत्म-विभोर हो जाता है, उसे किसी प्रकार का अभाव दिखाई नही देता। सच पूछो तो उसकी भूख प्रिय-दर्शन की सात्विक भूख बन जाती है।

लोकगीतो मे देवताओ को केवल सुगन्धि अथवा केवल भाव से तृप्त माना गया है। मनुष्य भी जब अपनी भूख को पार्थविकता से ऊँचा उठा लेता है तब वह देवत्व की ओर जाने लगता है।

जीवन भोजन के लिए ही नही मिला, यह तो भजन के लिए मिला है। भजन, भक्ति अथवा सेवा को साधन बना कर भोजन भी देव-भोग अथवा देव-प्रसाद बन जाता है।

# अन्न

मिट्टी को मिट्टी से पुष्ट करने का प्रयास क्या सच्चा जीवन है ? अँगूर का रस, शहद, दूध आदि पदार्थ मिट्टी के पुतले को तृप्त कर सकते है, किंतु उस अमृत की भूखी आत्मा को कैसे शाति मिलेगी ?

गौतम ने अनशन करके महान तपस्या की थी। शारीरिक वासनाओ को त्याग कर क्या मन का शमन हुआ ?

ज्ञानेद्रियो को सुन्न कर देने से आत्म-प्रकाश नही हो सकता, इन्हे शुद्ध कर देने से रूखी-सूखी रोटी भी स्वर्गीय भोज का-सा आनद दे सकती है। अन्न के ग्रहण से पहले मनोमार्जन आवश्यक है। अन्न केवल शरीर को पुष्ट नही करता अपितु मन, बुद्धि एव आत्मा को भी शक्ति प्रदान करता है। जो अन्न प्रकाश, सगीत और आनद का कारण बन सकता है वह देव-प्रसाद होता है। जो अन्न हमारे मन को शरीर की सेवा मे बाँध देता है वह यम-पाश है, ठगमूरी है जो देवत्व की ओर जाने वाले मनुष्य को पशुवत् बना देती है।

पशु केवल देखता है और मनन-चिन्तन नही करता। मनुष्य मननशील प्राणी है, उसका भोजन साहित्य है। जो अन्न हमे साहित्य, कला, सगीत के सौदर्य के निकट ले जाता है वही पौष्टिक होता है। जो अन्न हमे विकारग्रस्त करके पतित कर देता है वह विष होता है।

प्राणी जीवन-भर अन्न खाता है किंतु अत मे स्वय मिट्टी बन कर अन्न के पौधो की खाद बन जाता है। क्षुधापीडित मनुष्य स्वय खाद्य पदार्थ बन जाता है। चिंता, भय और दुःख के गीध उसे खा जाते है।

यज्ञशेष का अन्न, अतिथि-सत्कार का अन्न एवं दान-दक्षिणा का अन्न देवाहुति होता है क्योकि उसके साथ मनुष्य का त्याग ओत-प्रोत होता है—इदन्न मम।

# हल

'उस दावानल ने सारी वनस्पति जला डाली थी, किन्तु यह एक वर्ष मे ही फिर हरियाली कैसे हो गई !' आदि मानव ने पहाड की उपत्यका मे घूमते हुए सोचा । उसके निरीक्षण ने बताया कि मिट्टी मे दबी जडे और बीज नमी पा कर फूट पडते है । बीज पर कुछ मिट्टी भी होनी चाहिए ।

कुछ च्योटो को भी यही अनुभव हुआ था कि बिल के बाहर रह गए दाने वर्षा मे अपने आप फूट पडे थे, बडे होकर अनेक बालियो का रूप धारण कर गए। अत वे कुछ दाने धूल मे ही छोडने लगे । वे सृष्टि पर के प्रथम कृषिकार थे ।

मनुष्य का सबसे पहला हथियार था खुरपा—पत्थर का बेडौल खुरपा, धातु का सुदर खुरपा, लोहे का तेज खुरपा। बडे खुरपो से बडे काम लेने लगे । किसी दलदली धरती मे धान आरोपित करते बडा खुरपा अथवा कही जब धँस कर निकल न सकी तो किसी ने उसे रस्सी से बाँध कर बैल के ज़ोर से निकाल लिया । धरती अधिक सुगमता से उखड गई । हल का आविष्कार हो गया । किंतु कृषिकारी का काम जो सभी वर्गो का कर्त्तव्य था अब विशेष व्यवसाय समझा जाने लगा । ब्राह्मण लेखनी और शुर्वा सभाल बैठ गया, क्षत्रिय खुरपे और हल के स्थान पर कटार और भाला सभालने लगा । खेतो से हट कर वह आखेट मे व्यस्त हो गया । वैश्य हल और तराजू का धनी था किंतु उसने धीरे-धीरे कृषिकारी का काम दासो से करवाने का प्रबध कर लिया स्वय तराजू लेकर बैठ गया । दास एव सेवक भी अनेक कार्यो मे विशेषज्ञ बनने की धुन मे उच्चनिम्न अनेक वर्गो मे बट गए । काम का सारा बोझ शूद्रो पर आ पडा, वही साधन जुटाते थे, सिद्धि और भाग मे मग्न होने वाले अभिजात वर्ग के लोग विलासी बनते गए ।

फिर भी राजा जनक ने हल चलाया । राजा कुरु ने हल चलाया । मार्कण्डेय ऋषि ने हल चलाया । कणाद ने कृषिकारी की । कुरुक्षेत्र मे आज भी अनेक क्षत्रिय जातियाँ हल चलाती है, कागडा मे अनेक ब्राह्मण कृषिकार है । बौद्ध काल मे हिसा के भाव ने हल की प्रतिष्ठा गिरा दी थी किंतु कृषिकारी का निषेध कभी नही हुआ ।

विज्ञान ने हल के अनेक रूप बना दिए है । उसकी गति-विधि को बहुत उन्नत कर दिया है, किंतु जाने क्यो खाद्य पदार्थों का अभाव रहता है । शस्त्रो की पूजा ने हल का महत्त्व कम कर दिया है । मानव के पोषण की अपेक्षा मानव के सहार की योजनाए चल पडी है । राजनीति का अभिशाप यह है कि हल चलाने वाले हाथो से ही गोला बारूद फिकवाती है । अणु-विस्फोट की धूलि से वनस्पति विषाक्त हो रही है ।

सारी थल सेना कृषि-सेना बन जानी चाहिए , जल-थल सेना व्यापार सेना। वह दिन स्वर्णिम स्वर्गिक होगा जब हल की ऐसी पूजा होगी ।

# बैल

कहते है धरती बैल के सीगो पर खडी है। कृषि कार्य का आधार बैल है अत धरतीवालो का पालन पोषण बैल एव गाय द्वारा ही होता है; किन्तु बैल को धर्म का प्रतीक माना गया है और धर्म ही जीवनाधार है।

शिव का वाहन धर्म धवल नादी है और उसके चार पाँव है—सत्य, शौच, दया एवं सन्तोष। सात्विक ज्ञान एव व्यावहारिक जीवन मे सत्य और शौच, धर्म के अग्रिम दो चरण है, किन्तु इन दोनो के सचालन के लिए भी दया और संतोष आवश्यक है। 'दया धर्म का मूल है' तुलसीदास ने सच कहा है—ईश्वर करुणामय है। वह चाहता है कि उसका सच्चा भक्त भी करुणामय, दयामय और अहिंसामय बने। दया का दूसरा नाम दान है।

सन्तोष ही सबसे बडा धन है। निराशा, दुख और अनास्था का शमन सन्तोष ही करता है। सन्तोष हमारे अन्त करण का दीपक है जो हमारे लोभ-मोह-मदादि का अन्धकार मिटा देता है।

बैल का कधा शौर्य और उत्साह का द्योतक है। परिश्रम, तपस्या और सहनशीलता के गुण बैल मे सहज ही विद्यमान रहते है। शिव जी ने इसीलिए उसे अपना वाहन बनाया। ससार का कल्याण सुन्दर कृषिकारी मे धर्मबुद्धि लाने से हो सकता है।

धर्म धवल तभी स्वस्थ रह सकता है जब उसके चारो चरण एक से पुष्ट एवं स्वस्थ हो। धवल अथवा श्वेत रग शाति का प्रतीक है।

शिव जी का त्रिशूल त्रिगुण—सत, रज और तम—से अतीत होकर मोक्ष, कल्याण एवं शाति का द्योतक है। पालतू पशुओ मे से गाय-बैल जैसा कोई और उपयोगी पशु नही है। आर्यो ने शेषनाग एव कूर्म के पुरातन प्रतीको के स्थान पर धर्म धवल का प्रतीक प्रचलित किया। बैल का जीवन मानवी जीवन की सहिता है।

याज्ञवलक्य ने धर्म के जो लक्षण दिए है वे इस प्रतीक मे विद्यमान है—अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह.।

दान दया दम क्षान्ति सर्वेषा धर्मसाधनम्॥

# हथौड़ा

वह दिन मनुष्य की विजय का पर्व था जब उसने हथौडे के रूप मे एक पत्थर को उठा कर किसी वस्तु को अपने मनोनीत आकार मे ढालने का प्रयत्न किया।

कल्पना को कला मे परिणत करने का पहला उपकरण हथौडा था। कुल्हाडी, तेशी, छेनी, मिजराब, लेखनी और तूलिका सामग्री की विविधता ने बनाई, किन्तु उनका पूर्वज हथौडा ही था।

गुर्ज, मुग्दर, गदा और डडा मनुष्य के पशुबल के उपकरणमात्र है। इनका उपयोग भय के भाव ने करवाया। शास्त्रज्ञान की शिथिलता शस्त्रो का रूप धारण कर गई। कायरता ने अस्त्रो का आविष्कार किया। शस्त्र अस्त्र वीरता का कुष्ठ रोग है।

अहिसा वीरता और कला की शक्ति रखती है। वह हल चलाते हुए भी हिसा की छाया से बच-बच कर चलती है।

कुढब धातु को सुडौल पूजापात्र या कलाकृति बनाने मे मनुष्य जो संकल्प करता है उसका साकार रूप हथौडा है।

नानक ने सच कहा था—

अहरणि मति वेदु, हथोआरु

मानवी बुद्धि, स्थितप्रज्ञ बुद्धि सहनशीलता एवं श्रद्धा की दृढ शक्ति रखती है, वह अहरन रूप है। वेद का ज्ञान उसके ज्ञातव्य विषयो को सुन्दर सुखद रूप देने के लिए हथियार की भाति है, हथौडा है। समस्त ऋग्वेद आदिपुरुष का अनादि हथौडा है—ब्रह्मा का यही शस्त्र था, गोमुखी गदा जो विष्णु ने उठा रखी है वह भी उसी का परिवर्तित रूप है और शिव के डमरू पर पडने वाली गोटें भी अपने मौलिक रूप मे हथौडे की धमक मात्र थी—वह धमक जो विंदु को नाद मे परिवर्तित कर देने की शक्ति रखती है, जो आहत सीमा को अनाहत की असीमता तक पहुँचा देती है।

लोग ऐसे हथौडे को नमस्कार करते है, मैं उसे पूजा भाव से चूम-चूम लेता हूँ और मेरा मन अज्ञात धमक से बल्लियो उछलने लगता है। हथौडे के संगीत का कैसा विचित्र प्रभाव है।

# मीठा सत्य

फूल का सत्य सुगधित मकरद रस होता है। सत्य को कटु बनाना कूट कर्म है। कडवा सत्य उतना ही पापमय होता है जितना कपटमय मीठा भूठ।

फूल की सुगधि उसके अतर के सत्य का अनुवाद है। वह हवन यज्ञ की आहुति समाज के वायुमण्डल को शुद्ध, पवित्र एव ग्राह्य बनाती है। जीवन में से निसृत सत्य सदैव प्रेषणीय होगा, आकर्षक होगा। उसमे सुन्दरम् का भली प्रकार चमत्कार होगा। उसकी मिठास जनगण मन को ऐसे ही अपनी ओर खीच लेगी जैसे फूल की सरसता भँवरो, तितलियो और मधुमक्खियो को।

फूलो मे दुर्गंध होती तो उन्हे सुन्दर कौन मानता! सत्य मे कटुता का समावेश करना सत्य को असुन्दर बनाने अर्थात् उसे असत्य बनाने का प्रयत्न है। मदिरो मे धूपदीप जलाने का भाव है तपस्या द्वारा सुगधित प्रकाश एव सरसता का प्रसाद बाँटना।

सत्य का परिणाम और प्रभाव सदैव शिवम् होता है किन्तु वह अपनी कीमत माँगता है—तप पूत होना। तप की साधना ऊपर से कठोर और कडवी होती है किन्तु अदर से नारियल के समान शुभ्र, कोमल और स्वादिष्ठ। कच्ची निमोली कडवी होती है, पक्की तो अगूरसी मीठी। असाध्य सत्य चाहे कटु हो, साध्य एवं सिद्ध सत्य तो सदैव सरस होता है। जब हम वीणा-वादन सुनते है हमारा ध्यान ध्वनि के सौंदर्य की ओर जाता है, मिज्राब की चोट की ओर नही। सत्य की चोट भी संगीतमय होनी चाहिए, कृपाण की काट की भाँति नही।

सत्य अपने क्रियात्मक रूप मे अहिसा का पुजारी होता है। कटुता एक प्रकार की हिंसा ही है जो भूठ की प्रतिच्छाया है। सत्य अपने मूल रूप मे सुन्दर, सरस एवं अहिसाप्रिय होता है। इसीलिए उसका प्रभुत्व ईश्वर का सा होता है; बल्कि वही ईश्वर होता है।

## आधा सच

'मेरी बात आधी तो सच थी। शेष का मुझे ठीक ज्ञान न था।'

अरे सच तो सदैव परिपूर्ण होता है ईश्वर की भाँति। ईश्वर को इसीलिए सत्यस्वरूप कहा जाता है। क्या आधा ईश्वर किसी काम का रह जाएगा ?

आधा सत्य वास्तव मे झूठ का बडा भाई होता है क्योकि उसकी अस्पष्टता को छुपाने के लिए मनुष्य कई प्रकार के आडम्बर और कृत्रिम युक्तियाँ प्रस्तुत करता है। इस मलबे के नीचे आधा सत्य जो पहले ही जख्मी होता है क्षीण हो कर दम तोड बैठता है।

ससार के अधिकतर युद्ध अर्ध सत्य के कारण भडक कर विनाशकारी बने। पूरे झूठ की अपेक्षा आधा सच अधिक हानिकर होता है। पूरे बुखार की अपेक्षा आधा बुखार अथवा धीमा बुखार क्षयकारी होता है।

पूरा झूठ तो कही भी देखने मे नही आता क्योकि उसके पाँव नही होते। उसे जले हुए तिनके के समान आकाश मे उड कर विलीन हो जाना पडता है।

पूरा झूठ तो गप्प बन जाता है। उस पर हमे हँसी आती है, क्रोध नही। अत पूरा झूठ अपनी पूर्णता के कारण पाप से बच जाता है, आधा झूठ अपूर्णता के बोझ से पतित ही रहता है, उसे दमित ही रखने की चेष्टा प्रत्येक व्यक्ति में होती है, उसका धारणकर्ता भी उसे गुप्त एवं लुप्त रखना चाहता है।

पशु के पास न सत्य है न झूठ। देवता के पास केवल सत्य होता है।

मानव आधा सत्य आधा झूठ रखता है, यह उसके जीवन की विडम्बना है।

पूर्ण मनुष्य उसे कहते है जो अपने आधे झूठ के बोझ—तमोगुण—को सात्विकता मे परिणत कर देता है। ऐसे मानव के सामने देवता भी प्रणाम करते है क्योकि उनके सत्य मे तप नही होता। मानव का सत्य सूर्य के समान तप.पूत होना चाहिए।

# उलझनें

सीधी सपाट लकीरें कोई सुंदर चित्र निर्माण नही कर सकती। मोड-तोड, काट-छाँट एवं न्यून-अधिक के सुदर मेल से रूप निखरता है। इसी प्रकार उलझने हमारे जोवन को सुदर और आकर्षक बनाने की सेवा करती है।

वह बूंद जो आकाश से गिरकर फिर समुद्र मे गिर गई, वह अनेक साहसी अनुभवो से वञ्चित रह गई, और वह बूंद जो बरफीली चोटियो पर गिर कर उत्पल, नीर, नदी, लहर, भँवर, बुदबुदा आदि अनेक रूप धारण करने के पश्चात् अपने समुद्र मे आ जाती है वह कितनी सौभाग्यशालिनी है।

जीवन को जड बनने से बचाने के लिए समस्याएँ, उलझने, क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ होती रहती है। उलझनो की बाढ से बचने के लिए हमे अपनी बुद्धि की नाव स्वस्थ रखनी चाहिए। अस्वस्थ नाव को डूबने का जितना भय होता है स्वस्थ को शीघ्रता से लक्ष्य तक पहुँचने का उतना ही स्वर्ण अवसर।

उलझन वास्तव मे मन की दुर्बलता का साकार रूप होती है। मन की सावधानी और शाति जब जाग पड़ती है उलझनें स्वप्न हो जाती है और जब मन निढाल हो कर सो जाता है तो उलझने गिद्धों का सा झुरमट बना कर मन को खा जाती है।

कृषक की असावधानी से खेत मे पुराने बीज के साथ कनियारी और ऊटकटारा के बीज भी उग पडते है। उसी तरह दुर्बल मन उलझनो के सूक्ष्म बीज बोता रहता है। जो स्थितप्रज्ञ है उसके लिए कोई दुःख नही, कोई उलझन नही और कोई निराशा नही।

उलझने जब हमे सघर्ष मे धकेल देती है, हमे ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि हमे अपनी अत शक्ति के दर्शन करने का अवसर मिलता है। दृढ विश्वास ही उस शक्ति द्वारा हमे बिजली बना देता है। उलझने तरगायित समुद्र की जल परियाँ है जो मूढ को शाप और चतुर को वरदान देती है।

# धोखा

अरे तुमने धोखा खाया है, धोखा दिया तो नही, फिर तुम निराश और दु खी क्यो होते हो ! दु ख तो पाप का भाई है, और तुमने कोई पाप नही किया, फिर दु खी होकर अपनी तपस्या को धूल मे क्यो मिलाते हो ।

धोखा खाना मानवी सीमा के इस पार के दर्शन करना ही है । अनत शक्ति के स्वामी रामचद्र जी को भी धोखा हुआ था । रावण सीता को हर ले गया था, राम ने भी आँसू बहाए थे । राम ने उस दु ख के द्वारा मानवता के इस छोर को छू लिया था । इसीलिए उन्होने राक्षसी शक्तियो को समाप्त कर देने का सकल्प किया ।

सात्विक हृदय वाला व्यक्ति धोखा खा कर भगवान का यह संकेत समझ लेता है कि उसे अदम्य साहस द्वारा न्याय की स्थापना करनी चाहिए । उसकी हार के कारण अनेक निरीह लोगो पर अत्याचार बढ जाएगा । ईश्वर सशक्त को ही क्राति के लिए चुनता है । उसका धोखा खाना तो एक बहाना है उत्थान के सकल्प के लिए ।

धोखा खा कर अपने विरोधी को उसी प्रकार के धोखे मे डालने का प्रयत्न एक प्रकार की चोरी है अपने तपोधन की, एक प्रकार का अत्याचार है अपने अत करण के प्रति ।

ईश्वर ने तुम्हे चुना था धोखे से महान कार्य के लिए, आदर्श के लिए । तुम उसके चुनाव को झूठा सिद्ध करने का प्रयत्न क्यो करते हो ? वह कहता है 'तुम सशक्त हो', तुम कहते हो 'मै मारा गया ।'

वह फूल कितनी देर जियेगा जो तितली का चुम्बन भी सह नही सकता । वह मुमुक्षु कितने पग अग्रसर हो सकेगा जो सावधानी के एक काटे के चुभने पर कुहराम मचा देता है ।

प्यारे ! प्रसन्न हो जाओ कि भगवान ने तुम्हे कल्याण के लिए चुना है । भय और सकोच क्यो ? वह देखो, राम का धनुष समस्त क्षितिज को घेरे हुए है, पाप तुमसे बच कर नही जा सकेगा ।

# घबराहट

कडवा धुँआ, धुँधलका और अन्धकार—सम्भव है इसी परिस्थिति का नाम घबराहट है। अज्ञान और भय जब अकस्मात् थके-हारे मन को घेर लेते है वह छटपटाता है उस हरिण-शावक की भाँति जो निकला तो था उन्मुक्त वातावरण मे विचरने के लिए किन्तु पकडा गया जाल मे।

अपने अधिकार को खोकर शात रहना कठिन है। ऊबे, बासी और अप्रिय वातावरण मे सास लेना दुष्कर है, अपने सुन्दर मादक ध्येय से वचित होकर साधना मे तत्पर रहना दुखद है—किन्तु चमकते मुखडे पर मुस्कान लाकर दुनिया का अभिवादन करना क्या असम्भव है ? क्या इतना सा अभिनय भी अनुचित है ? अशाति, निराशा और दुख के तूफान मे भी, एक शक्ति सन्तोष ला सकती है। प्रभु की करुणा तुम्हारी निगूढ एव मूक वेदना को भी जानती है। उसने तुम्हारे सपनो को भग होते देखा है, तुम्हारे टूटे दिल की पुकार सुनी है। वही परम सत्ता तुम्हारे असमय की वृद्धावस्था एव शिथिलता को नवयौवन एव नव जिज्ञासा मे परिणत कर सकती है। उसका प्रेमस्पर्श झुर्रियो, चिंता-चिह्नो और बिवाइयो को पल भर मे दूर कर देगा।

श्रद्धा का सबल दृढता से धारण करो, अपने भगवान की कृपा को इतना विस्तृत मानो कि दुख भी वरदान दीखने लगे। परिशुद्ध श्रद्धा न शंका जानती है न भय। जो व्यक्ति गुलाब की सुगन्धि और रगत पर मस्त है उसे काँटो का ध्यान ही नही रहता बल्कि कटकहीन डाली उसे सूनी-सूनी लगती है।

अरे ! तुम धरती का धैर्य तो देखो। वह तूफान सहती है, ज्वारभाटा सहती है, वज्रपात, बाढ और हिमपात सहती है, फिर भी अगणित कलियो के मिस मुस्काती है। न भूचाल उसे स्तभित कर सकते है न ज्वालामुखियो का लावा। दावानल, बडवानल और हत्याकाण्ड सह कर भी वह अपनी कलात्मक रचना से उदास नही होती, निराश नही होती।

धरती माता का विस्तृत अचल तुम्हे सर्वत्र आश्रय दे रहा है। पवन झकोरो मे उसका आशीर्वाद सुनो। त्रस्त, व्याकुल और शंकित दृष्टि से मत देखो। यह भी एक तरह का पाप है। धरती अपने सभी वरदानो के बदले में तुम से मुस्कान की आशा रखती है। सकट मे भी मुस्काना हमारा कर्त्तव्य है।

# निरंतर प्रयत्न

सम्भव है दुर्भाग्य ने तुम्हारे प्रिय सपने उजाड दिये हो ग्रौर ग्रायोजन निष्फल कर दिए हो, सम्भव है किसी ग्रापत्ति ने तुम्हारी ग्राशाग्रो को धूलि-धूसरित कर दिया हो, किन्तु कहाँ है तुम्हारा ग्रमोघ शस्त्र—मुस्काता धैर्य ।

धैर्य के बल पर हिमालय स्थित है । धैर्य के प्रकाश से सूर्य चमकता है । उस की शक्ति से महाशून्य मे धरती लाखो मील का चक्कर काटती है ग्रौर डावाँडोल नही होती । धैर्य का महामन्त्र है 'निरन्तर प्रयत्न' । यही जीवन के बेरग खाके मे रग भरता है, जगल मे मंगल बनाता है ग्रौर भीषण संघर्ष मे विजय का रूप-धारण करता है ।

सेब का रस बाहर फूट कर लाली बन जाता है, धैर्य का रस मुस्कान बन जाता है । माथे का बल, नाक की सिकुडन ग्रौर ग्राँख का ग्राँसू पराजय के चिह्न है, इनके द्वारा जीवन मे ग्रवसाद ग्रौर दु ख की घटाएँ छा जाती है । इनसे बचकर रहो । ग्रात्मविश्वास ग्रौर साहस के साथ सकटो पर मुस्काने का स्वभाव बनाग्रो ।

जीवन एक रणक्षेत्र है, निर्बल हाथो से तो ग्रपने हाथी का ग्राकुस भी सम्हाला नही जाएगा, कृपाण म्यान से ही नही निकलेगी, धनुष खीचा नही जाएगा, फिर जीत कैसे मिलेगी ?

भविष्य उसी का है जो निरन्तर प्रयत्नशील है, जो निष्काम साधना मे रत है, जो ग्रपने ध्येय मे ग्रडिग ग्रौर ग्रचल रहता है । उसका मार्ग कितना ही ऊबड़ खाबड, टेढा-मेढा क्यो न हो उसका गन्तव्य स्पष्ट ग्रौर स्थिर होता है । सिर उठा कर, कदम बढाकर साहस भरे नि शक हृदय के साथ वह निरतर प्रयत्न करता है । वह जानता है कि एक मोड पर सफलता उसकी ग्रारती उतारने की प्रतीक्षा मे खडी है ।

हार न मानना ग्रौर पुन कोशिश करना शूरबीर का कर्त्तव्य है । जो ग्रपनी सहायता ग्राप करते है उनके प्रयत्न मे भगवान की शक्ति स्वयमेव काम करती है । दृढ सकल्प, निरन्तर प्रयत्न ग्रौर साहस द्वारा सफलता ग्रवश्य प्राप्त होती है । विफलता एक सकेत है पुन तैयार होने का, ग्रधिक प्रयत्न की ग्रावश्यकता का ।

# घोंघे

'आज फिर पूर्णमासी है। सागर मे ज्वार आएगा बेटा! बरेती मे ध्यान से प्रतीक्षा करना। मोती वाली मछलियाँ लहरो के धमाके से अपने मोती उगल देती है। वे चुन लाना।'

और बेटा तो रगारग घोघे चुनता रहा, उनके ढेर लगा-लगा कर खेलता रहा। फिर एक उत्तुग लहर आई उन्हे भी बहा ले गई।

'अरे! तू यहाँ घरौदे बना बना कर खेल रहा है, और हम कीमती मोतियो की आशा मे अन्न, वस्त्र एव मकान के अनेक सपने देख रहे थे। दिन भर क्या करता रहा?'

धीवर के उस नादान बेटे की भाति मेरे जीवन का उज्ज्वल दिवस भी अकारथ बीत गया। न तत्त्वज्ञान का मोती हाथ लगा न भक्तिभाव का। कर्म किए सभी सकाम, मानो अपने लिए स्वय फदे बनाता रहा। परिग्रह, अतिग्रह, दुराग्रह, मिथ्याग्रह, दभाग्रह आदि अनेक प्रलोभनो के पाप-बीज बोता रहा। अब वे बीज विषफल देते है, काटे बिखेरते हैं और मै घबराता हूँ।

सहज सुगम मार्ग जो निर्दोष बालक की मुस्कान की भांति शातिप्रद था उसे छोड कर ऊबड खाबड विषम दुर्गम दु खद कुमार्ग पर चलने मे वीरता मान बैठा। यह खच्चर की-सी दुर्वृत्ति वाला मन कहाँ ले आया!

वह आत्मज्ञान जो 'सत्याग्रह, अपरिग्रह और निग्रह को साधना करवा सकता था, जाने कहाँ लुप्त हो गया। उस स्फटिक शिला के कँवल पर स्वार्थ की काई जम गई। काई पर निष्ठावान रहना कितना कठिन है। काई से प्यार है दादुर को, भँवरे को प्यार है कँवल से। इसीलिए भौरा उड सकता है, दादुर उछल सकता है। दादुर टर्राता है, भौरा गुजारता है।

कँवल छोड कर काई की पूजा, मोती छोड कर घोघे की खोज, हरि-मदिर छोड कर घरौदे का निर्माण—कैसा विचित्र व्यवहार है मेरे मन का!!

हे ईश्वर! इस मलीन मनदर्पण को अपनी दयादृष्टि से धो डालिए। काई, पंक और रेत मिट्टी उतार दीजिए। फिर यह ज्योतिस्वरूप बन जाएगा। तेरी कृपा-किरण की प्रतीक्षा मै अंतिम श्वास तक करूँगा।

# तृप्ति

चातक की तृप्ति स्वाति नक्षत्र की बूंद पाने मे है। भौरे की तृप्ति कँवल-रस-पान मे है। शलभ की तृप्ति ग्रात्मोत्सर्ग मे, प्रेम की लौ पाने मे है।

मनुष्य की जिज्ञासा भी षट्पद के समान होती है, उसका भक्तिभाव चातक का सा होता है और उसका बलिदान शलभ का सा। किंतु वह एक साथ ही ये सभी रूप धारण नही कर सकता। उसकी तृप्ति जब तक सूक्ष्म नही बन जाती वह चलायमान रहता है।

मनुष्य की ग्रन्त भावना सकेत, कटाक्ष, सुगधि और तर्पण की भाति सूक्ष्म बनना चाहती है। भक्त जब तीर्थस्नान के पश्चात् सूर्य को नमस्कार करके तर्पण करता है, वह सूर्य की तपन को बुझा नही सकता किंतु वह सप्तरंगी किरणो का प्रेमभाव से ग्रभिनदन करके ग्रपने भक्ति भाव की तृप्ति ग्रवश्य कर लेता है।

तृप्ति बाह्य जगत की वस्तु नही क्योकि तृष्णा भी बाह्य जगत से नही ग्राती। वह ग्रन्तस्तल मे जन्म लेती है और मन की तरंगो के झूले से हुमक कर दूर जा पडती है।

निस्तरग, प्रशांत, प्रसन्न मन की शीतल शुभ्र शैया पर थकी-हारी तृष्णा जब गहरी नीद सो जाती है तो उसका रूप-परिवर्तन हो जाता है, जैसे रेशम का कीडा स्वार्थ की पत्तिया खा-खा कर ग्रत मे पश्चात्ताप मे मग्न होकर समाधिस्थ हो जाता है तो उसका रूप-परिवर्तन हो जाता है—वह तितली बन जाता है। तृष्णा जब तृप्त त्राण की ओर जाती है तब वह स्वयमेव तृप्ति बन जाती है।

दुनियादार की ग्राँख मे भूख होती है। वह पेट की भूख तो सहज ही मिटा सकता है किंतु ग्राख की भूख तो मृत्यु की महानिद्रा ही तृप्त कर सकती है। भावमग्न होकर जब ग्राँखे बद हो जाती है और माया पर निर्मोह का पर्दा डाल कर हम भीतर देखते है तो तृप्ति की ग्रानंद-वर्षा हमे रसप्लावित कर देती है। ईश्वर का प्रसाद ही ऐसी ग्रवस्था को दीर्घ एव विशाल बना सकता है। तृप्ति का ग्रतिम छोर महामुक्ति है जब तृप्ति और ग्रतृप्ति का भाव ही शून्यप्लावित हो जाता है।

# साधन और साध्य

वह साध्य कितना सुंदर और प्रिय लगता था जिसके लिए मै अपने जीवन के अनेक वसंत भी न्योछावर कर सकता था। ऐश्वर्य, यश, उपकार, दान आदि के भाव कितने मादक थे!

किंतु उस ध्येय तक पहुँचने के लिए साधनो की आवश्यकता थी। इन्हें जुटाने के लिए मैंने इतनी दौड धूप की कि जवानी, मस्ती, निद्रा, सतोष, सुख सभी कुछ उत्सर्ग कर दिया।

साधनो की पूजा से सिद्धि नही मिल सकी। मै स्वय साधन पात्र रह गया लोगो के व्यंग्य, कटाक्ष एव ईर्ष्या का। बचपन बीत गया है तो इन खिलौनो को क्या करूं। धन-धान्य मिल गया तो वह जवानी कहाँ से लाऊँ जो पहाडो से टक्कर ले सकती थी।

राह की धूल उठ-उठ कर मेरी मंजिल को धुधला बनाती रही। साधनो की चकाचौध मे वह भव्य भवन लुप्त हो गया, वह आदर्श गुम हो गया।

मेरे पास राम का धनुष भी है, रुस्तम का गुर्ज भी, सोहराब की कमद भी, कृष्ण की बसी भी—सभी कुछ उपस्थित हैं किंतु वह पराक्रम वाला हृदय कहाँ! वह तो साधनो के ढेर के नीचे दब गया।

साधनहीन होना कितना सौभाग्य का कारण है! भगवान की अनुकम्पा को दीनता ही आकर्षित कर सकती है, टूटी नाव को उसकी करुण हिलोर ही पार पहुँचा देती है।

साधक तो साध्य का उपासक होता है। साध्य की उपासना ही परम सिद्धि का सोपान है। साधनो की पूजा नास्तिकता ही है। यह एक प्रकार का प्रपच है जिसमे मन का ततुवाह स्वयं फँस जाता है।

# कृष्ण

कृष्ण का नाम बहुत सार्थक है। मायाजनित प्रकाश विषमता, अनेकता और विश्रृंखलता का कारण है। हम अपनी आँखे मूँद लेते है तो दृश्यमान जगत का ऊँच-नीच भाव मिट जाता है। माया-रहित रग काला ही है।

अस्फुट अवस्था मे सोई सृष्टि गहन अधकार की चादर लपेटे पडी थी। ईश्वर की लीला ने उस पर प्रकाश की किरण बरसा कर उसे जगा दिया।

प्रलय के पश्चात् यह जगत फिर अथाह तम मे विलीन हो जाएगा।

भगवान कृष्ण की गीता मोह माया से बचने का अमोघ साधन है। गीता कृष्णमय है। वह आध्यात्म तेज की नीलिमा है।

सुदरता की गौर आभा मे जब प्रेम की असीम नीलिमा मिल जाती है तो सावरा सलोना पिया निखर आता है। उस सावरे का पुरातन नाम कृष्ण है।

एक कृष्ण ब्रह्मद्रष्टा ऋषि था, एक कृष्ण योगिराज था, एक कृष्ण लोक रक्षक पार्थसार्थी था, एक कृष्ण बसी बजाने वाला गोपीवल्लभ कान्ह था—ग्वाल बाल के रूप से लेकर द्वारिकाधीश के रूप तक, माखन चोर के रूप से लेकर राधिका चित-चोर के रूप तक, प्रेम-सगीत सुनाने वाले के रूप से लेकर युद्ध-सचालक के रूप तक सर्वत्र गीता ही गीता है। हिंदुत्व ने कृष्ण-चरित मे ज्ञान, कर्म एव भक्ति को साकार किया है। ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण मे भारत ने कई शताब्दियो का मनन, चिंतन और आदर्श-स्थापन किया है।

कृष्ण भारतीयता के उज्ज्वल दर्शन का अजस्र प्रतीक है जो सदैव आशा, उत्साह और शाति की कृपावृष्टि करता रहता है।

कृष्ण मानवता का सवेदनशील दिव्य हृदय है जो अपनी गरिमा के कारण भगवान भी है सच्चिदानद भी।

# संवाद्

निराशा के गहन अधेरे मे—

नास्तिकता का सा पाप मुझे पकड लेता है, दबोच-दबोच कर निढाल कर देता है, थका-हारा भौचक्का सा मन फिर भी तुम्हारे दर पर पुकारता रहता है—मुझे प्रकाश दो, मुझे राह दिखाओ।

दु ख की जलन तो निद्रा, शाति और उत्साह को भस्म कर देती है।

तुम्हारी शीतल स्निग्ध कृपा-वृष्टि की प्रतीक्षा करते-करते मै थक जाता हूँ। मेरी मूक वेदना से तुम्हारी अनुकम्पा अवश्य बरस पडेगी, यह मेरा विश्वास है।

निस्तब्ध काली रात मे जब प्रकृति भी सोई दीखती है तुम्हारा श्वास सिस्कार के साथ निकटतम आता प्रतीत होता है और तुम पुकार उठते हो—

'ओ! धूल मे उद्विग्न पडे साधक!

तू निराश न हो।

तू कृपा-वृष्टि चाहता है तो अपने मन को दरया बना ले।'

किंतु मै कहता हूँ—

'तुम्हारी करुणा के अमृत जल की एक बू द भी पर्याप्त थी। उस बूंद को प्रतीक्षा मे शिथिल होकर हृदय का भिक्षा पात्र भी टूट फूट गया है। अब तो मुझे कृपा-वृष्टि नही कृपा-दृष्टि ही पर्याप्त है।

मैने अपनी साधना को सूक्ष्म बनाया है, तुम अपनी करुणा को भी सूक्ष्म बनाओ।

## करुणा-पात्र

'तू अपनी देह को कष्ट मे डाल-डाल कर क्या यह सिद्ध करना चाहता है कि मेरी मूर्तिकला मे परिष्कार की गुंजाइश है ? अरे ! अपनी इस देह के नव-जात रूप को देख सकता तो तू मुग्ध हो जाता कि मैंने मिट्टी के पुतले मे भी निर्दोषता और पवित्रता को साकार किया था। क्या तेरा हठ उस कला को पुनः स्थापित कर सकता है ? अरे कोरा परिश्रम भी बोझ है।'

'विश्राम और शाति की प्राप्ति के लिए परिश्रम की आवश्यकता आप ही ने बताई थी और कहा था—सावधान, सावधान।'

'परिश्रम तो मन के पात्र को स्वच्छ रखने मे लगना चाहिए था, उसे शिथिल करने मे नही। महासुख का आधार करुणा-पात्र हो जाना है। प्रेम की आच मे पिघल कर यह पात्र बनता है।'

करुणा-पात्र तो अष्ट धातु का बना होता है। उस पर न अश्रुओ का जग होता है न नि श्वास का मैल। वह तो अपनी श्रद्धा की पावन तपस्या मे मार्जित होकर चमकने लगता है। जैसे सूर्य के प्रकाश को चन्द्रमा स्वत अर्जित कर लेता है वैसे ही सात्विक करुणा-पात्र करुणा के अमृत को धारण कर लेता है मानो उसका अपना प्रकाश, अपना तापस रूप द्रवीभूत होकर अमृतमय बन जाता है।

मानव जब सहानुभूति, सवेदना और परोपकार के भाव से द्रवित हो जाता है, ईश्वर की करुणा के दर्शन होने लगते है। इस अलौकिक अनुभूति के क्षणो मे देवलोक एव मर्त्य लोक एक सूत्र मे बध जाते है। देव-गण विह्वल हो उठते है— 'कितना अच्छा होता यदि हमे मानवी शरीर और उसमे धडकता मानवी हृदय प्रदान हो जाता।'

करुणा वह तत्व है जो मानवता को देवत्व से बहुत आगे ले जाता है। राम और कृष्ण इसीलिए देवताओ के भी देवता माने जाते है।

# स्वर और व्यंजन

ईश्वर अपने आप शोभायमान है इसलिए हम उसे स्वर कह सकते है। स्वर के बिना किसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति भाषा के द्वारा नही हो सकती। ईश्वर के प्रसाद की शोभा के बिना भी कोई रचना नही हो सकती। ऋषियो ने इसीलिए ईश्वर का नाम ॐ माना है और उसे तीनो लोको, तीनो कालो और तीनो गुणों की त्रिमूर्ति मे व्याप्त बताने के लिए [ ओ ] के आगे ३ ( तीन का अंक ) प्रतीक रूप मे लगाया है। गुरु नानक देव ने कहा है—

**ओनम अखर सुणहु बीचारु ॥**
**ओनम अखर त्रिभवण सारु ॥**

[म्] का अतिम सकेत प्रकृति के साथ उसके सबध का द्योतक है। तृप्ति का भाव भी [म्] के उच्चरण मे व्यक्त है।

इस [म्] से पूर्व स्वर ही [म्] को व्यक्त करता है। [म्] व्यजन है।

नाम रूप सारी सृष्टि ईश्वर के महा स्वर से व्यजित है। प्रत्येक प्राणी व्यंजन मात्र है। उसका अस्तित्व स्वर पर आधारित है।

सगीत के सप्त स्वर सप्तवर्णा प्रकृति के प्रतीक हैं और प्रत्येक में दार्शनिक सकेत निहित है—

**षड्ज मयूरा ब्रुवते गावो ऋषभभाषिणः ।**
**अजाविकंतु गान्धारं क्रौञ्चः क्व गति मध्यमम् ।**
**धैवतं ह्रेषते वाजी निषादं बृंहते गजः ।**
**पुष्प साधारणे काले पिकः कूजति पञ्चमम् । (संगीत रहस्य)**

मोर (षड्ज), गाय (ऋषम), बकरी (गाधार), कूंज (मध्यम), घोडा (धैवत); कोयल (पचम); हाथी (निषाद)—ये क्रमश प्रतीक है सत्यनिष्ठ सुदरता, धृति, अहिंसा, करुणा, वीरता, मधुर भाषण एव सशक्त विद्या के।

स्वर-साधना वास्तव मे ब्रह्म-साधना ही है। स्वर नेता है, व्यजन अनुयायी है। इन दोनो की सगति ही सगीत और भक्ति है।

# बुढ़ापा

बचपन को प्राप्त करने के लिए वृद्ध जीवन का मूल्य देना पडता है, फिर भी वह निर्दोषता और सहज प्रेम जो बचपन मे होता है, पुन पाना कठिन है ।

जब माया-विष-दत झड जाते हैं और व्यक्ति कुछ तुतलाने लगता है, बचपन याद आ जाता है । बचपन तो पवित्र मदिर के समान होता है जहाँ देवत्व भी पूजा को आता है, मानव की पूजा को ।

ससार कितना असभ्य है जो अवस्था के विकास के साथ-साथ हमारे बचपन के गुणो को लूट लेता है । छल, कपट, मिथ्याचार, आडम्बर, विलासिता—ये महामारिया हमारे निर्दोष बचपन को क्षयग्रस्त कर देती है ।

विरला ही कोई महापुरुष अपने बचपन की सुरक्षा कर सकता है । मानव धर्म या सार्वभौम सभ्यता वही है जो बालक के सहज गुणो मे ज्ञान की चमक भर दे । उन गुणो का शोषण करके ज्ञान देना महान कपट है ।

इस कपट के कारण बचपन तो नष्ट होता ही है, बुढापा भी विकृत हो जाता है । शुष्क शका, चिडचिडापन, क्रोध, आतक, कटु भाषण, प्रलोभ आदि विकार मनुष्य की अतिम मजिल को भी बिगाड देते है । अच्छा भला मानव खूसट भेडिया सा प्रतीत होने लगता है ।

वृद्धि तो विकासशील होती है, ऐसी चमत्कारी कि तीरो की शय्या पर सोया भीष्म मृत्यु को स्तभित एवं चकित कर देता है ।

मृत्यु उसे अपना बचपन दिखाती है, और वह मुस्करा कर कहता है—क्या यह बुढापा उससे कम सुदर है ?

निर्दोष बचपन + सात्विक ज्ञान + ब्रह्मचर्य = अमर वार्धक्य

तभी तो शिव, राम, कृष्ण, आदि देवता बालरूप मे मूर्तिमान किए जाते है । उनका बुढापा तेजस्वी होता है, अजर होता है ।

# मृत्यु

१९३४ मे मैने रवीन्द्र ठाकुर के मुख से उनकी एक अग्रेजी रचना सुनी थी, जिसका हिन्दी अनुवाद श्री ऋषिराम ने किया था—

'बच्चा माँ का दूध पीता है, कुछ देर के पश्चात् माँ उसे दूसरी ओर दूध पिलाने लगती है। बीच के व्यवधान के कारण बच्चा रो पडता है। यह व्यवधान ही मृत्यु है।'

**मौत इक ज़िन्दगी का वकफा है।**
**यानी आगे बढ़ेगे दम लेकर ॥ —मीर**

किसी निराशावादी हिन्दू ने मृत्यु के दूत का बहुत भयकर चित्र अकित किया था—एक मुँह ज़ोर भैसे पर बैठा यमदूत हाथ मे कुल्हाडा लहराता आता है। प्राणी को मार कर उसके गले मे फदा डाल कर ले जाता है। कितनी कुत्सित कल्पना है!

मृत्यु तो शरद ऋतु की पूर्णिमा के समान धवल शाति मे स्नात देव माता-सी खडी अपने दु:खी पुत्र को सान्त्वना का चुम्बन करने के लिए उत्सुक होती है। वह स्नेह भरे हाथो से ऐसे थपथपाती है मानो उसकी मूक लोरी से प्राणी समस्त दु ख भुलाकर योगनिद्रा मे आनन्द लेने लगता है।

जब नग्नता का ज्ञान नही था, बच्चा माँ को निस्संकोच जा लिपटता था। बडा होकर उसका सकोच भय की अवस्था मे परिणत हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य चाहे पवित्र हृदय का साधक हो, मृत्यु के पास जाने मे हिचकचाता है—वास्तव मे वह विस्मय मे सज्ञाहीन हो जाता है। माया के बन्धन ज्ञानेन्द्रियो और उनके सर्कस-मास्टर मन को महानिद्रा मे ग्रस्त कर देते है। आत्मा अपने स्वरूप मे स्थित विश्वात्मन् सी विराट हो जाती है। इस अनुभूति को समझने-समझाने का कोई माध्यम मनुष्य के पास नही है।

फिर मृत्यु के वरदान को शाप कहने का अधिकार किसी प्राणी को क्यो कर हो सकता है। मृत = मिट्टी, मात = मौत। मिट्टी की हार और आत्मा की जीत का नाम मृत्यु है। [य] मे आयु, यौवन, यज्ञ, हयात के अनेक भाव छिपे हुए है। मृत्यु कोई रहस्य नही, यह तो रहस्य की चाबी है, समस्या का समाधान, बन्धन की मुक्ति—मृत्योर्मा अमृत गमय।

# हमारा दर्पण—लोकराज्य

कहते है परमात्मा ने अपना सौन्दर्य देखने के लिए मानव को उत्पन्न किया था। मानव ने अपने स्वरूप को देखने की अभिलाषा मे परमात्मा की खोज की। इस खोज मे मानवता के कई युग बीत गए और उसे सच्चिदानन्द की कई झलकियाँ मिली, परन्तु सबसे स्पष्ट दर्शन उसे अद्वैतवाद और विश्वात्मवाद मे मिले।

व्यष्टि ने समष्टि मे अपने अनुपम सौन्दर्य के दर्शन किए। लोकराज्य ने हमारा दर्पण बनकर हमे उन्नति और मुक्ति के सच्चे चित्र दिखाए। वैदिक काल के जनपदो और राम-राज्य के अतीत चित्रो से लेकर गाधीयुग तक ससार ने स्वार्थ और त्याग की कई करवटे बदली, विनाश और निर्माण के कई पथ देखे।

नियति-यक्षी ने भारत की जनता को शताब्दियो तक रिआया ( रेवड ) बनाए रखा और इसके रखवाले राई ( गडरिए ) के रूप मे काम करते रहे। जनता अपनी शक्ति और सम्मान को भूलकर मूक पशुओ की भाँति सिर झुकाए सब-कुछ सहती रही। दाण्डयायन, अशोक, कबीर, नानक, तुलसी आदि महान नेताओ ने जनता मे आत्मगौरव के भाव भरने का यत्न किया था, किन्तु इस जनता का स्वप्न-भग तब हुआ जब आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो ने उसे झझोडा। अग्रेज ने जब उसके घर-बाहर का सफाया कर दिया, तब वह चिल्ला उठी—"मै चोर का सर्वनाश कर दूँगी, मै अपनी सम्पत्ति को अब लुटने न दूँगी।"

गाँधीजी ने उसके क्रोध और आवेग को सयम का पाठ पढाया और उसकी आन्तरिक शक्ति को परिपुष्ट करके उसे लोकराज्य दिलवाया—सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य।

शेख सादी ने एक कहानी लिखी है। दो चित्रकार थे। एक ने बहुत विशाल चित्र शाही महल की दीवार पर खीचे। दूसरे ने सामने वाली दीवार पर ऐसी पालिश की कि वह दर्पण बन गई। सभी चित्र उसमें दीखने लगे। बादशाह जब देखने आया तब उसको इतना धोखा हुआ कि उस दीवार के एक स्थान पर परदे के प्रतिबिब को ही परदा समझ कर उसे आगे से हटाना चाहा। असलियत का पता लगने पर उसने शिल्पी की बहुत सराहना की और उसे बहुत पुरस्कार दिया।

महात्मा गाधी ने लोकराज्य की स्थापना करके उसी निपुण शिल्पी की भाँति जनता को एक विशाल दर्पण बनाया ।

हम इस दर्पण मे अपने आदर्श के उज्ज्वल चित्र की झाकी देखते है । अपनी त्रुटियो और सफलताओ के प्रतिबिम्ब भी पाते है । हमारा विधान, हमारा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण, हमारी महान योजनाएँ, हमारे हल, कुदाल, चरखे, बिजली के बल्ब, हथौडे और कलपुरजे सब इसमे दिखाई पडते है ।

मुरझाए बालक, बीमार और अपढ नागरिक, घूस लेते कर्मचारी, चोर बाजारी करते व्यापारी, बेकार बाबू, कगाल मजदूर और उदासीन हरिजन, सभी चलते-फिरते लोकराज्य के दर्पण मे दृष्टिगोचर हो रहे है ।

आहो भरे 'इन्कलाब जिदाबाद !' के नारे फिर उभर रहे है । देखो कही वह दर्पण धुँधला न पड जाए !

क्या हम अपने अज्ञान, दरिद्रता और रोग के कुरूप चित्र देखकर इस दर्पण को जगली हबशी की भाँति आवेग मे फोड डाले ? कदापि नही । यह महापाप होगा—आत्मघाती महापापी ।

लोकराज्य के कुछ अतीत चित्रो को देखिए । राम ने एक धोबी की बात पर अपनी प्रिय पत्नी सीता को वन मे भेज दिया । जन-मर्यादा के अवतार राम के इस त्याग और तपस्या की झाकी इतिहास भूल नही सकता ।

कृष्ण के लोकतत्र-रक्षक रूप की प्रशसा गोवर्धन पर्वत सदैव गा रहा है, बाल ग्वालो के जनतावादी गीत आज भी वृन्दावन मे गूँज रहे है ।

हर्ष और अशोक के लोकराज्य की महिमा तक्षशिला के शिला-लेखो मे अभी तक अकित है ।

वह देखिए खलीफा हजरत उमर मस्जिद मे बैठे चटाई बुन रहे है । सूर्यास्त होने को है और चटाई भी अपनी पूर्णता प्राप्त करने वाली है । इतने मे एक लोक-पाल ( गवर्नर ) आता है । अपने प्रान्त का विवरण सुनाता है । खलीफा उमर मोमिनो के हृदय-सम्राट ( अमीरुल मोमीनीन ) गम्भीरता से सुनते जाते है और अपनी चटाई की भाँति राजनीति की व्यवस्था भी सोचते जाते हैं । अब चटाई बन चुकी है, अँधेरा बढ रहा है, वे नमाज़ पढकर अपने राज्य-कार्यालय मे जाते है । चिराग जलाया जाता है । एक कर्मचारी कागजात का पुलदा देते हुए, पूछता है—"आपके बाल-बच्चो का क्या हाल है, अमीरुल मोमनीन ?"

और हजरत उमर चिराग बुझा देते है, कहते है—"चलिए, मेरे घर चलिए। वहाँ अपना चिराग जलाएँगे, निजी बाते करेगे । यह चिराग जनता का है । हम अपने निजी कामो के लिए इसका उपयोग नही कर सकते ।"

वह देखो बादशाह गियासुद्दीन बलबन कुरान की प्रतिलिपि तैयार कर रहे है। पिछली प्रति के पैसे गार्हस्थ्य मे व्यय हो चुके है। शहजादी कहती है—"अब्बा, वे खजाने किस काम के जो आपकी जिन्दगी को सुखी न बना सके ?"

"बेटी, वे खजाने लोगो के है। मै सिर्फ उनका चौकीदार हूँ।"

गुरु अर्जुनदेव हरि-मन्दिर ( अमृतसर ) के निकट बैठे अपनी नई कविता 'बसन्त की वार' लिख रहे है। लेखनी कल्पना और अनुभव के रसीले चित्र बना रही है। भावनाएँ बड़े वेग से चल रही है। इतने मे एक सिख आकर प्रार्थना करता है—"हजूर ! लगर तैयार है, जनता आपकी प्रतीक्षा कर रही है।"

और गुरु अर्जुनदेव ने अपनी कला-कृति को अधूरा ही छोड दिया और वह जन-सेवा के लिए चले गए। उनकी दृष्टि मे जनता की सेवा ही अमर काव्य था।

नदियो की धारा को फेर देने और राजाओ के इरादो को पलट देने की शक्ति सचमुच जनता है। अंग्रेजो के 'यूनियन जैक' झडे और सतलुज की धारा से पूछ लो। पहाडो के अडिग और अचल प्रभाव को लोकराज्य की योजना-शक्ति ने विचलित कर दिया है। नेहरूजी ने इस बूढे देश मे जवानी का नया जोश भर कर इसे आदरणीय बना दिया है। आज के युग का यह एक अद्भुत चमत्कार है।

किन्तु हमारी तेज भावनाओ के होते हुए भी आर्थिक क्षेत्र मे हमारी प्रगति न जाने क्यो धीमी पडी हुई है। कही काम है तो पैसा नही, कही पैसा है तो काम नही। ये लक्षण लोकराज्य को शोभा नही दे सकते।

भूदान, सम्पत्तिदान, और श्रमदान के साथ-साथ लोकतन्त्रात्मक विद्या-दान की भी आवश्यकता है। मशीनो की गहमा-गहमी मे बेकारो की चिल्लाहट भी सुननी चाहिए।

यह भी होना चाहिए, वह भी होना चाहिए। पर, इस दर्पण मे तो वर्तमान का ही प्रतिबिम्ब दीख सकता है। लोकराज्य नकद चीज है, उधार नही। हमे वर्तमान को ही सम्हालना है, भविष्य की चिता नही रहेगी।

सबको सन्मति दे भगवान !

# स्वातन्त्र्य-साधना

अधेरी रात का पिछला पहर था। सारे वातावरण मे उदासी छा रही थी। किसी गभीर दर्द से आकाश-मण्डल कराहता प्रतीत होता था, जैसे कोई निर्दोष बन्दी अपने बीते समय की याद मे सिसकियाँ भर रहा हो।

सरोवर की अल्हड लहरें किनारे की ओर हुमक-हुमक कर आ रही थी। तारो की छाया मे उनका हास-विलास कुछ विलक्षण-सा प्रतीत होता था। कमल की कली बद थी। उसका यौवन कठोर वर्तमान से सहम गया था। उसकी सुगंधि मर्माहत साधो की भाँति विवशता और मजबूरी के दिन काट रही थी।

कली ने अपने मनोबल से सन्तोष और सहनशीलता का सहारा पाकर, अपनी पंखडियों मे स्वतन्त्रता की तडप पैदा कर दी। कोमल-कोमल पखडियो ने उद्यम किया, विवशता और दासता की कडियाँ खुल गई। तीखा रंग, सुन्दर रूप एवं नव आशा का उजाला छा गया। निराशा का अधेरा मुँह छिपा कर जाने कहाँ लुप्त हो गया। तब जागरण के पंछी स्वातन्त्र्य-भाव से गाने लगे!

कमल ने यह क्या कर डाला! अपना सारा सौरभ-वैभव हवा के याचक झोको को लुटा दिया। अपना सारा रस काले-काले भँवरो, पागल मधुमक्खियो और गूगी तितलियो को बाट दिया। उसका सुनहरी रग भी सूर्य-रश्मिया उडा ले गई, जाने आकाश की लालिमा के लिए अथवा किसी अप्सरा के रूप-शृगार के लिए।

वह कमल जानता था कि यौवन भोग-विलासके लिये नहीं होता, बल्कि तमोगुण एव रजोगुण पर सतोगुण की विजय स्थापित करने के लिये होता है। स्वतन्त्रता आतक जमाने के लिए नही होती, अपितु सेवा और त्याग की कल्याणकारी वृत्ति को बढावा देने के लिए होती है। भवसागर से निर्लिप्त रह कर ही सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। प्राणिमात्र की रक्षा करना, रचनात्मक कामो मे व्यस्त रहना, सेवा-पथ पर चलते हुए सत्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना—यही स्वातन्त्र्य-साधना का उज्ज्वल रूप है।

किसी को अपने अधीन रखने का विचार ही आजादी को गुलामी मे परिणत कर देता है। अपरिग्रह ही आजादी का मूलमत्र है। काला-काला भँवरा, पागल मधुमक्खी और गूगी तितली सभी हिल-मिलकर कमल का अमृत छकते है। वहाँ कोई श्रेणी-सघर्ष नही। कोई रंग-रूप अथवा जाति-पाति का टटा-बखेडा नही।

उनके प्रेम भाव की एक ही बोली है। जहाँ पहरावे, बोली अथवा जाति-पातिके भेदभाव होते हैं, वहाँ आजादी का ठिकाना क्षण-भगुर हो जाता है। जिसको अपनी स्वतत्रता का सच्चा गर्व होता है, वह दूसरे की स्वतंत्रता को पूज्य भाव से देखता है, उसे अपने त्याग और प्रेम का भरोसा होता है। प्रेम-भाव ही स्वतत्रता का स्रोत है। भेदभाव दासता का गर्त है।

महात्मा बुद्ध न सच कहा था—

**"न हि वेरेन वेरानि सम्मन्ती या कुदाचनं।**
**अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनंतनो॥"**

अर्थात्, वैरभाव कभी वैर से नही मिटता। वैर तो प्रेम से ही मिटा करता है, यही सनातन नियम है।

जिस व्यक्ति के मन से लोभ, मोह और द्वेष की वृत्तिया नष्ट हो जाती है, वह चारो ओर प्रत्येक जीवधारी के लिए मित्रता के भाव का सचार कर सकता है।

अपने शुभ संकल्प मे दृढ रहने के लिए महात्मा बुद्ध ने उपदेश दिया है—

"यदि कोई मनुष्य टोकरी और बेलचा लेकर यह कहे कि मै सारी धरती को खोदकर फेंक दूँगा,

"यदि दूसरा मनुष्य घास का पूला बना कर कहे कि मै इससे गगा नदी को भस्मसात् करके छोडूँगा,

"यदि तीसरा मनुष्य लाख, हलदी और मजीठ का रङ्ग लेकर कहे कि मै इससे सारे आकाश को रङ्ग डालूँगा,

"तो भी इन तीनो व्यक्तियो का दुस्साहसपूर्ण प्रयत्न धरती, गगा और आकाश पर कोई प्रभाव नही डाल सकता। इसी तरह दूसरे लोगो के वाक्-प्रहार से तुम्हारे मन पर भी कोई प्रभाव नही होना चाहिये।"

इसी प्रकार स्वतत्र राष्ट्र के निवासी मे किसी प्रकार का डर नही होना चाहिये। सच्चा स्वतत्र व्यक्ति ससार मे किसी को भी अपना विरोधी नही मान सकता, वह किसी को पराजित करके अपना दास नही बनाना चाहता। स्वातन्त्र्य-साधना समष्टिगत साधना है, इसीलिए उसमे 'सत्य, शिव, सुन्दरम्' का अद्भुत चमत्कार होता है, काव्यमय प्रभाव होता है।

भँवरा कठोर काठ को भी छिन्न कर सकता है, किन्तु वह कभी-कभी कमल के रस-पान मे इतना लीन हो जाता है कि उसे यह भी पता नही रहता कि रात पड़ गयी है या कलियां बंद हो गई है। वह कोमल कमल की कलियो में से

निकल नही सकता, क्योकि प्रेम के बन्धन अधिक मजबूत और मधुर होते हैं। सुन्दर कमल और काले-कलूटे भँवरे का अनूठा मेल यही प्रेम-भावना करवाती है। इसी आत्मीयता के कारण भँवरे की निरर्थक 'भीभी' भी एक मधुर संगीत का स्थान प्राप्त कर लेती है।

कमल तो सभी प्रकार के बन्धनो से आजाद रहता है। कामनाओ, इच्छाओ और कल्पनाओ की भीड लग जाती है। मोह-माया के जाल चमकते रहते है, पर वह सभी से ऊँचा उठकर जब हँस पडता है, तब उसको वास्तविक आजादी मिल जाती है। भले ही उसके अतीत के पाँव को मोह का पक जकडे रखता है, किन्तु वह निर्लेप अवस्था की साधना मे, स्वातन्त्र्य-साधना मे मग्न रहता है। वह भविष्य के मनमोहक स्वप्नो को वर्तमान के कठोर सचय मे रखता है।

"मै मछली की भाँति पानी मे डुबकियाँ लगा-लगाकर खेलता, धूप मे आहे न भरता, मै सूर्य-रश्मियो का मुहताज न बनता, समुद्र के मोती की भाँति अपनी चमक-दमक मे व्यस्त रहता।"—ऐसी भ्रमपूर्ण कल्पनाओ मे वह कमल कभी नही पड़ा, क्योकि वह जानता है कि प्रत्येक वस्तु काल की मर्यादा मे रहती है।

पगली मधुमक्खिका फूलो के रस का एक-एक कण इकट्ठा कर करके शहद बनाती है। वह लालसा मे पडकर अन्त मे अपना घर-बार लुटा बैठती है। उसको सदेह हो जाता है कि शायद ईश्वर भविष्य मे जीविका का अवसर ही प्रदान न करे। श्रद्धा का अभाव उसके जीवन को नीरस बना देता है। इतना कुछ सजोकर भी वह सदैव मुहताज बनी रहती है।

जब तक हमारे मन मे विकारो का सघर्ष बना रहता है, हम सैकडो बहाने बना-बना कर अपनी हार्दिक दासता का परिचय देते रहते हैं। हमारा भय ही डक बन जाता है। हम दूसरो को डसने मे अपनी रक्षा की आशा रखने लगते है; चगे-भले मित्र के मन मे भी हम मैल डाल देते है। वैर की कालिख पूर्णिमा को भी अमावस बना सकती है।

गूंगी तितली से पूछो, उसने अपनी स्वतत्रता के लिए कितनी साधना की है। उसको अपने लोभ की रेशमी ताँतो ने कैद कर दिया था। उस कठोर दासता से छुटकारा प्राप्त करने के लिए उसको नया जन्म धारण करना पडा। रेशमी कोए मे उसने कई उपवास किये, कठोर तपस्या की, तब कही उसको तितली का रूप मिला, स्वतत्रता के पख मिले और अहिंसा का गुरु-मंत्र मिला। तितली जानती है कि अधिकार की लालसा ही दासता के युग का प्रतीक है। कर्तव्य की गभीरता से ही सच्ची स्वतत्रता का सुख प्राप्त हो सकता है।

एकता, सहनशीलता, संघटन एवं प्रेमभाव से जनता की सेवा करके हम

अपनी स्वतत्रता की शोभा-वृद्धि कर सकते है। १५० वर्षो मे अग्रेजो ने हमारे देश का जितना विकास किया था, उतना हमने १० वर्षो मे ही कर दिखाया है, क्योकि हमारी स्वातन्त्र्य-साधना मे गाँधी जी की दृढ अहिंसा काम करती रही है।

१८५७ ई० मे स्वातत्र्य-साधना का जो पहला प्रयास जन-आन्दोलन के रूप मे हुआ था, उसका प्रतीक था लाल कमल। पवित्र एकता और बलिदान के समस्त विचार उस प्रतीक मे मौजूद थे। एक शताब्दी बीत गई है, उस कमल के अकुर फूट पड़े है। राजनीतिक स्वातत्र्य के पश्चात् आर्थिक स्वातत्र्य के अनेक उद्यम किये गये है, बुनियादी शिक्षा, सामूहिक विकास-योजना, पचवर्षीय योजना, पचशील, कस्तूरबा'-ट्रस्ट, गाधी-स्मारक निधि, हरिजन-सेवक-सघ, भारत-सेवक-समाज, आदिम जाति-सेवा-मण्डल, खादी एव ग्राम-उद्योग-सघ, सर्व-सेवा-सघ, सर्वोदय-समाज आदि उसी कमल के नव अकुर है।

"इतिहास मे जो नही हुआ, वह कभी नही हो सकता, इस बात को मानना मानवी स्वभाव के विरुद्ध है।" गाधीजी ने यह महावाक्य अपनी रचना 'हिन्द-स्वराज्य' मे लिखा है।

संत विनोबा भावे के सर्वोदय आन्दोलन के सम्बन्ध मे बहुत-से लोग सशय और निराशा के भाव रखते रहे है परन्तु अब इसकी अद्वितीय सफलता को देखकर एक वर्गहीन समाज का निर्माण सम्भव प्रतीत होने लगा है। ३००० ग्रामो का दान आज तक इतिहास मे नही हुआ था, किन्तु सत विनोबा ने यह चमत्कार कर दिखाया है।

भारत देश को पुराने विचारको ने नए खिले कमल के साथ उपमा दी थी। यह उपमा अपने सभी सच्चे अर्थो मे साकार होने वाली है। जब हमारी जय-जयकार रचनात्मक कार्यों मे अनूदित हो जायेगी, जब हमारे शहीद नेताओ की कल्पना साकार होकर जीवन-पद्धति बन जायेगी, तब हम अपनी स्वातंत्र्य-साधना मे सफल हो जायेगे।

# गुरु हिवैंघर

भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य शाति है, वह शाति जो नवीन चन्द्रमा के शीतल हास से विकसित होती है, वह शाति नही जो मरुस्थल की निर्जीव बालू मे दीखती है अथवा श्मशान की उदासी मे विद्यमान होती है। चन्द्रमा उन चौदह पदार्थों मे से गिना जाता है जो सागर-मथन से प्राप्त हुए थे। इसी चन्द्रमा की सी द्रवित शीतलता और शाति का नाम सोम है। पुरातन ग्रन्थो मे सोम चन्द्रमा का पर्याय ही माना गया है। इसलिए चन्द्रवार को सोमवार कहा जाता है। पाश्चात्य भाषाओ मे इसी का अनुवाद Monday (Moon-day) है।

देवताओ को अमृतपान का अवसर प्रदान करने के लिए शिव ने पहले ही कालकूट विष छक लिया था। परोपकार का नाम ही शिव है जो हिमालय की भाँति अडिग रह सकता है। इसी लिए शिव का एक नाम हिमाद्रिन् भी है। शिव के मस्तक पर के चन्द्र को हिमकर अथवा हिमाशु भी कहते है। इतिहासकार यह भी बताते है कि हिमालय के राजाओ को 'शिव' कहने की प्रथा प्रागैतिहासिक काल मे देर तक रही है। शिव ही सुरसरि गगा को लाए थे। गगा का जल जीवनामृत है, वह मगलमय हिमकर मे से प्रवाहित होती है।

हिमालय भारत की सस्कृति, दार्शनिकता और सभ्यता का भव्य प्रतीक है। अमृतमय विकास का शाति के हिमकर मे से निकलना ही जीवन का आदर्श है। इसीलिए नानक ने सद्गुरु को हिवैंघर (हिम + आलय) कहा है—'गुरु दाता, गुरु हिवैंघर, गुरु दीपक तिह लोइ।' सस्कृत मे जीवन का एक अर्थ जल भी है क्योकि हिम-खण्ड तो गतिहीन होता है, निष्प्राण होता है, जल प्रवाहमान होता है। कठोर और कोरी शाति वाली बर्फ जब द्रवित होती है वह जीवन-दायिनी गगा का रूप धारण कर लेती है।

सुरसरि, भागीरथी, जाह्नवी आदि सैकडो नाम गगा के प्रचलित रहे है किन्तु गगा नाम उस प्रेम का द्योतक है जो भारतवासियो ने ज्ञात इतिहास से भी पहले चीनियों के प्रति व्यक्त किया था। चीनी भाषा मे 'क्याग' जल अथवा नदी को कहते है और यह यगसी क्याग आदि नामो मे प्रयुक्त है। यह भी सभव है कि भारतीय 'गंगा' नाम से विकसित होकर चीनी भाषा का 'क्याग' शब्द बना हो। पजाबी के 'कगा पाणी, कागा' आदि शब्दो मे वही भाव सुरक्षित है।

जिन दर्रो से आज क्रूर और बर्बर चीनियो ने अपनी ऐतिहासिक भावराशि

को कुचलते हुए भारत पर आक्रमण किया है इन्ही दर्रों मे से गुजरते हुए पुरातन चीनी यात्री उसे बारबार प्रणाम करते थे, ह्यू न साड आदि चीनी विचारक हिमालय के उन मार्गो पर श्रद्धा के फूल चढाते थे। किन्तु आज का चीन श्वेत शांति के स्थान पर रक्त रजित लाल सघर्ष चाहता है । शायद वह नही जानता कि बालरूप 'भोला नाथ' ऐसे ही समय अपना तीसरा नेत्र खोल देता है, उसके डमरू की धमक से भूचाल आ जाते है, उसके ताण्डव नृत्य से महाप्रलय जाग उठती है, महाबली त्रिपुर जैसे राक्षस पल भर मे भस्मीभूत हो जाते हैं । शिव की पत्नी पार्वती शक्ति है । वह कभी भी शिव के शत्रु को क्षमा नही कर सकती । उसने असुर सहार के लिए अनेक छावनियाँ बनाई जो तीर्थस्थान बन चुकी हैं—मनसा देवी, कालिका देवी, तारा (ताडिका) देवी, चितापूर्णी, नयना देवी, वैष्णव देवी, आशा देवी आदि । चडीगढ भी चडिका का पुरातन शक्ति केन्द्र था । इतिहास ने आज ऐसा पलटा खाया है कि भारत की प्रचण्ड शक्ति बडे-बडे महिषासुरो का सर्वनाश कर देगी ।

शिव शक्ति के इस महान हिमालय के प्रति अनेक कवियो ने अपने सरस उद्गार व्यक्त किये है—

1

पर्वत वह सब से ऊंचा हमसाया आसमां का ।
वह संतरी हमारा वह पासबा हमारा।
गोदी मे खेलती हैं इनकी हजारो नदियाँ ।
गुलशन है जिन के दम से रश्के-जनां हमारा ।।—इकबाल

11

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार दिव्य, गौरव विराट !
पौरुष के पुजीभूत ज्वाल !
युग युग अजेय, निर्बंध मुक्त !
युग युग गर्वोन्नत नित महान !!—दिनकर

आज हिमालय की महानता को अक्षुण्ण बनाए रखने का उत्तरदायित्व सभी भारतवासियो पर निर्भर है । भारत माता के इस मुकुट को बचाने के लिए हमारे रक्त की अतिम बूँद भी काम आए, ऐसी दृढ प्रतिज्ञा जन-गण-मन मे अंकित हो जानी चाहिए । अपने इष्ट देवता, अपने गुरु पीर का अनिष्ट कोई भी सच्चा भक्त सहन नही कर सकता । हिमालय भी हमारा गुरु है, उसके अनिष्टकारक को सभ्यता का पाठ पढाना होगा ।

हमारे तन के अणु अणु मे मातृभूमि का वरदान वर्तमान है, इसलिए यह

तन उसी की धरोहर हैं। हमारे मन के परम उज्ज्वल भाव मातृभूमि के दार्शनिक एव सास्कृतिक आदर्शो से ही विकसित होते है, इसलिए यह मन अपनी सभी अभिलाषाओ, उमगो और कल्पनाओ सहित मातृभूमि को ही अर्पणीय है। धन चाहे सोना, चादी, अनाज, मुद्रा, पशु, जमीन, मकान—किसी रूप मे हो, इसका प्रथम उपयोग मातृभूमि की सेवा के लिए हो। परीक्षा की इस विकट घडी मे हमे संयम, चातुरी, उत्सर्ग एव विवेक द्वारा यह सिद्ध करना है कि भारत प्राणवान है।

## अंतिम विजय हमारी होगी

जब हम एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाएगे और उत्पादन, निर्माण के लिए पूरी ईमानदारी से कर्त्तव्य पालन करते रहेगे, अफवाहो से तनिक भी विचलित न होकर पूरी निष्ठा और श्रद्धा के साथ अपने राष्ट्रनायक नेहरू की प्रत्येक आशा पर अमल करने मे उतना ही उत्साह दिखाते रहेगे जितना किसी सैनिक और सेवक के लिए वाछित है,

जब हम अपने सात्विक कार्यो से चारो ओर देश-वदना की पावन सुगन्धि फैला देंगे,

जब हम अपने वस्त्र-आभूषण, खान-पान और रहन-सहन मे परले दर्जे की सादगी अपना कर अपनी बचत को देश की विकास योजनाओ मे लगाते रहेगे और सभी स्वर्ण-पदार्थ अपनी सरकार को सौप कर वायुयान, जलपोत, शस्त्रास्त्र आदि सामग्री खरीदने मे सहायक होगे।।

हम सदैव याद रखे—

**राष्ट्र को आज चाहिए दान।**
**दान में तन, मन, धन औ प्राण।।**
**राष्ट्र को आज चाहिए वीर।**
**वीर अभिमन्यु हठी हमीर।।**

# हिवै का घर (हिमालय)

गुरु नानकदेव जी की वाणी मे हिमालय एक भव्य प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। इसे जनभाषा के निकट लाने के लिये उन्होने इसका अनुवाद हिवै घर किया है—

**गुरु दाता गुरु हिवै घरु गुरुदीपक तिह लोई—वार माझ (नानक)**

हिवै घरु यहाँ शातात्मा का चिह्न ही है किन्तु इसमे गौरव, दृढता और शालीनता के भाव भी आ गये है।

सिद्ध गोष्ठी मे हिवै का घरु चद्रमा (इडा) के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है—

प्रश्न—**कवन मुखि, चंद्र हिवै घरु छाइआ।**<br>
**कवन मुखि, सूरज, तपै तपाइआ ॥४८॥**<br>
उत्तर—**सबद भाखत ससि जोति अपार।**<br>
**ससि घरि सुरु वसै मिटै अंधिआर ॥४९॥**

हिवैघर = हिमागार, हिमकर = ससि, घर = इडा। इस प्रकार भी इस शब्द का विकास हुआ है।

सिद्ध गोष्ठी की पउडी ४५वी मे एक गभीर विचार व्यक्त किया गया है—

**मैण के दंत किउ खाइए सारु।**<br>
**जितु गरब जाइ सु कवण अहारु।**<br>
**हिवै का घरु मंदरु अगनि पिराहनु।**<br>
**कवन गुफा, जित रहे अपाहनु।**<br>
**इत उत किस कउ जाणि समावै।**<br>
**कवन धिआन, मन मनहि समावै ॥४५॥**

= मोम के दाँतो से लोहा क्योकर खाया जाए (निर्बल साधनो से ससार की कठोरता को कैसे पचा सकते है)? कौनसा ऐसा भोजन रूपी बल है जिसके द्वारा मन का गर्व नष्ट हो जाए? यदि हिवै घर (इडा रूपी) मदिर हो और तृष्णा की अग्नि उसका पैराहन (चोला) हो तो बताओ वह कौन सी गुफा (स्थिति) है जहाँ वह हिवै घर अडोल रहे?

४२५ वर्ष पहले के इस भव्य कल्पना-चित्र मे वर्तमान परिस्थिति का यह विकट प्रश्न भी उभर आता है—अल्प-शक्ति से शत्रु से कैसे लोहा लिया जाये ? घमण्ड को चकनाचूर करने का उपाय क्या है ? हिमालय को तृष्णा वालो की आग ने घेर लिया हो तो उसकी रक्षा किस रहस्यमय उपाय से की जाए ?

यत्र तत्र किसको • पहचान के (मन) एकाग्र रहे ? कौन सा ऐसा ध्येय है जिसके कारण मन अपने अदर ही सतुष्ट रहकर स्थिर हो जाय ?

इस प्रश्नावली का उत्तर भी पुरातन उपनिषद् शैली मे गुरु नानक देव ने बहुत सक्षिप्त दिया है—

**हउ हउ मै मै विचहु खोवै ।**
**दूजा मेटै एको होवै ।।**
**जगु करड़ा मनमुखु गावारु ।**
**सबदु कमाईए खाईए सारु ।।**
**अंतरि बाहरि एको जाणै ।**
**नानक अगनि मरै सतिगुर कै भाणै ।।४६।।**

=(ऐसी परिस्थिति मे उत्तम उपाय यही है कि) मनुष्य-समाज स्वार्थलिप्सा और (साम्प्रदायिक) अहकार को छोड दे, द्वैतभाव (बेगानगी) मिटा दे । और अद्वैत के सशक्त भाव से एकमेक हो जाए, अर्थात् प्रथम उपाय है 'नि स्वार्थ, निष्काम एकता' ।

जो व्यक्ति मन के विकारो मे ग्रस्त मनमानी करता है उस गँवार मूर्ख के लिये यह ससार कडा, कठोर और दु खद हो जाता है ।

यदि शब्द कमाया जाए, अमोघ मत्र की सिद्धि की जाए तो लोहा लिया जा सकता है, ससार का कष्ट सहन किया जा सकता है । यह है मोम के दाँतो से लोहे को चबाना, अल्पशक्ति द्वारा सकट-निवारण मे सफल हो जाना ।

नानक कहते है —जो व्यक्ति अदर-बाहर, देश-विदेश, सभी जगह एक ही जगजीवन को व्याप्त जानता है उसके सामने सारी द्वेष, तृष्णा और ईर्ष्या की अग्नि प्रभु की इच्छा से अवश्य दूर हो जाती है ।

गुरु नानक देव ने इसी भाव की व्याख्या मे एक पउडी और रची है—

**सच मै राता गरब निवारै ।**
**एको जाता सबदु वीचारै ।।**
**सबदु बसै सचु अंतरि हीआ ।**
**तनु मनु सीतलु रगि रगीआ ।।**

**काम, क्रोध, बिखु, अगनि निवारे ।**
**नानक, नदरी नदरि पिआरे ।।४७।।**

शाति के साधक को चाहिए कि पाप से सावधान रह कर सच्चे भय द्वारा गर्व, अहकार एवं आडम्बर का निवारण करे । एकनिष्ठ हो कर परम शब्द पर विचार करे, ऐसा विचार करे कि वह सत्य शब्द (गुरुमंत्र) उसके अन्तस्तल मे व्याप्त हो जाय । इस प्रकार साधक का तन-मन शात, शीतल एवं प्रसन्न हो जाता है । वह प्रेम के रंग मे रग जाता है । वह कामुकता का विष और क्रोध की अग्नि मिटा देता है । नानक कहते है ऐसा मनुष्य कृपादृष्टि वाले परम प्रियतम प्रभु की नजर मे रहता है । ईश्वर स्वय ऐसे सत्पुरुष की रक्षा करते है ।

# प्रतिरक्षा की साधना

मानव समस्त ज्ञान-विज्ञान की शक्ति का अजस्र स्रोत है किन्तु अनेक परिस्थितिया उसे अपनी रक्षा से वचित कर देती है। यही कारण है कि ससार मे युद्ध, विद्रोह, कलह अथवा अशाति का आतक बना रहता है। वेद स्वय आश्चर्य करता है कि जिस व्यक्ति की रक्षा बुद्धि, वायु एव सूर्य की शक्तिया करती है उसका कोई कैसे दमन कर सकता है।

**यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा न कि स दम्यते जन.।**

अथर्ववेद के काण्ड ३, सूक्त २७ मे अनेक मत्र रक्षा के विषय पर दिए गए है। एक मत्र में स्पष्ट कहा है—हे परम शक्ति के दाता भगवन्! आप हमारी उत्तर दिशा मे भी व्याप्त है और आप हमारे ऐश्वर्ययुक्त स्वामी है। आप हमारी बिजली एव अग्नि से रक्षा करे—ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपति स्वजो रक्षिताऽशनिरिषव: ।।४।। ऐसा प्रतीत होता है कि अणु, विद्युत और अग्नि के अस्त्रो के ज्ञान से पहले केवल शारीरिक बल अथवा साधारण लाठी और गदा जैसे हथियारो के प्रयोग का भी एक ऐतिहासिक युग था। वैदिक सस्कृति के आरम्भिक काल मे मुडा, सथाल आदि जातियो की भाषा मे रक्षा का सब से बडा प्रतीक था दुलोम (दुरोम, दरोम) जिसका अर्थ था कछुआ। अशोक के शिला-लेखो मे प्रयुक्त दुल या दुली शब्द भी उसी दरोम का विकार है। वेद-भाषा मे उसी दरोम से शब्द बना 'धर्म'। विष्णु के कच्छप अवतार बनने की कूर्म-पुराण-कथा वास्तव मे एक दार्शनिक प्रतीक है। धरती का आधार कच्छप मानना और दिशाओ के हाथी उस पर खडे करना, यह भी धर्म की शक्ति का पुरातन चिह्न है।

कछुए की नैसर्गिक आयु कोई ३०० वर्ष मानी जाती है, अपनी इंद्रियो पर जो सयम उसे प्राप्त है उस के कारण वह प्राणियो मे योगिराज कहलाने का अधिकारी है। वह न सहायता के लिए दुहाई मचाता है न आतक भरी अफवाहे सुनता है। सहनशीलता, सयम, स्थिरता, धैर्य, वैराग्य आदि अनेक गुण उसमे विद्यमान रहते है। हमारी पुरातन संस्कृति ने प्रतिरक्षा का महान प्रतीक कच्छप ही माना।

**घरि घरि मूसरी मंगल गावहि।**
**कछुआ सखु बजावै ।।**

कबीर के इस दृष्टकूट मे परम्परित जीवन-सदेश दिया गया है, चूहिया-रूपी इद्रिया (संयम की साधना द्वारा) मगल गाती है। योग वृत्ति वाला धर्म रूप कछुग्रा मुक्ति के शब्द की घोषणा करता है। ग्रौर शख की ध्वनि गूंजती है —

**i हे देवो ! यह नियम सृष्टि में सदा ग्रटल है—**
**रह सकता है वही सुरक्षित जिसमें बल है।**
**ii न हि ग्रात्मा बलहीनेन लभ्य —**
**विजय उसे वरती है जो वीरत्व दिखाए।**

विष्णु का एक रूप ग्रायुध-धारी 'राम' भी है जिसने रावण जैसे शक्तिशाली सम्राट को नष्ट कर दिया। भारत कच्छप की ढाल, ब्रह्मास्त्र, शिव धनुष, राम-बाण, कृष्ण का सुदर्शन चक्र एव ग्रर्जुन का गॉडीव भी रखता है। उसने महाभारत जैसा भयकर युद्ध भी देखा है ग्रौर विश्व-शाति की गीता भी सुनी है। जो स्थितप्रज्ञ होकर निष्काम भाव से जीवन के रण-क्षेत्र मे उतरता है उसे जीत-हार की परवाह नही होती, वह तो ग्रमरत्व का उपासक होता है।

प्रथम महा-युद्ध ने सुझाया था कि युद्ध-सचालन के तीन स्रोत है—धन, जन, यजन (Men, munition and money--Sir Walter Raleigh), किन्तु द्वितीय महायुद्ध ने यह तथ्य फिर प्रमाणित कर दिया है कि 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' इसे वैज्ञानिक शब्दावली मे War of Nerves कहा गया है। ग्रत सैनिक के बलिदान पर शोक मनाने की ग्रपेक्षा हमे उत्साह एव उत्तेजना से काम करना चाहिए। यह भी समझ लेना चाहिए कि सैनिक चाहे एक गोली से मरता है किन्तु शत्रु को वास्तव मे उसके शव के ऊपर कितनी गोलिया व्यर्थ बरसानी पडती है। उसी मात्रा से विजय की कीमत भी ग्राकी जा सकती है।

प्रतिरक्षा के यज्ञ मे हमे ग्रपनी समस्त स्वर्णराशि को लोहे मे परिणत करना होगा। धन, सम्पत्ति ग्रौर सम्बन्धियो का मोह त्याग कर सदैव सर्वदान के लिए तैयार रहना होगा। भारत माता कोटि-कोटि प्राणियो को इसलिए जन्म नही देती कि वे गिरिशिला जैसे जड स्थावर बन जाएँ, बल्कि इसलिए जन्म देती है कि वे देश की ग्रान, नैतिक मर्यादा, पूर्वजो की सस्कृति ग्रौर शहीदो के ग्रादर्श की रक्षा मे हिमालय की भाँति ग्रटल रहे।

छोटी सी मकडी भी ग्रपनी प्रतिरक्षा का ताना बाना ग्रपने ही साधनो से बुनती है, हमे भी ग्राज ग्रपने हाथो इतिहास के इस सकट-काल मे भारत की भावी समृद्धि के लिए ग्रपनी साधो, ग्रपनी ग्राशाग्रो ग्रौर रक्त की बूदो को प्रतिरक्षा के प्रबल साधनो मे बदल देना है। ग्राज हमारा यही राष्ट्र-धर्म है, यही युग-धर्म !

# संकट की वेला में

दो विरोधी गुणो वाली वस्तुओ का एक दूसरे के निकट आ कर उलझ पडना हानि और भय का कारण होता है। घी को आग के निकट रख देना सकट की बात है, किन्तु शुभ इच्छाओ के साथ जब हवन-यज्ञ किया जाता है तो घी को अग्नि मे विसर्जित करने मे कोई दु ख अथवा सकट की भावना नही होती। प्रज्वलित अग्नि में घी की आहुति देने के पश्चात् दो-चार बूँदे जो कड़छी के साथ लग जाती है उन्हे भी एक पात्र मे डाल दिया जाता है और कहा जाता है **'इदन्न मम'** अर्थात यह बूँद भर घी भी मेरा नही है।

ग्वाला मक्खन को पिघला कर घी बनाता है। असावधानी से कुछ घी आग मे गिर जाता है तो उसे पश्चात्ताप होता है। इस प्रकार सावधानी से यज्ञ मे आहुत घी और असावधानी से विनष्ट घी, दो अलग अलग भाव-भूमियो के द्योतक है। पहली का नाम सस्कार है, दूसरी का सकट । एक सकीर्तना है दूसरी सकीर्णता।

जहाँ सकीर्णता, उलझन, भीड अथवा हानि की परिस्थिति होती है वहाँ संकट होता है। जहाँ पौरुष, विक्रम, औदार्य, अथवा वैराग्य होता है, वहा शान्ति और सुख का राज्य होता है। 'ख' का अर्थ है फैलना और उदार होना, सु + ख = भली भाति उदार एव विकासशील होना। दु ख = बुरी तरह खिसकना, अनुदार होना और संकुचित होना। जीवन की उष्णता प्राणियो का स्वास्थ्य बढाती है और उन्हे विकासशील रखती है, मृत्यु की शीतलता उन्हे सुन्न कर देती है।

सकट की वह वेला विकट होती है जब हम हानि-लाभ, दु ख-सुख, पुण्य-पाप, अथवा सुकृत दुष्कृत का विवेक ही खो बैठते है। मानव के लिए ऐसी कुण्ठा पशुत्व की मूढता से भी अधिक बोझिल और विनाशकारी है।

**'संकटे हि परीक्ष्यते प्राज्ञाः शूराश्च सगरे ।।'** ३१।६३—कथा सरित्सागर

विवेकी और विद्वान पुरुषो की परीक्षा संकट के समय और शूरवीरो की रण-क्षेत्र मे होती है। जो ज्ञान अभ्यास द्वारा हमारे जीवन का अंग बन जाता है और जिसके आधार पर हम अकस्मात् शुभ कार्य करते रहते है वही ज्ञान सकट के समय तीव्र गति से हमारी समस्याओ का समाधान कर देता है। उथला

ज्ञान तो हमारी गति-विधि मे अड़चन बन जाता है और सकट को गंभीरतर बना देता है। संकट के बीज कुकुरमुत्ता की भाति रूढिग्रस्त मन मे शीघ्र ही फूट पड़ते है और विष-वल्लरी का समूह बन कर जीवन का रस चूस लेते है। ऐसे वातावरण मे कायरता का क्षीण सस्कार भी भयकर रूप धारण कर लेता है क्योकि कायरता भी एक प्रकार की शिथिल प्रज्ञा है।

पुरातन दार्शनिको ने जागरूक प्रज्ञा वाले को महावीर माना है। जिसने मन को जीत लिया मानो उसने विश्व को जीत लिया। गुरुनानक देव ने कहा है—

**आई पथी सगल जमाती मनि जीते जगु जीतु ॥ जपु**

और इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए उन्होने साधना-मार्ग को यो प्रशस्त किया है—

**मुंदा सतोखु, सरमु पतु झोली, धिआन की करहि बिभूति।**
**खिथा कालु, कुआरी काइआ, जुगति डंडा परतीति ॥**

= इच्छाओ का कर्णवेध करने के लिए सन्तोष रूपी मुद्रा पहनो, श्रम को ही अपना भिक्षा-पात्र बना लो—मेहनत करके जो कुछ प्राप्त हो उसे भगवान का दान मानो। श्रमहीन होकर बेशर्मी से भिक्षा माँगना और मुफ्त का माल उडाना पाप है। ध्यानावस्था ही जीवन की विभूति है—भस्म रमाना तो आडम्बर मात्र है। शूरवीरता के साथ स्थितप्रज्ञ होकर मृत्यु को आलिगन करने का आदर्श बनाओ, मृत्यु की कफनी पहनने मे सकोच नही होना चाहिए। शरीर को ऐसा पवित्र रखो जैसे कुँवारी कन्या होती है। ईश्वर मे दृढ विश्वास ही जीवन का सहारा है जैसे अंधे को लाठी का। सुन्दर जीवन की यही पद्धति है।

चीन के आक्रमण ने हमारे देश मे सकट की परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। दुर्भाग्य से पदार्थों की उपज भी कम हुई है और सहायता के बाह्य स्रोत भी घटते जाते है। हमे अपनी अतिम विजय के दृढ विश्वास के साथ पूरी तपस्या और त्याग से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे काम करना है। हमारा शरीर इस देश की मिट्टी से बना है और इसका सुन्दर उपयोग है देश की सेवा मे बलिदान होना।

सकट की इस वेला मे कई दुर्घटनाए आ-आ कर हमे विचलित करने का प्रयत्न करेगी, हमारा शौर्य इसी मे है कि हम धैर्य से सब कुछ सह जाए। गत विमान-दुर्घटना मे देश के पाच सेना-नायको का अकाल निधन हमारा राष्ट्र जिस धैर्य से सह गया है वह उसकी अतः शक्ति का द्योतक है।

**स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।**
**धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१।२। गीता॥**

अर्थात् अपने धर्म को देख कर तुझे भय करना और दु ख मनाना शोभा नही देता क्योकि धर्म-युद्ध से बढ कर और कोई कल्याणकारक कर्त्तव्य क्षत्रिय के लिए नही है।

सकट की इस वेला मे भविष्य के इतिहास की सामग्री इकट्ठी हो रही है। हमे अपने शौर्य, त्याग और कर्मठ परिश्रम द्वारा सकट के दु खद प्रसगो को स्वर्णिम विजय-गाथा मे परिणत करना है। और हमे इस तथ्य पर गर्व होना चाहिए कि यह पवित्र कार्य विधाता ने हमारे हाथो सौपा है। हमे यह सिद्ध करना होगा कि प्रेम की बंसी बजाने वाले ये हाथ युद्ध चाहने वालो के लिए सुदर्शनचक्र का संचालन भी कर सकते है।

शिव संकल्पमस्तु !

# जागत रहियो

गुरु नानक देव ने सच कहा है 'हउमै बूझै ता दर सूझै', अर्थात् अहकार के कारणो को समझ कर चले तो ईश्वर के द्वार पर पहुँच सकते है। अहंकार की कुत्सा हमारी सेवावृत्ति, उदारता, नम्रता और त्याग की पवित्र चेतना का गला घोट सकती है। व्यक्तिगत अहकार जब सामूहिक दम्भ का रूप धारण करता है तो भीषण साम्प्रदायिक उपद्रव उत्पन्न हो जाते है क्योकि इस दानव के प्रकोप से विवेक, न्याय और कल्याणकारी भावनाएँ म्रियमाण हो जाती है। साम्प्रदायिकता और प्रातीयता का विद्वेष अथवा भाषा का अध-मोह आकाश-बेल बन कर एकता के सुदर गुल्मो और सरल तरुओ को नीरस और कुरूप बना सकता है। विषमता, भेदभाव और ईर्ष्या की भावनाएँ मानव-समाज के शरीर पर फुलबहरी के दागो की तरह विकार के जघन्य चिह्न अकित कर देती है।

काजी की एक बूँद स्वादिष्ठ गोरस को फाड देती है। दुराचार अथवा दुर्भाव का एक शब्द भी योगनिष्ठ व्यक्ति के महापतन का कारण बन सकता है। धन-लिप्सा एव स्वार्थपरता की छोटी छोटी भाव-लहरियाँ बडे से बडे प्रगति-पोत को अथाह गर्त मे डुबो सकती है। अत अपनी मूल्यवान सस्कृति की रक्षा के लिए हमे सतत सजग रहना चाहिए।

जब कोई जाति सवेदना और सहानुभूति को संकुचित कर बैठती है तो अविश्वास का बवडर उस के सगठन के सभी कोमल ततु नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। सच पूछो तो मानवता का पतन परमाणु-विस्फोट से भी अधिक भयकर परिणाम रखता है। सतो ने कहा है—

१. निंदत मूढ़ मलय-चंदन कौं राख अग लपटावै।
मान-सरोवर छोड़ि हंस-तट काग सरोवर न्हावै।—सूरदास

२. करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावत सुरसरि विहाय सठ फिरि-फिरि विकल अकास निचोयो।
—तुलसीदास

देश पिता महात्मा गाधी की तपःपूत वाणी ने इसी विषय पर सुन्दर विचार दिया है—

'भावना का स्थान हृदय है। अगर हम हृदय शुद्ध न रखेगे तो भावना हमे गलत रास्ते पर ले जायेगी।'

आज हमारे राष्ट्र पर सकट के बादल मँडरा रहे है और हमे अधिक से अधिक परिश्रमी बनने की आवश्यकता है। सहस्राब्दियो से हिमालय भारत की रक्षा करता रहा है। अब तो वह बहुत बूढा हो चला है। उसने अपनी जिम्मे-दारी भारत के तरुण सपूतो के कधो पर डाल दी है। वह जानता है कि ये तरुण वीर शैलबाला शक्ति और कैलाशपति शिव के नामलेवा है। गणतन्त्र का महान प्रतीक गणेश इनके सम्मुख है। विजयश्री उन्ही को प्राप्त होगी जो सकट को त्याग और तपस्या को महोत्सव समझते है।

राष्ट्र-निर्माण की इस अमर वेला मे जबकि नीव के मजबूत पत्थरो की आवश्यकता है, कलश का आभूषण बनने की होड वैमनस्य का रूप धारण कर सकती है। हार्दिकता और समन्वय की भावना के लिए कोरी बौद्धिकता हानिकर है। भ्रम और हीनभाव सुन्दर भाव-ऐक्य के पथ के रोडे है, इन्ही के प्रकोप से विकास के पग क्षत-विक्षत हो जाते है।

हमारे देश ने मानव इतिहास मे राष्ट्रो को सयुक्त करने का सर्वप्रथम सदेश दिया था—'वसुधैव कुटुम्बकम्'। इसलिए हमारा यह उत्तरदायित्व है कि हम सब एकता, सगठन और प्रेम के सूत्र मे बँध कर कम से कम अपने राष्ट्र को तो सबल, स्वस्थ बनाएँ। यदि हम इस पुनीत कार्य मे सफल न हुए तो भावी युग के इति-हासकार हमारे आलस्य पर कटाक्ष करेगे। सशय का विन्दु अथवा मनोमालिन्य की खल-रेखा आज चाहे क्षीण-सी दिखाई दे, पर अश्रद्धा का वेग उसे कृष्ण सागर का रूप दे सकता है। उदारता, धैर्य और सहिष्णुता के धवल-शीतल अनुलेप से आज उस रेखा को हम मिटा दे तो अच्छा है, वरन् कल असत्य, हिसा और विनाश की शक्तियाँ इस रेखा को खाडी बना देगी, काली कराल।

ससार हमारे अस्पष्ट पराक्रम की जडो का मूल्याकन नही करेगा, वह तो इसके फलो और फूलो को परखेगा। वह हमारे गले-सडे विषाक्त फलो और फूलो को अमृत सदृश नही मानेगा।

स्वर्णिम भविष्य का सबेरा त्याग, सेवा और तपस्या की लालिमा मे से फूटेगा। भारतीय दर्शन और साहित्यादर्श की सार्थकता भी इसी मे है कि जनता की निराशा, कुण्ठा, कटुता और स्वार्थपरता का तिरोभाव सात्विक आनन्द मे हो जाए।

# भाव-एकता

मन की विशेष शक्तियो के कारण 'मानव' सज्ञा मनुष्य को मिली है। मानव के मन मे भावो का एक विशाल जगत होता है। महाकवि गालिब ने भी मनुष्य को इक महशर-इ-ख्याल, अर्थात् भावो का प्रलय, माना है—

**है आदमी बजाए खुद इक महशर-इ-ख्याल।**
**हम अँजुमन समझते हैं खलवत ही क्यो न हो॥**

भावो को सुचारु, शुद्ध और कल्याणकारी बना कर ही उत्तम सस्कृति का निर्माण हो सकता है। शिक्षा-दीक्षा, योग-ध्यान, सभी अनुष्ठानो का ध्येय है भाव-एकता की साधना। दृश्यमान जगत का नियम है एकता से अनेकता की ओर विकास, किन्तु आध्यात्म का ध्येय है अनेकता मे से एकता की खोज। समस्त भारतीय दर्शन इस विचार के केन्द्र-विन्दु से निसृत हुआ है। जैसे विविध स्वरो से ही सुन्दर सगीत बनता है वैसे ही विविध भावो से भारतीय सस्कृति का विकास हुआ है। जीवन का सिक्का दो पहलू रखता है—सत्य और प्रेम अथवा ज्ञान और भक्ति। सत्य को प्राय सिद्धान्त रूप मे ग्रहण किया जाता है किन्तु सत्य तो मनसा, वाचा, कर्मणा हुआ करता है। सत्य तो शक्ति और चेतना का स्रोत है। झूठ के पाँव नही होते, सत्य तो विद्युत गति से भी तेज चलता है, बल्कि जब सारी गति ही सोई पडी थी, सत्य जागता था। कुरान मे सत्य ( हकीकत ) को ही ईश्वर ( हक ) माना गया है। महात्मा गाधी सत्य को ही ईश्वर मानते थे।

सुन्दरम् का बाह्य आकर्षण जब सत्यम् का रूप धारण कर लेता है तो कीट्स इस अवस्था मे कहता है Truth is Beauty। जीवन मे सुन्दरम् और सत्यम् ही काफी नही, शिवम् भी अभीष्ट है। दूसरे शब्दो मे, सत्य जब तक कल्याण का रूप धारण नही करता वह व्यर्थ रह जाता है। सअदी शीराजी ने तो कल्याण-कारी झूठ को भी उपद्रवी सत्य से बिहतर माना है। शिवम् के इस दृष्टिकोण से देखे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि सुन्दरम् ( मजाज ) सत्यम् ( हकीकत ) मे परिणत होकर शिवम् ( इश्क ) बन जाना चाहता है। तभी तो ईसा ने कहा God is love, वेद ने कहा ईश्वर प्रेमस्वरूप है। सत्य का क्रियात्मक रूप प्रेम ही है, अर्थात् सच्चे प्रेम की प्राप्ति ही मोक्ष-सिद्धि है। 'सत्यस्य नाव सुकृतमपीरन्' कल्याण-कारी व्यक्ति को सत्य की नाव पार लगाती है—ऋग्वेद ४।३३।६

अणु के अन्दर पक्ष और विपक्ष के अनेक विद्युत-कण एक साथ रहते हैं, उनकी भाव-एकता शक्ति का स्रोत है, किन्तु इस एकता को फोडकर विनाश ही मिल सकता है विकास नही।

विज्ञान के अन्धे अहकार ने आज मानवी सस्कृति के लिए बहुत बडा आतक उत्पन्न कर दिया है क्योकि विज्ञान सेवा-पथ एव भक्ति-धर्म से विमुख हो गया है, राजनीति भी नैतिकता को तिलाजलि दे चुकी है। मानव देवत्व को छोडकर पशुत्व की ओर जाने मे गर्व समझने लगा है। यही सकट की बात है।

भारत मे पिछले कई वर्षो मे विज्ञान का माहात्म्य गाया जाता रहा है। हमारे नेता काव्य, साहित्य, संगीत और अन्य कोमल कलाओ की अपक्षा उपयोगी कलाओ और यत्रो पर अधिक बल देते रहे है, बेचारो को रोटी की समस्या ने हार्दिकता से वंचित कर दिया। आज भारत से करुणा पख लगाकर उडती जा रही है। समाज को सजीव, सचेत और परम्परासम्पन्न न मान कर उसे यत्रवत् समझना खतरनाक है। 'उन्स' अर्थात् प्रेम का पुतला ही इन्सान है। उसका जन्म प्रेम के तत्त्व से होता है। उसका मरण भी अमृतमय होना चाहिए।

'सगच्छध्व सवदध्वम्, समाना हृदयानि व:'। वेदका यह पवित्र मत्र बताता है—'मिलकर चलो और मिलकर बोलो, तुम्हारे हृदय एक हो।' अग्रेजो ने हमे ऐसी स्थिति मे रहने का अवकाश ही नही दिया था। अग्रेजी भाषा की पूजा आज भी एकता और समानता के उस आदर्श मार्ग मे एक क्रूर बाधा है। सत विनोबा ने अपनी पुस्तिका 'भाषा का प्रश्न' मे कहा है—

"अग्रेजी माध्यम से शिक्षण देना सौफीमदी मूर्खता है"—पृ० ८; "मातृभाषा को दबाती है अग्रेजी। इसके पीछे इतना भारी शक्तिक्षय हुआ है"—पृ० ३७, "अग्रेजी के ज़रिए दुनिया से सम्बन्ध रख सकते है, ऐसा मानना एक मृगजाल है"—पृ० १७। उनका दूसरा विचार है—'हिन्दुस्तान की सब भाषाए नागरी मे लिखी जाये तो एकता के लिए बहुत उपयोग होगा "पृ० ५०, 'राष्ट्रभाषा हिन्दी सिखाने की जितनी जरूरत है, उतनी ही जरूरत इस बात की है कि अनेक भाषाओ की लिपि एक बने'—पृ० ५६।

भाव-एकता की स्थापना राजनीतिक आदोलनो, जयकारो, प्रस्तावो और कानूनों से सम्भव नही। इस के लिए तो आवश्यक है निर्मल और नम्र हृदय वाली प्रेममय भाषा, स्थित प्रज्ञा तथा स्पष्ट चिन्तन वाली करुणामयी साहित्य-साधना, एव शुभ सकल्प वाली निष्काम सेवा वृत्ति।

# संवाद-शिक्षा

ब्रह्मचर्य सभी आश्रमो का आधार माना जाता है और इसका साधन इन्द्रिय-निग्रह है। वेद वाक्य है—ओ३म् वाक् वाक्। ओ प्राण प्राण, ओ चक्षु चक्षु। ओ श्रोत्रम् श्रोत्रम्—यजु० ३६।३२

ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हमारी वाणी वाणी ही हो जाए, उत्तम से उत्तम गुण हमारी वाणी मे भर जाए। हमारे प्राण आदर्श प्राण हो। आँखे शुद्ध एवं शुभतम वस्तु ही देखें और कान सरस बाते ही सुने। आतरिक आनन्द की प्राप्ति के लिए बाह्य इन्द्रियो की तपस्यामयी शिक्षा की ओर वेद ने सकेत किया है। जो व्यक्ति इस शिक्षा से वचित रहता है और केवल पुस्तक-ज्ञान को ही प्राप्य शिक्षा मान बैठता है वह जीवन के सगीत और संवाद से शून्य रह जाता है।

मानव की सुगम परिभाषा 'संवादमय प्राणी' हो सकती है, किन्तु उस की सामाजिकता उस की कथनी को करनी मे अनूदित करना चाहती है। कथनी गुह्य सत्य को छूना चाहती है और करनी शिव का रूप धारण करना चाहती है। ये दोनो ध्येय वास्तव मे एक होकर भी अनेक रूपो मे दिखाई देते है। यही अनेक-रूपता विवाद का कारण है।

आज विवाद का अर्थ चर्चा के निकट आ गया है किन्तु पुरातन युग मे विवाद का अर्थ झगडा था। वाद-विवाद का कारण अप्रत्यक्ष-सत्य, शंका, मोह और अज्ञान ही हुआ करता है। अपने मत को परिपूर्ण और श्रेष्ठ समझना, हठ-पूर्वक दूसरो के मत को त्रुटिग्रस्त और तुच्छ ठहराना, श्रेयस्कर नही हो सकता, वह तो केवल वाक्प्रहार ही है। इसकी जड तृष्णा, भ्राति अथवा अविद्या है जिस का विषफल क्रोध एव सताप है।

ऋग्वेद ने बताया है कि वास्तव मे चार प्रकार की भाषा है। मनुष्य केवल एक प्रकार की भाषा बोलते है—

**'गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥'**

—१।१६४।४५

गुहा वाणी अथवा मूक भाषा एक तरह से प्रेम की प्रेषणीयता है जिसकी ओर सकेत करते हुए कुरान ने कहा है—

**'अलफ़कीर अजा अअर्फ अल्लाह कल्ल लिसानु।'**

अर्थात् फकीर जब खुदा को पहचान लेता है, उसकी वाणी मूक हो जाती

है। संतो ने इस भाव को गूंगे के गुड द्वारा व्यक्त किया है—

**ऐसो बेढी वरिन न साकउ सभ अंतर सभ ठांई हो।**
**गूंगे महा अंम्रत रसु चाखिआ पूछे कहनु न जाई हो ॥—नामदेव**

अध्यात्मवादी भारत अपने ही अन्वेषित इस सत्य को पहचान ले तो भाषा-वाद के भयकर विघटनकारी आन्दोलनो से विमुक्त हो सकता है। इसी पवित्र भूमि के भगवान बुद्ध ने कहा था—'आत्म-दर्शन द्वारा जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया वह सम-विषम के भाव से मुक्त हो जाता है, रूढ मतो के जाल से छूट जाता है और वाद-विवाद से ऊपर उठ कर वह शुद्ध सवाद देता है—जीवन का मैत्रीपूर्ण सवाद। स्वर्गीय भाई वीरसिंह ने ऐसी ही परिस्थिति मे कहा था—

**'अड़िम्रा चुप वे, सुहणिआ चुप। एथे बोलण दी नहींओ वे जाअ ॥**
**समझण सोचण ते बोलण दी ताब, मुक जांदीए अपणे आप ॥'**

इसी अवस्था को अकथ कथा कहते है। समर्थ गुरु रामदास की वाणी मे आया है—'तुटे वाद संवाद ते थे करावा।'—विवाद मिटा कर ही सवाद उत्पन्न होता है और उसकी महत्ता जीवन का अनुभव ही बताता है केवल तर्क नही। श्रद्धा का राम-रसायन ही वाद-विवाद से मुक्त करके परमानन्द की प्राप्ति करवाता है। नामदेव जी की उक्ति है—

**वाद-विवाद काहु सिउ न कीजै, रसना राम रसाइन पीजै ॥**

कबीर जी सवाद की शिक्षा के लिए नम्रता और सहनशीलता को परमावश्यक समझते है—

**सहे कुशब्द बाद को त्यागे छाडे गरब गुमाना।**
**संत नाम ताहि को मिलिहै कहे कबीर सुजाना ॥**

इस दृष्टिकोण से सवाद-कला के शिक्षार्थी को उत्तम श्रोता भी होना चाहिए, तभी वह श्रुति के पावन मदिर मे प्रवेश पा सकता है। संत ज्ञानेश्वर ने 'भावार्थ दीपिका' के नवम अध्याय मे लिखा है—जब श्रोतागण के मेल की अनुकूल वायु चलने लगती है तब हृदय रूपी आकाश मे वक्तृत्व के रस-मेघ का सचार होता है। परन्तु श्रोतागण उदासीनता के कारण ठीक तरह से ध्यान न देंगे तो वक्तृत्व-रस का बनाया मेघ भी छिन्न-भिन्न हो जायेगा। जैसे चद्रकात मणि को पसीजने मे प्रवृत्त करने की शक्ति चद्रमा मे ही होती है, उसी प्रकार जब तक श्रोता सहृदय न हो, कोई व्यक्ति वक्ता हो ही नही सकता। इसी भावभूमि पर खड़े हो कर कबीर सवाद-शिक्षा देते हुए पुकार उठे थे—

**श्रोता तो घर ही नहीं, वक्ता वदै सो वाद।**
**श्रोता वक्ता एक घर तब कथनी को स्वाद ॥**

# हमारी निर्धनता

शास्त्रो ने तीन प्रकार का धन माना है—तपोधन, विद्याधन एवं भौतिक धन। इनका महत्व भी इसी क्रम से न्यून अधिक है। संसार मे भारत की श्रेष्ठता केवल तपोधन के आधार पर बनी रही है, किन्तु आज भौतिकता ने धर्म को कर्म से पृथक् कर दिया है। परिणाम स्वरूप रुपया-पैसा आदि भौतिक धन परमानन्द की सिद्धि मे साधक नही रहा, बाधक बन गया है।

हमारे निम्न वर्ग के नागरिक का कोई घर-घाट नही। वह योनि-दुःख भोगने आया है। उसको धर्म बताता है कि 'कर्म का लिखा टारे न टरे।' उसको समाज बताता है तुम्हारा जन्म ही दूसरो की सेवा के लिए हुआ है, सेवा का फल मिले न मिले।

भारत की निर्धनता इतनी पुरानी है जितनी सुदामा की कहानी, किन्तु प्राचीन काल की निर्धनता इतनी शोचनीय एवं लज्जास्पद नही थी जितनी आज की यह कृत्रिम निर्धनता। पिछले भारतवासी को साधनो के अभाव और वैराग्य वृत्ति ने निर्धन बनाया था, परंतु उसका समाज उसकी जीविका का प्रबन्ध कर देता था। आज के भारतवासी को पूंजीपति सामंत वर्ग ने जानबूझ कर कंगाल बनाया है और उसे विवश कर रखा है कि थोड़े पैसो पर काम करे और भिक्षा-वृत्ति अपना ले।

बौद्ध मत ने बताया था कि ससार मिथ्या है, इसमें मन न लगाओ। भौतिक पदार्थों का ज्ञान 'अविद्या' ठहराया गया। वास्तविक ज्ञान तो अध्यात्म ज्ञान ही माना गया। ऐसे विचारो ने मुसलमानी साम्राज्य-काल में धनवानो के विरुद्ध जनता को कभी उठने नही दिया और उसे निष्कर्मण्य बनाए रखा। मलूक जी ने कहा है—

> अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।
> दास मलूका कह गये सब के दाता राम॥

निचले वर्ग को शात रखने के लिए सदाव्रत लगा कर, कभी 'हलालखोर, बहिश्ती, मिहतर' जैसी उपाधियाँ देकर उनके दु.खी मन को सात्वना दी जाती रही। मौलिक और भौतिक बातो से लोगो का ध्यान हटाया जाता रहा। उन्हे अलौकिक स्वर्ग के रगीन सपनो मे मग्न रखा जाता रहा। अग्रेजो ने आकर हमारे सब सपने तोड दिये। उनके भौतिकवाद ने मानो हमें जगा दिया कि हम

इस ठोस धरती के निवासी है, स्वर्ग के नही !

इससे पूर्व कि हम सँभल सकें, अंग्रेज़ हमारी त्रुटियो से लाभ उठाते रहे और हमें अधिक निर्धन बनाते रहे। रेल, डाक, तार, कारखाने सभी हमारे लूटने के साधन बन गए। जो व्यक्ति हममे से जागरूक हुए वे भी यह लूट का काम सीख गये। चोर, चोर का साथी होता है। हमारे पूँजीपति भी साम्राज्यवादियो के गुर्गे बन गए। जिस गति से विज्ञान के घातक हथियार बनते गए और मशीनें बनती गई उसी गति से साधारण लोग निर्धन होते गए। पदार्थों पर अंग्रेज अपना अधिकार जमाता गया और हमारा धन लूटता रहा। हमारे समाज के दो वर्ग बन गये, एक 'माया को माया मिले' वाला, दूसरा 'खाट पर बैठ कर राम नाम जपने वाला।'

निर्धन अधिक निर्धन बन गये। ग्रामो का धन शहरो मे आता गया। कुछ सरकार ने लूटा, कुछ जमीनदार ने और कुछ मध्यस्थ व्यापारियो ने। खेत उजड गए; उपज घटती गई और जन-सख्या बढती गई। उधर मशीन-युग से पूँजीवाद ने कई कृत्रिम आवश्यकताएँ बना दी, महँगे फैशन सिखाए, भ्रष्टाचार बढाया और अनुपयुक्त विद्या पढाई। यदि कोई यह कहे कि हमारी निर्धनता का कारण केवल हमारी अविद्या है तो उसे लाल चीन पर दृष्टि उठानी चाहिए कि किस तरह आज से दस वर्ष पहले का निर्धन और अपढ चीनी अब एक खाता खिलाता व्यक्ति है। यह भी सत्य है कि एक साधारण भारतीय की बुद्धि किसी राष्ट्र के साधारण व्यक्ति से कम नही। डा० गुलाम सैयदैन तो भारतीय बुद्धि को सर्वश्रेष्ठ मानते है।

यदि यह कहा जाए कि हमारा आचार-व्यवहार अच्छा नही, इसलिए हम निर्धन है, तो अमेरिका के किसी साधारण व्यक्ति से तुलना कीजिए। जितना भ्रष्टाचार अमेरिका मे है, कही और न होगा। वहाँ का निर्धन अपने आपको इसलिए निर्धन समझता है कि उसके पास मोटरकार नही। इसी प्रकार इग्लैड के निर्धनो की तुलना करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था कि मेरे भारत के मजदूरो और किसानो के झोपडो के सामने तुम्हारे ये घर जिन्हे तुम घृणा करते हो, महल दिखाई देते है। भारत के कोई आठ करोड व्यक्ति दिन भर केवल एक समय भोजन प्राप्त कर सकते है। इस घोर निर्धनता का कारण है, पूँजी का गलत बटवारा। जमींदार, पूँजीपति और बडे कर्मचारी बिना काम किए देश की उपज अथवा धन के स्वामी बने हुए है और कृषक, श्रमिक एव कारीगर जो एडी-चोटी का पसीना बहाकर काम करते और धन पैदा करते है उन्हें अपने साधारण अधिकारो—रोटी, कपडे और मकान से वचित रखा जाता है।

रूस का कृषक और श्रमिक अपनी उपज का आप मालिक है। वहाँ शक्ति के अनुसार काम करते हैं, आवश्यकता के अनुसार धन पाते है। किन्तु हमारे कर्मचारी की बुद्धि इस विचार मे लगी रहती है कि किस तरह चोरी-छिपे घूस खाए, व्यापारी की चपलता इसी बात मे रहती है कि वस्तुओं के होते हुए भी अभाव उत्पन्न कर दे।

भारत की पुण्य भूमि मे प्रकृति ने केवल मिट्टी और पत्थर नही रखे, अमूल्य पदार्थ भी रखे हैं, किन्तु उनके उपयोग के साधन अल्प और असगत है। यदि सारी सत्ता जनता की सात्विक शक्ति को सौप दी जाए तो ग्रामीण श्रमिक निर्धनता के कारण जीवन से निराश न दीखेगा। उसकी आँखो मे आशा की चमक आ जाएगी, उसके उर का श्मशान यौवन का रगमहल बन जाएगा—"मैं योनि-सताप भोगने नही आया, मैं अपने राष्ट्र को बलवान् और समृद्ध बनाने आया हूँ।"

# मित्रस्य चक्षु

जो सब से स्नेह करता है, सब को मिला कर रखता एवं प्यार करता करवाता है, उसे मित्र कहते है ।

एक ईरानी दार्शनिक से किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया—"मित्र अच्छा होता अथवा भाई ?"

उसने उत्तर दिया—'भाई अच्छा होता है यदि मित्र हो ।"

भाई मित्र न हो तो घर की लका भी ढा देगा । इस जगत की उत्पत्ति ही मेल-मिलाप से हुई है । यदि परमाणु आपसी मेलजोल छोड़ दे तो महान विघटन से प्रलय हो जाए । लय और योग का नाम विकास है । शिव और शक्ति अथवा पुरुष और प्रकृति के योग से सृष्टि का निर्माण हुआ है । उनके सतुलन का नाम ही सतयुग है । ब्रह्मज्ञान एवं विज्ञान का सयोग जब से टूटा है ससार मे कलह, अशाति और विघटन के चिह्न दिखाई देने लगे है । वेद तो अनादि काल से पुकार रहा है—"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' मित्र की निगाह से देखो, मित्र की निगाह से !!

हम विकृत आँखो से—कभी लोभ, कभी कामुकता, कभी क्रोध, कभी मोह, कभी अहंकार की दृष्टि से—देखते है । यह आँखो का दुरुपयोग ही तो है ।

"आँखो का था कसूर छुरी दिल पै चल गई"—आँखो के विकार से मन के विकार जागते है और मनुष्य का पतन परमाणु बम के विस्फोट से हजारो गुना भयकर और लज्जास्पद होता है । परमाणु अथवा उद्जन का विस्फोट एक प्रतीक है मानवता के पतन का, और रात के घुप अंधेरे मे धरती माता विश्व-विधाता से, सिसकियाँ भरती, अश्रुकण बरसाती, उपालभ के लहजे मे पूछती है—"हे मालिक ! तेरे बदे क्या करने जा रहे है ? तू मानव को प्रेम-पुत्र, वरद पुत्र कहता था, देख इसकी करतूत !!" 'मुझको भी शर्मसार कर, आप भी शर्मसार हो ! !'

मनुष्य ने स्वयं ईश्वर को प्रेमस्वरूप माना था, इश्क अल्लाह की जात है; गाड इज़ लव । तात्पर्य यही था कि मानव प्रेम को आराध्य देवता मान कर जीवन-यापन करे किंतु आज आस्तीन मे साँप, बगल में छुरी, वाणी में तीर—ये शत्रुता के सामान कहाँ से आ गए ! हिमालय की शांत नील चोटियो पर खून से सने पांव कौन धर रहा है ? महासागर के गंभीर मौन मे विस्फोट का ज़हर कौन

डाल रहा है ? मानव का दंभी स्वार्थ शैतान से बाजी जीत जाने की होड़ कर रहा है ।

"ओ चक्षुः चक्षु"—आँख, आँख ही हो जाए, आँख उत्तम से उत्तम वस्तु ही देखे। और उत्तम वस्तु का नाम है 'सत्यम्' जिसके आकर्षण का नाम है सुदरम् और जिसके प्रभाव का नाम का है शिवम् ।

सारे सुन्दरम् का आदि स्रोत है प्रकाश जो स्वरूप की विशेषताएँ हमारी आँख मे प्रतिबिम्बित कर देता है । इसीलिये प्रकाश के स्रोत को सूर्य कहते है जो मानवी सभ्यता के विकास के साथ-साथ अनेक गुणों का प्रतीक बन गया है । वह सविता है, उत्पत्ति* करने वाला है क्योकि उसका स्नेह सच्चा है । वह आदित्य है हमेशा रहने वाला है । किंतु उसका एक नाम है मित्र जिसे अवस्ता मे मिथ् कहा गया है और यूनानी भाषा मे भी यही नाम है । आधुनिक फारसी मे उसे मिहर कहते है, यथा मिहरि जहाँताब = ससार को चमकाने वाला सूर्य (विष्णु), किंतु इसी शब्द को मित्रता से भी सम्बद्ध रखा गया है, मिहर = दया, मिहरबान = दयावान ।

याज्ञवल्क्य ने वृहदारण्यक उपनिषद् मे बहुत वैज्ञानिक रूप मे सिद्ध किया है कि †चक्षु ही रूप का आधार है और जागृत अवस्था मे आत्मा यही निवास करती है, इसका प्रतीक सूर्य है ।

अब मित्र अर्थात् सूर्य की निगाह से देखने का तात्पर्य होगा जागृत अवस्था मे, सावधानी से, समता की दृष्टि से सब को देखना । सूर्य की किरणे मरुस्थल की रेत को, पर्वतो की बर्फ को और जोहड के पानी को सामान्य रूप मे प्रकाशित करती हैं । एकरसता एवं समदर्शिता के इस भाव ने सूर्य के चित्र मे एक आँख अंकित की है—अर्थात् सब को एक आँख से देखना । जब हम किसी की आलोचना वैर-भाव से करते है तो अच्छे-भले निर्मल साहित्य को भी गदला और मैला बना बैठते है । सच्चा समीक्षक साहित्यकार के हृदय तक पहुँच नाचाहता है । किसी के दिल मे घर करना हो तो शत्रुता का लट्ठ हाथ मे लेकर नही कर सकते, प्रेम और सहानुभूति मे घुल कर ही किसी के दिल मे घर किया जा सकता है ।

---

*देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।

हे सूर्य देव, दिव्य गुणों वाले हम आपके उत्तम ज्योतिःस्वरूप को प्राप्त हों । यजुर्वेद ३५।१४

†चक्षु का अर्थ पुरातन वेदवाणी मे प्रकाश ही था, यथा 'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याःग्ने ।' यजु० ७।४२ ।

आज का युग आलोचना और समीक्षा का युग है, एक पनवाडी और कुल्ली भी बडे-बडे राजनीतिज्ञो एव विद्वानो की टीका-टिप्पणी करना अपना जन्मजात अधिकार मानता है। किंतु अमित्र भाव की समीक्षा कितनी भयकर हो सकती है यह आज के युद्ध-क्षेत्रो के दृश्य ही बता सकते है।

कुरुक्षेत्र के जलकुण्ड का नाम है सूर्य कुण्ड जिसे पुरातन काल मे धर्मकुण्ड भी कहते थे। सूर्य-स्नान के समय यात्रियो के मन मे जो मैत्री का पवित्र भाव एवं धर्म का पवित्र सकल्प होता है वह देश देशातर मे व्यापक हो जाए तो इसी वसुन्धरा परस्वर्ग उतर आए।

वेद के इस वाक्य मे कल्याणमय जीवन का महान आदर्श निहित है—

**"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।"** यजुर्वेद ३६।१८

सूर्य की सी मित्र-दृष्टि जिसको मिल जाती है वह सर्वत्र 'तू ही तू' देखने लगता है। समर्थ गुरुरामदास जी ने अपने एक मराठी गीत मे लिखा है—"सामने से आता हुआ जो मनुष्य मै देखता हूँ उसके आगे मेरा मस्तक अपने आप झुक जाता है। बात यह है कि मै प्रत्येक प्राणी को ईश्वर का सजीव मदिर समझता हूँ।"

इस विषय पर गुरु नानक का पद है—

**पुड़ु धरती पुडु पाणी आसण, चारि कुट चउबारा।**
**सगल भवण की मूरति एका मुख तेरे टकसाला॥ १॥**
**मेरे साहिबा तेरे चोज विडाणा!**
**जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा आपे सरब समाणा॥ रहाउ॥**
**जह जह देखा तह जोति तुम्हारी तेरा रूपु किनेहा॥**
**इकतु रूपि फिरहि परछना कोई न किसही जेहा॥ २॥**
**अंडज जेरज उतभुज सेतज तेरे कीते जता॥**
**एकु पुरबु मै तेरा देखिआ तू सभना माहि रवता॥३॥**

इसी भाव को तुलसीदास ने यो प्रकट किया है—

**सियाराम मय सब जग जानी।**
**करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी॥**

एक सूफी ने कहा था 'हर कि पैदा मीशवद अज दूर पिदारम तूई'—दूर से जो कोई दीख पडता है, मै समझता हूँ, हे ईश्वर! तू ही है। एक मनचले ने उस सूफी को कहा 'यदि दूर से गधा दीख पडे, तो?' सूफी ने तुरन्त उत्तर दिया 'मै समझूँगा तू ही है' अर्थात् जो इतनी सी बात नही समझ सकता वह महामूर्ख है।

बाग के फूलो की अनेकता और विविधता से ही बाग की शोभा होती है। सूर्य की सात रगोवाली किरणो के खेल से ही ये रग बने। और सूर्य-किरण तो काटो पर भी एक सा नूर बरसाती हैं—

**हम तो चमन-प्रस्त हैं,**
**फूल कहाँ के खार क्या !**        (फानी)

और वह वाक्य कितना सशक्त एव पवित्र है—

**तेरे फूलों से भी प्यार,**
**तेरे कांटो से भी प्यार।**

श्री गुरु गोविन्दसिह को मुगलो के साथ युद्ध करना पडा। एक युद्ध मे उनका प्रिय सेवक कन्हैया घायल शत्रुओ की भी सेवा करता रहा और उन्हे पानी पिलाता रहा। सिख सैनिको ने गुरु जी से जाकर शिकायत की। कन्हैया से पूछा गया तो उसने उत्तर दिया—

"हे सद्गुरु ! मुझे तो उस समय न कोई मुसलमान दिखाई देता, न हिन्दू, न कोई शत्रु न मित्र दिखाई देता।'

गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए और उसे एक डिबिया विशेष देते हुए कहा— "जहाँ कही आवश्यकता पडे घावो पर मरहम भी लगा दिया करना।"

महावीर ने इसी विषय मे कहा था—

**मित्ती मे सब्ब भूएस, वेरं मज्झं न केणई॥**

सभी भूतो ( प्राणियो ) से मेरा मैत्री भाव हो, किसी से वैर भाव न हो।

धर्मवीर गुरु गोविदसिह कलम के भी धनी थे। उन्होने समदर्शिता के विषय पर एक स्वर्णिम कविता 'अकाल उस्तुत' मे लिखी है—

( १ )

**मानस की जात सभै एकै पहचानबो॥**
**करता करीम सोई राजक रहीम ओई,**
**दूसरो न भेद कोई भूल भरम मानबो॥**
**एक ही की सेव सभ ही का गुरदेव एक,**
**एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो॥**

( २ )

**देहुरा मसीत सोई, पूजा औ निवाज ओई**
**मानस सबै एक पै अनेक को प्रभाउ है।**
**देवता अदेव जच्छ गंधर्व तुरक हिंद।**
**निआरे-निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है।**

**एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान।**

**खाक बाद आतश और आब को रलाउ है।**

**अलह अन्देखी सोई पुरान औ कुरान ओई।**

**एक ही सरूप और एक ही बनाउ है।**

ऐसी समदर्शिता के आदर्श तक पहुँचने के लिए विशाल और सशक्त हृदय की आवश्यकता होती है। कबीर और नानक ने एकजबान होकर कहा था—

**'मन जीते जग जीत है'**

और शताब्दियो पहले ब्रह्म सूत्रकार ने कहा 'चित्तवृत्ति निरोध योग' अर्थात् चित्त को विकारो से रोकना ही योग है। सामजस्य के क्षीरसागर को इमली का एक दाना भी भ्रष्ट कर सकता है—यह सकेत पुराणो की कथा मे आया है।

उर्दू के महाकवि 'मीर' ने अपनी एक गजल मे लिखा है—

**मत रंजा कर किसी को कि अपने तो एतक़ाद**

**दिल ढाए कर जो काबा बनाया तो क्या हुआ !!**

• • •

सैयद हाशम हुसेनी ( निधन १६४६ ई० ) कहते है—

**जेहा लौड़ै आपस कूँ। तेहा लौड़ै सारों तूँ।**

**तन मुँह अपनी सूरत देख। आपस थीं कोई जुदा न लेख।**

गुरु नानक का एक वचन—

**जह देखा तह दीन दइआल।**—मारू सोलहे

वेद कहता है—

**यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानत'।**

**तत्र को मोह क शोकः एकत्वमनुपश्यत ॥**

—यजु० ४०।७

जो सभी प्राणियो मे अपनी ही आत्मा को जानता है उसके लिए क्या मोह क्या शोक ? वह तो एकत्व ही देखता है।

# जैसे को तैसा !

पच तत्व के पुतले मे ज्यो ही प्राण-वायु आ जाती है जीव अपनी नई यात्रा प्रारम्भ कर देता है। उसे प्राय' यह भूल जाता है कि वह नश्वर प्राणी है अथवा मर्त्यलोक का वासी है। ऐसी भूल-भुलैयो मे वह जीवन का लक्ष्य तो भूल जाता है, पर अपनी यात्रा फिर भी जारी रखता है। निरतर चलते ही रहने के अधिकार को वह किसी तरह छोडना नही चाहता। आश्चर्य की बात यह है कि वह अपने सम्मुख देखता है कि कई यात्री थक हार कर मिट्टी की ढेरी बन जाते है, किन्तु वह सचेत नही होता।

इस परिस्थिति मे जीव-जन्तु, पशु-पक्षी—सभी एक से है। हॉ, मनुष्य के अतिरिक्त और सब अधिक भाग्यवान है क्योकि उन्हे अपनी असफलताओ और त्रुटियो का ज्ञान ही नही होता। मनुष्य बेचारा बुद्धि के चमत्कारो और हृदय की कामनाओ का खिलौना बन कर रह जाता है। वह पशुता से जरा ऊपर 'उठता है तो उसे इस दृश्यमान जगत से परे, अलौकिक आनन्द की चाह होने लगती है।

इस नए आनन्द वाले दोराहे पर पहुँच, वह दो पग उठा कर देव अथवा दानव बन जाता है। दोनो दशाओ मे उसे आनन्द अवश्य मिल जाता है, परन्तु एक आनन्द झूठा है दूसरा सच्चा। एक मे शान्ति और मोक्ष निहित है दूसरे मे पतन और भयकर विनाश। एक का आलम्बन है शरीर, दूसरे का आत्मा। हम इस द्विमुखी आनन्द को भौतिकवाद और अध्यात्मवाद कह सकते है।

भौतिकवाद के अनुयायियो का सिद्धान्त रहा है, "जैसे को तैसा" और सच पूछिए तो इस सिद्धान्त ने मानव से इतिहास के रक्त-रजित पन्ने लिखवाए और उसे हिंस्र प्राणी बना दिया। शत्रु ने तीर बनाया तो इस महाशय ने परमाणु बम। शत्रु ने पनडुब्बी बनाई तो इसने आकाश-डुब्बी बना ली। वह आगे से काँटे हटाता गया और पीछे-पीछे बिछाता गया। विधि की विडम्बना यह है कि यह राह है गोल। जब वह एक चक्कर काट चुकता है तो अपनी राह को "जैसे का तैसा" पाता है।

सच्चे आनन्द की राह पर चलने वाला अपनी राह के काँटे हटाए जाता है, अपने झोलो मे भी समेट लेता है और पीछे-पीछे फूल बिछाए जाता है क्योकि उसका सिद्धान्त है, "वैसे को भी ऐसा"। वह दुःख पाता और कष्ट उठाता है पर रोता नही। वह जानता है कि शिव बनने के लिए विषपान करना

होगा, प्रकाश करने के लिए दीपक की भाँति जलना होगा। राजा शिवि का यही अनुभव था, महात्मा गाधी का भी एव महात्मा ईसा का भी। किन्तु खेद और विस्मय से कहना पडता है कि यह राह मनुष्य की नही है, केवल देवताओ की है। यदि तलवार की धार पर कोई नाचना चाहे तो ऐसे त्याग के लिए उद्यत रहे, ऐसा त्याग जिसमे अधिकार की बास भी न हो।

योगिराज कृष्ण ने एक सुलभ मार्ग भी बताया है जो जाता तो है इसी सच्चे आनन्द वाले मार्ग के साथ-साथ पर इसमे अधिकार का भी विधान बना हुआ है। इसमे "जैसे को तैसा" का सूक्ष्म सूत्र भी है, पर इसमे भौतिकवाद की गध नही।

द्रौपदी का चीर-हरण दुर्योधन ने किया तो कृष्ण ने यह नही कहा कि पाडव भी विपक्षियो की बहू-बेटी का चीर हरण करे। उन्होने मानव अधि-कार को पवित्र बनाने के लिए धर्म और न्याय पर चलने का आदेश दिया। निष्काम कर्म का सुनहरा सिद्धान्त प्रस्तुत करके उन्होने युग-युग के मानव को सच्चे आनन्द की प्राप्ति की सुगम राह दिखाई।

आज का मानव अपनी जीवन-यात्रा की उलझनो को जब कुछ सुलझा पाएगा तो अपने आप इसी राह पर आ जायेगा, फिर उसका लक्ष्य भी उज्ज्वल हो उठेगा और उसे सहज ही मोक्ष की प्राप्ति होगी—जिन खोजिया तिन पाइया गहरे पानी पैठ।

# मा प्रयच्छेश्वरे धनम्

अमीर आदमी को धन देना ऐसे है जैसे रोगी को अजीर्ण करना। अजीर्ण और अफारे वाले के लिए तो उपवास ही उचित है। भीष्म जी ने युधिष्ठिर को कहा था—

दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्। व्याधितस्यौषध पथ्य निरुजस्य किमौषधम्॥ दरिद्र का पालन पौषण करो, ऐश्वर्यशाली को धन मत दो। जो रोगी है उसे पथ्य ही औषध है और जो नीरोग है उसे औषध किसी काम का नही।

स्वार्थ, अन्याय और चापलूसी ने ऐसा वातावरण बना रखा है कि अमीर अधिक अमीर बनता जाता है और गरीब अधिक गरीब—माया को माया मिले कर कर लम्बे हाथ।

हम जानते है कि मिल का कपडा खरीदेंगे तो सारा लाभ सेठो के हाथ मे जाएगा। खादी पहनेंगे तो ग्रामीण जुलाहे को रोटी मिलेगी, किंतु हम मिल का कपडा खरीद कर अमीर को और अमीर, अर्थात् गरीब को और ग़रीब बनाते है। हम कपडा नफीस पहनते है तो ग़रीब की खाल उधड जाती है। नफीस कपडे के नीचे मानो हम गरीब की खाल ओढे फिरते है। यह भी एक प्रकार की हिंसा है।

अहिंसा सत्य का दूसरा नाम है और सत्य तो सूर्य के समान प्रकाशमान होता है। सूर्य का प्रकाश उसकी तपस्या का तेज होता है। तपस्या के बिना न सत्य की उपलब्धि होती है, न अहिंसा की। तपस्या एक प्रकार का त्याग है जो हमारा बृहत् प्रेम आपे से बाहर होकर व्यक्त करता है।

दरिद्र का भरण-पोषण दृष्ट देवता को भोग लगाने के समान है। ईश्वर करुणा और कृपणता के व्याज से दरिद्रता का रूप धारण करता है। ईश्वर के दर्शन विशाल मदिर की अपेक्षा झोपडी मे अधिक स्पष्ट एवं सजीव होते है। अत दरिद्रान् भर!!

# या विमुक्तये

सत्यं शिव सुदरम् का आभास पशुओ को नही हो सकता, इसलिए उनके जीवन मे सस्कृति, धर्म, कला अथवा ज्ञान की कोई चेष्टा जाग्रत नही हो सकती। मनुष्य की विवेक-बुद्धि ही पाप-पुण्य, सुदर-असुदर एव खोटे-खरे का निर्णय करती है। इस निर्णय मे सफल होने की साधना को ही शिक्षा-दीक्षा अथवा 'करते की विद्या' कहते है।

कई लोग ज्ञान-योग को कर्म-योग से नितात अलग मानते है किन्तु वास्तव मे वे एक दूसरे के पूरक है। हजरत मुहम्मद साहब अपढ थे किन्तु उनके ज्ञान-चक्षु खुले थे। उनसे एक व्यक्ति ने पूछा—'इल्म ( ज्ञान ) अच्छी चीज है कि अमल (कर्म) ?' उन्होने उत्तर दिया—'अमल अच्छी चीज है, क्योकि अमल करते करते हमे इल्म प्राप्त हो जाता है, परन्तु निरा इल्म बटोर कर हम उन्नति नही कर सकते।'

**महात्मा कबीर** भी पढे-लिखे न थे, किन्तु उनके पास अनुभव-सिद्ध ज्ञान था और उन्होने स्पष्ट कहा—

**पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।**
**ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय ॥**

पाश्चात्य जगत के भौतिकवाद एवं पूँजीवाद ने प्रत्येक वस्तु को क्रय-विक्रय की वस्तु बना दिया है। विद्या भी खरीदने और बेचने की वस्तु बन चुकी है, इसकी पवित्रता नष्ट होती जा रही है। पश्चिम के राजनीतिज्ञ कहते है—भाषा का उत्तम प्रयोग यही है कि हम अपने अतस्थल के भावो को छुपा सके अर्थात् कहे कुछ और करे कुछ। **संत तुलसी दास** ने तो वचन को प्राणो से अधिक मूल्यवान समझा था—

**रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचनु न जाई।**

पाश्चात्य सस्कृति ने विद्या को शोषण का माध्यम बना दिया है। वैज्ञानिक जानता है कि विनाशकारी शस्त्र बनाने से मानवता का कितना पतन हो जाएगा, किन्तु वह अपनी सारी बुद्धि, शक्ति और आयु स्वार्थ-सिद्धि के हेतु अर्पण कर देता है। वह नही जानता कि हमारे वास्तविक आनन्द का स्रोत परोपकार है, स्वार्थ नही। स्वार्थ तो बन्धन और गुलामी है, परमार्थ मुक्ति और आज़ादी। **गुरु नानक** देव ने इसीलिए कहा था—

**पढ़िग्रा मूरख ग्राखीऐ जिस लबु लोभु अहकारु ॥ राग माझ ।**
**ग्रकलीं पढ़ि कै बुझीऐ, ग्रकलीं कीचै दानु ।**
**नानक ग्राखै राहु एहु, होरु गला सैतान ॥ राग सारग ॥**
**विदिग्रा वीचारी ता पर-उपकारी ॥ राग ग्रासा ॥**

जब परोपकार का भावाकुर फूटने लगता है, उलझनो ग्रौर बन्धनो की कडियाँ टूटने लगती है । पवित्र मन से निष्काम सेवा ग्रौर परमार्थ-चिंतन द्वारा ही ग्रात्म-दर्शन हो सकता है, फिर न भौतिक ग्रभाव सता सकते है, न मानसिक दुःख भय-भीत कर सकते है । इसलिए पुरातन ऋषि ने कहा था—'सा विद्या या विमुक्तये, विद्या वही है जो हमे मुक्ति दिला दे सभी प्रकार के बन्धनो ग्रौर बाधाग्रो से ।

खेद की बात है कि जिस भारत ने ससार को इतना ऊँचा ज्ञान दिया वह कर्म के चेत्र मे बहुत पीछे रह गया। निर्धनता, भ्रष्टाचार ग्रौर ग्रालस्य की कालिमा ने हमारे ज्ञान-चत्तु भी ग्रधे कर दिए है। हमारे विश्वविद्यालयो के हजारो स्नातक जीविका-उपार्जन मे ग्रसमर्थ रह जाते है। पढा-लिखा ग्रामीण-व्यक्ति ग्रपने खेतो मे काम करने से जी चुराता है, गाँव उजड रहे है, नगरो मे भ्रष्टाचार फैल रहा है । कला-कौशल बरबाद हो रहा है, राष्ट्र को ग्रपनी विकास-योजनाग्रो के लिए परमुखापेची होना पडता है । हम लोग खाने की चिता तो करते है, कमाने की नही । सेवा-व्रत वाले मन्दिरो मे सच्ची विद्या का ग्रभाव हो गया है ग्रौर विद्या-मदिरो में सेवा-भक्ति का पवित्र भाव नष्टप्राय हो गया है ।

हमारे इतिहास मे संकट की ऐसी परिस्थितियाँ कम ग्राई होगी जैसी ग्राज हमारे सामने मुँह-बाए खडी है । ग्रतएव हमे विज्ञान ग्रौर ग्रात्म-ज्ञान का सतुलन कायम करना चाहिए, इसी मे हमारे राष्ट्र का कल्याण ग्रौर सारे विश्व की शाति निहित है ।

**विज्ञानं सारथिर्यस्तु मन प्रग्रहवान्नर ।**
**सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णो परम पदम् ॥—कठोपनिषद्**

विज्ञान जिस मनुष्य का सारथी हो, मन-रूपी लगाम पर जिसका नियत्रण हो, वही इस ससार-रूपी मार्ग को पार कर पाता है, वही विष्णु का श्रेष्ठ पद है ।

महाभारत की एक सुन्दर कथा प्रसिद्ध है ।

एक बार भीष्म पितामह गुरुग्राम ( गुडगाँवा ) के द्रोणाचार्य-ग्राश्रम मे राजकुमारो की शिचा की गतिविधि का पता करने गए । द्रोणाचार्य ने बताया—'दूसरे राजकुमार तो पाँच-या-छः पाठ ग्रागे निकल गए है , पर यह बडा राजकुमार युधिष्ठिर ग्रभी पहले पाठ 'सत्यं वद' पर ही भटक गया है ।

पितामह ने बडे दुलार से युधिष्ठर से पूछा—'बेटा, तुम सबसे बडे होकर भी विद्या मे सबसे पीछे रह गए, बात क्या है ?' युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह ! इस पाठ का पहला भाग था 'क्रोध मत करो । यह तो मैंने सिद्ध कर लिया है । मुझे गुरुदेव ने कई बार मारा-पीटा, घर मे भी मुझे बुरा-भला कहा गया, अब मुझे क्रोध नही आता । दूसरा भाग 'सच बोलो' बहुत कठिन है । कही न कही मन, वचन या कर्म मे झूठ आ जाता है । इसलिए यह पाठ सिद्ध नही हुआ ।'

यह सुनकर भीष्म पितामह गद्गद हो गए । उन्होंने युधिष्ठिर को छाती से लगा लिया और कहा—"बेटा, तुम हमारे कुल का नाम उज्जवल करोगे । तुमने सच्ची विद्या का मार्ग पकड लिया है, तुम धर्मपुत्र हो ।

सच्ची विद्या प्रेम सिखाती है ।

# विद्या

मनुष्य का सबसे बडा बोझ अविद्या है। इसे पशु तो सुविधा से उठा लेता है किंतु मनुष्य बहुत शिथिल हो जाता है। पशु केवल सहज ज्ञान का सम्बल रखता है; उसे पुण्य-पाप के विवेक मे पडना नही पडता, वह पिछले पाप का दण्ड तो भोगता है किंतु नये पाप से मुक्त रहता है। इसीलिए मौलाना रूमी कहते है—

**इल्म किज तो तुरा न बिस्तानद।**
**जिहल अजा इल्म बिह बवद बिसियार ॥**

=वह ज्ञान जो मुझे अपने अह से मुक्त नही कर देता उससे तो अज्ञान ही बहुत अच्छा रहता है।

अविद्या अथवा माया-पाश में जकडा व्यक्ति अपने अस्तित्व की पहचान नही कर सकता। वह लहरो को देखता है मोती नही पा सकता, पेड गिनता है आम नही खा सकता। तत्त्व-दर्शन, स्वत्व-दर्शन अथवा आत्म-दर्शन ही सच्चा ज्ञान है।

अज्ञान तमोगुणोद्भूत होता है, ज्ञान सतोगुण प्रसूत। अज्ञान कहता है यह ससार मेरी जेबमे आ जाए, ज्ञान कहता है तू सब हो जा, प्राणिमात्र के मन मे घर कर जा। अज्ञान 'अ' की सीमा मे बंदी रहना चाहता है। ज्ञान 'ज्ञ' की असीमता मे विलीन हो जाना चाहता है। सूत्रकार ने कहा है—

**सा विद्या या विमुक्तये**

=वास्तविक विद्या वह है जो हमे सभी प्रकार के बधनो से छुटकारा दिला दे।

मनुष्य शून्य की ओर जाने से घबराता है, एकात उजाड स्थान की अपेक्षा उसे सगति और समाज से मोह है। वह बधनो से छूटने की अपेक्षा बधनो को बदलने की प्रवृत्ति रखता है। उसका मोह—स्नेह, प्रेम, त्याग, भक्ति आदि के रूपो मे परिणत होते-होते कैवल्य तक आ जाता है। सम्राट् हर्ष जब सर्वस्व दान करने के बाद सन्यासी सा रह जाता था तब उसी भाव का ऐतिहासिक नाटक होता था। भिक्षुक से भोग्य, सेव्य से सेवक और बदी से मुक्त होने का भाव एक जैसा है। भगवान जब अपने भक्त की भक्ति से आकर्षित हो जाते है, बंधनो की सभी बेडियाँ टूट जाती है : व्यवधान और आवरण हट जाते है, आत्मा परम आनंद मे विभोर हो जाती है।

# शिक्षा

केवल साक्षरता को शिक्षा नही कह सकते, केवल तथ्य का ज्ञान ही शिक्षा नही है। शिक्षा तो सत्य ज्ञान को जीवन के क्रिया-कलाप मे अनूदित करने की प्रक्रिया है। इसलिए बाह्य जगत के उपकरणो को जानने की अपेक्षा अपने आपको जानना परमावश्यक है। हम अपनी किन-किन विशेषताओ से अपने भगवान और उसके प्राणियो की सेवा कर सकते है यह ज्ञान ही आत्मदर्शन कहलाता है।

अहकार, स्वार्थ, काम, क्रोध आदि विकारो से हमारी आत्मा पर एक प्रकार का काला पर्दा पड जाता है। जैसे बडा-सा पत्थर पहाडी स्रोत को रोक देता है वैसे ही वह पर्दा समस्त प्रकाश एव आनन्द को रोक कर हमे प्रपंच मे डाल देता है। ज्ञान का उपयोग भी हम उसी प्रपच की पूजा मे कर बैठते है और जीवन की बाजी हार जाते है।

उत्तम शिक्षा मनुष्य के पशुत्व को देवत्व मे परिणत कर देती है, फिर दु:ख भी सुख का सोपान बन जाता है। अडचने, समस्याएँ और विफलताएँ अपने आप दूर हो जाती है। हमारे विवेक की आँच उन्हे पिघला देती है।

शरियत और कर्म-काण्ड भी ज्ञानेन्द्रियो को आदर्शोन्मुख करने के साधन मात्र है, इनके द्वारा ज्ञानोपार्जन मे कुशलता प्राप्त होती है। मन के प्रसन्न एवं प्रशान्त होने से अज्ञान का कुहरा और अँधेरा लुप्त हो जाता है।

कर्म और ज्ञान को भक्ति मे लीन कर देने की शिक्षा गुरु देता है, इसीलिए गुरु के निकट आते ही शिष्य का सिर अपने आप झुक जाता है।

गुरु अपने शिष्य के अभाव का दु ख अथवा सशय को दूर करके उसे शान्ति का अमृत पिलाता है, उसे मूढता के सघन अँधेरे से निकाल कर दिव्य चेतनता के प्रकाश में ले आता है, उसे मृत्यु के बन्धनो मे मुक्त करके अमर बना देता है।

जिस प्रकार पंछी का दो बार जन्म होता है—पक्षिणी के उदर से अण्डे के रूप मे और फिर अण्डे मे से सजीव बच्चे के रूप मे—इसी प्रकार मानव भी द्विज होता है, उसके माता-पिता उसके शरीर को जन्म देते है, उसका गुरु उसके सूक्ष्म शरीर—ज्ञान, कर्म एव भक्तिमय सूक्ष्म शरीर का निर्माण करता है। मनसा वाचा कर्मणा सात्विक बनने की साधना ही उत्तम शिक्षा का लक्षण है।

# दुःखदारू

तुमने ईश्वर से प्रार्थना की—'मेरे कष्ट का निवारण करो। मेरा निस्तार करो, मुझे बचाओ।'

ईश्वर ने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली, जब तुम प्रार्थना के भावो और शब्दो का सयोग करने लगे थे। उसने तुम्हे और तपस्या मे डाला—और तुम चिल्लाने लगे—'फूल माँगे थे, काँटे मिले, शीतलता माँगी थी जलन मिली, सुख माँगा था दुःख मिला।'

तुम्हारी शब्दावली के भाव कल्पित और अधूरे है। तुम्हारा उपालम्भ निस्सार है—गुलाब के पौधे मे पहले काँटे ही आते है, वे आने वाले कोमल सुवर्ण फूल की रक्षा का प्रबन्ध करते है, उसके सौदर्य की भूमिका बनाते है, उसकी सुगन्धि को शक्ति देते है। काँटो की तपस्या द्वारा ही गुलाब का रग रूप निखरता है और वह फूलो का राजा कहलाता है।

सोना आग मे पड कर ही कुन्दन बनता है। जलन उसकी तपस्या बन जाती है। उसके विकार, मैल और कुसस्कार अग्नि-परीक्षा मे जल जाते है और उसका व्यक्तित्व सीता की भाति परम उज्ज्वल निकल आता है। उसके शीतल यश का आधार तपस्या ही है।

इस तपस्या का प्रथम चरण कष्ट एव दु खमय होता है क्योकि हमारा शरीर, हमारा आलस्य तपस्या के आलोक से घबराता है। सुख की फैलावट, सुख का अतिक्रमण मनुष्य की वृत्तियो को विशृङ्खलित कर देता है, दुःख उन्हे संयत करके शक्तिशाली बना देता है। सूर्य की किरणें जब स्फटिक मे केन्द्रित हो जाती है वे कालिमामयी समस्त वस्तुओ को जला डालती है। सात्विक दु ख मानव के समस्त रोगो का दारू है।

जीवन मे दु ख तो अवश्य आयेगा किन्तु उसे सात्विक बना सकना ही जीवन की सफल कला है। भौतिक पदार्थो की हानि, अभाव, अतिशय के कारण दु ख मनाना कायरता है। परसेवा, सहानुभूति एव करुणा के कारण जो कष्ट होता है वह परम सुख का बीज होता है। आत्मसुख बाँट देने की वस्तु है, परदु ख बाँट लेने की वस्तु है। आत्मदु ख बाँटना हिंसा के समान पाप है, आत्मा तो शुद्ध-बुद्ध आनन्द रूप है उसमे दु.ख मानना अज्ञान है।

ईश्वर अपनी अपार कृपा से अपने भक्तों को दु ख मे डाल कर उनकी शक्तियो को विकसित करता है। दु ख के प्रसाद को ठुकराना अवज्ञा का निष्ठुर रूप है, स्वार्थ का नग्न रूप। साधना तो कॉटो से प्यार करती है, तपस्या को अपना स्वभाव बनाती है और दु.ख को वरदान समझती है।

# पुरुष

'पु' पूर्व का संक्षेप है ; उष = जला दिए जिसने । जो व्यक्ति पहले ही अपने पाप जला देता है पुरुष होता है । पौरुष पापो को जलाने मिटाने की शक्ति का नाम है, इसी को अध्यात्म मे वीरता कहा गया है । मनोविकारो के साथ जूझने वाला, अपने आदर्श के लिए स्थितप्रज्ञ रहने वाला ही सच्चे अर्थों मे पुरुष होता है । पवित्र, उदार और शक्तिमान होने के कारण ब्रह्म को ही पुरुष कहा गया है ; प्रकृति मानो उसकी नारी है । माया जब सीता की भाँति राम का अनुसरण करती है वह कल्याणमयी होती है । जब माया शूर्पनखा सी मनोमुग्ध होकर अहंकार मे आ जाती है वह निर्दय हो जाती है किन्तु समाप्त नहीं होती क्योकि पुरुष की करुणा फिर भी उस पर बनी रहती है । वह उसकी लीला मे भी एक बाँकपन देखता है । ईश्वर अहिसावादी है ।

पुर नाम समूह का है । पुरुष समष्टिप्रिय होता है । वह अपने सुख को भी बाँटना चाहता है । उसकी सामाजिकता सर्वसेवा और सर्वकल्याण की प्रेरणा रखती है ।

अभावो, बाधाओ और संकटो को सहता हुआ जो पुरुष अपने अंतःकरण को शुद्ध रखता है वह महापुरुष बन जाता है ; उसका पौरुष देवताओ के लिए भी पूज्य हो जाता है ।

नानक ने ईश्वर को अकाल पुरुष कहा है । विश्व तो बनता-बिगडता रहता है किन्तु विश्वात्मा अनादि काल से अनत काल तक रहता है। इसी लिए वह अजर, अमर, अविनाशी एवं अकाल कहा गया है । अकाल का सच्चा उपासक अकाल अथवा अमर ही हो जाता है । इसी साधना का नाम पुरुषार्थ है ।

निराशा एव कायरता के मरुस्थल मे भटकने वाला व्यक्ति कभी सफलता का मुख नही देख सकता । पौरुष तो मनुष्य को उत्तुग पर्वत-शिखरो पर चढने, चाँद-सितारो तक पहुँचने और असभव को भी संभव बना देने का साहस रखता है । पौरुष, वर्तमान का उपासक होता है और वह भविष्य को भी शीघ्र से शीघ्र वर्तमान मे परिणत करना चाहता है ।

मानवता का आदर्श पुरुषार्थमय जीवन है ।

# मानव-जीवन का उद्देश्य

कुरान मे लिखा है—'मनुष्य इस सारे विश्व का राजा है। वह विश्व को ठीक तरह से समझ कर कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का कर्तव्य रखता है। बडे-बडे पहाडो से कहा गया—तुम यह कर्तव्य सँभालो; वे डोल गए। बडे-बडे पशुओ को कहा गया, तुम यह कर्तव्य सँभालो ; वे डर गए। किन्तु मनुष्य, वह भोला-भाला प्राणी, निधडक होकर आगे बढा और बोल उठा, हम सँभालेगे।'

फरिश्तो के परम गुरु अजाजील को कहा गया—'इस आदम के आगे सिजदा करो।' उसने कहा—'हम नूरी है, यह खाकी है, इसके आगे हम सिर नही झुका सकते।'

अल्लाह ने उसे शैतान बना दिया। उसी शैतान ने आदम और हव्वा को बहका कर बहिश्त से निकलवा दिया।

कुरान के इस प्रसग मे मानवता का महत्व पूरी तरह निखर आता है, यदि हम सभी प्रतीको को भली प्रकार समझ सके। मनुष्य भौतिकता और पशुत्व से ऊँचा उठता हुआ पूर्ण मानव बनने का ध्येय रखता है। पूर्ण मानव ही देवाधिदेव बन सकता है। व्यक्ति के अदर का चेतन जब विश्वात्मा के चेतन को छू लेता है, वह विराट हो जाता है, परमात्म स्वरूप, सच्चिदानद रूप बन जाता है। तभी तो बाइबल ने कहा है—God created man in his own image, अर्थात् ईश्वर ने मनुष्य को अपने ही रूप मे उत्पन्न किया है।

चौरासी लाख योनियो का सिरमौर मनुष्य को माना गया है, क्योकि मनुष्य का वास्तविक कर्तव्य और उद्देश्य सभी जीव जन्तुओ से उत्तम है।

**सोपान भूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।**

इन्द्रिय ग्राह्य सहज ज्ञान मनुष्य में पशुओ के ऐसे ही ज्ञान से बहुत निर्बल है। बतख का बच्चा बिना सिखाए अपने आप पानी मे तैरने लगता है, किन्तु मनुष्य का बच्चा बिना सिखाए न हमारी बोली सीख सकता है, न ठीक तरह से चल-फिर सकता है। वह एक सामाजिक प्राणी है, उस पर समाज की, समूह की, विश्व की जिम्मेदारी है। व्यक्तिगत साधनो से बढ़ कर उसे समष्टिगत साधनो की आवश्यकता है। वह 'पुरुष'[1] है। वह पुर एवं समाज मे रहता है—चीटियो

---

[1] महाकवि गालिब ने मनुष्य को विचारो और भावनाओं की प्रलय माना है—

है आदमी बजाए खुद इक महशरे खयाल
हम अंजुमन समझते हैं खलवत ही क्यों न हो।

और मक्खियो की तरह अचेतन नही चेतन, अवस्था मे ।

शारीरिक वासनाओ और अभावो की तृप्ति के लिए प्रकृति ने उसे विशेष शक्ति दे रखी है, परन्तु वह अपने सहज इन्द्रिय-ज्ञान के साथ अपने विचारो को जोड कर प्रत्येक कार्य का कारण और परिणाम ढूँढना चाहता है । मननं की ऐसी विशेषता के कारण ही इसे मानव, मनु अथवा man कहते है । मनन और विवेक के बल से ही वह त्रुटियो पर हँस सकता है ।

मनुष्य की अनुभूति प्राय चेतन होती है और उसके सस्कार गम्भीर होते है । शारीरिक सुख-सुविधा से उसके ज्ञान स्वरूप मानस की तृप्ति नही हो सकती । आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि व्यवहार तो पशुत्व की कोटि के है । धर्म, कर्तव्य, सस्कृति, साहित्य और जीवन की सुन्दर सगति मे ही वास्तविक मानवता का विकास हो सकता है ।[1] इन्ही महान औचित्यपूर्ण आदर्शों के कारण ही मनुष्य अपना सिर ऊँचा करके इस दृश्यमान जगत मे स्वतन्त्र विचरता है । पाप और पुण्य, झूठ और सच के विवेक मे ही उसके गौरव की नीव निहित है । यह विवेक मानव को अपने पारिवारिक और सामाजिक वातावरण से सीखना पडता है । ये सभी परिस्थितियाँ देश-काल के कारण विभिन्न हुआ करती है, किन्तु मौलिक मानवता प्राय शुद्ध-बुद्ध रहा करती है । इसीलिए तो गांधी जी कहते थे—हमे पाप से घृणा करनी चाहिए, पापी से नही ।

सभी को 'सियाराममय' जानने के लिए प्रेम की अमोघ शान्ति आवश्यक है । मनुष्य हिंसा वृत्ति को छोडकर जड-चेतन में एक अनाम, अज्ञात सत्ता को जो जिज्ञासा रखता है, उसके पीछे मनुष्य का प्रेम ठाठे मार रहा है, चाहे खीज भरे प्यार मे वह शस्त्र-अस्त्र की खोज भी करता रहता है । तापस ऋषियो और द्रष्टा मनीषियो के कधो पर खडा आज का मानव निर्दोष बालक की तरह अपार प्रकृति की लीला को समझने-बूझने की प्रबल आकाक्षा रखता है । प्रकृति महामाया के रूप मे उस मानव को अपने अनेक रहस्य धीरे-धीरे बताती जा रही है । मनुष्य की पवित्र प्रेम-प्रवृत्ति के कारण उसका नाम 'इन्सान' रखा गया है ।[2] अरबी मे 'उन्स' के अर्थ है प्रेम और सहानुभूति । ज्ञान-विज्ञान को बटोर कर वह धन-कचन का साँप नही बनना चाहता, उसे तो सभी की उन्नति मे अपनी उन्नति की

[1]साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः

—भर्तृहरि

[2]दर्दे दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को ।
वरना ताअत के लिए कुछ कम न थे करेबियाँ ।।

प्राप्ति करनी है, उसका कर्तव्य बहुत विशाल है।

सुख का अर्थ है—भली भाँति फैलना, पशुत्व से निकल कर देवत्व की ओर जाना, स्वार्थ से निकल कर परमार्थ की ओर जाना—'परोपकाराय सता विभूतयः।'

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने 'विनय-पत्रिका' मे कहा है—

१. काजु कह नर तनु धरि सार्यो।
पर उपकार सार श्रुति को जो,
सो धोखेहु न विचार्यो॥

२. लाभ कहा मानुष तन पाएँ।
काय वचन मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराएँ।
गई न निज पर बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाएँ।
तुलसी दास यह अवसर बीतें कै पुनि के पछिताएँ।

चीन देश के पुरातन कवि 'तुततुत' ने लिखा है—

'मृत्यु, शोक का कारण नही हो सकती, ससार का उपकार किए बिना मर जाने वाला व्यक्ति शोक का कारण हो सकता है।' निष्काम और निःस्वार्थ होने का ठीक अर्थ तो सत्य, अहिंसा ही हो सकता है। सच्ची जीवन-कला सत्य की अपार ज्योति से ही आलोकित है। व्यवहार-ज्ञान का सत्य तो देश काल के अनुसार विभिन्न व्याख्या रखता है, किन्तु यह जहाँ-कही 'सुन्दरम्' का रूप धारण कर जाता है, वहाँ आध्यात्मिक सत्य का आधार भी निखरने लगता है। किसी देश की सस्कृति का सौन्दर्य उस देश के नैतिक और आध्यात्मिक जीवन मे ही दिखायी दिया करता है, भौतिक उत्थान मे नही। संसार भर के धार्मिक नेता किसी न किसी रूप मे यह उपदेश अवश्य देते रहे है कि 'जो कुछ तुम अपने लिए पसन्द नही करते, दूसरो के लिए भी उसे वैसा ही समझो; सभी को आत्मवत् जानो।[१]

तुलनीय—

रैणि गवाई सोइ कै दिवस गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ॥
—नानक, गउडी बैरागणि, पृ० १५६

---

[१]मनु महाराज ने कहा है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥ —मनुस्मृति

१—मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। —ऋग्वेद

२—कान्फूसियस ने 'चीनी भाषा में' 'शू' शब्द द्वारा सभी को आत्मवत् समझने की शिक्षा दी है।

३—वेदान्त का सोऽहं उसी विचार का पूर्व रूप है।

४—All things therefore whatsoever ye would that men should do unto you even so do ye also unto them. —Bible

= जो कुछ तुम चाहते हो कि मनुष्य तुम्हारे साथ करे, तुम्हें भी वैसा ही उनके साथ करना चाहिए। —बाइबल

५—हर चि बर खुद मपसदी, बिदीगरा मपसद —सअदी

= जो कुछ तू अपने लिए पसद नही करता, दूसरो के लिए भी पसद न कर।

सेवा द्वारा किसी के दिल को जीत लेना सबसे बडी विजय है—

**आई पथी सगल जमाती,**
**मन जीते जग जीत।** —नानक

**दिल बदस्त आवर कि हज्जे अकबर अस्त।**
**किज हज़ारा कअबा यक दिल बिहतर अस्त।**
**कअबा बनगाहे खलीले आज़र अस्त।**
**दिल गुज़र गाहे जलीले अकबर अस्त॥**

—मौलाना रूमी

= किसी के मन को जीत ले, यही हज्ज और तीर्थयात्रा है, क्योकि हज़ारो कअबा जैसे तीर्थो से एक दिल बिहतर होता है। कअबा तो इब्राहीम खलील-अल्लाह ( प्रभुमित्र ) जो आज़र के पुत्र थे, उनका निवास-स्थान था, किन्तु दिल तो स्वयं परम सुन्दर ब्रह्म का लीलाक्षेत्र है।

इसी भाव को महाकवि मीर तकी मीर ने यो प्रस्तुत किया है—

**मत रजा कर किसी को कि अपने तो एतक़ाद;**
**दिल ढाए कर जो कअबा बनाया तो क्या हुआ।**

सहानुभूति और अहिसा की इसी वृत्ति ने बधुत्व, दया, न्याय, सहिष्णुता आदि गुणो का विकास किया और मनुष्य दूसरे प्राणियो से विशिष्ट बन सका। इन गुणो के सुदर आदर्श ने मानवी सभ्यता और संस्कृति की सदैव रक्षा की है और उसे प्रकाशमय अध्यात्म की ओर अग्रसर किया है।

सृष्टि की उत्पत्ति मनुष्य के लिए की गई अथवा मनुष्य की उत्पत्ति सृष्टि के लिए हुई—यह एक जटिल प्रश्न है, किंतु सभी विचारक इतना तो मानते है

कि मानव सृष्टि का शृगार है, वह सृष्टि का भोक्ता भी है और भोज्य भी। उसको कई मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक गुण विशेष मिले है, जिनका विकास धीरे-धीरे होता रहता है। यदि इस धरती पर से मनुष्य जाति बिलकुल चली जाए तो कौन यहाँ के सौदर्य की प्रशंसा कर सकेगा? कौन इस विस्तृत सामग्री से काव्य और कला का निर्माण कर सकेगा? शायद भगवान के अस्तित्व को मानने वाला भी कोई अन्य प्राणी यहाँ नही होगा।

हमारी धरती के से प्राणी चाहे आकाश के किसी और नक्षत्र मे भी रहते हो, परन्तु ऐसा भास होता है कि जो तत्त्व और गुण हमारी इस धरती को प्राप्त है वे किसी अन्य स्थान पर सुलभ नही। यह भी सभव है कि हमारी इस धरती को अन्य नक्षत्रो के प्राणी स्वर्गधाम ही मानते हो।

भक्त रविदास का वचन है—

**त्रिगद जोनि अचेत संभव पुन पाप अचेत।**
**मानुखा अवतार दुर्लभ तिहि सगति पोच॥**

सेवा करने का जैसा सौभाग्यशाली अवसर यहाँ प्राप्त है और शारीरिक भौतिक साधन जैसे यहाँ उपलब्ध है, वैसे किसी अन्य स्थान मे कदाचित् सम्भव नही। यही सेवा-सदन है जहाँ मनुष्य जीने की कला सीखता है और सीखने के लिए जीता है—"Learn to live and live to learn" किन्तु सच्चा ज्ञान वास्तव मे शुद्ध प्रेम का प्रकाश ही है—

ढाई अच्छर प्रेम का पढे सो पडित होय—कबीर

आस्ट्रेलिया की आदिम जाति मे एक सुदर कहानी प्रचलित है—आकाश गगा मे एक विशेष प्रकार का काला सा भाग है, यही स्वर्ग का द्वार है। जब कभी कोई तारा टूटता है, उसकी प्रकाशित रस्सी के द्वारा मृत हब्शी ऊपर चढ जाता है। जब वह ऊपर की छत पर पहुँच जाता है, उस प्रकाशित रस्सी का सिरा नीचे फेक देता है, फिर कोई और हब्शी स्वर्गधाम को उसी रस्सी के द्वारा पहुँच जाता है। उन लोगो का यह भी विश्वास है कि उस स्वर्गलोक मे जाकर सभी हब्शी गोरे हो जाते है।

दूसरो की भलाई की भावना और कर्म-योग से मनुष्य भक्तिभाव से भर जाता है और उसे परम ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हो जाता है—

**जिन सेविआ तिन पाइआ माणु**
**नानक जाने गुणी निधान** ( सुखमनी, गुरु अर्जुन देव )

तपस्या, त्याग और भक्ति भाव ही सेवाकार्य को पवित्र एवं उज्ज्वल बनाते

है। गुरु नानक देव तो निरीहता एव नम्रता को ही सभी गुणो का सार मानते हैं—

**मिठत नीवीं नानका ।**
**गुण चंगिआईआं तत्त ॥**

कान्फूसियस ने कहा है—नम्रता नैतिक सचय का दूसरा नाम है, चरित्र की सरलता मानवता का सहज गुण है।

तत्त्वदर्शी कबीर ने मानव का उद्देश्य हरिरूप हो जाना बताया है—

**हरि को भजै सो हरि का होय ।**

और वह अपनी रहस्यानुभूति अभिव्यक्त करते हुए कहते है—

**जो कुछ करूँ सो पूजा ।**

इस भाव को अग्रेजी मे किसी विचारक ने यो प्रस्तुत कियाै है—Work is worship अंग्रेज विद्वान् Colvin Coolidge ने अपने एक भाषण मे कहा था—

"It is only when men begin to worship that they begin to grow."

=जब मनुष्य पूजा-भाव से काम करने लगते है तभी वे विकास पाने लगते हैं।

समवेत रूप से मानव-जीवन का उद्देश्य है—सत्यनिष्ठ होना। यदि हम सच्चे मानव बन जाएँ तो हम आत्मस्वरूप को, परमात्मा को साक्षात् देख सकते हैं और परमानन्द प्राप्त कर सकते है। इसी परमार्थ साधना को मुमुक्षता भी कह सकते है।

किसी जीव को दुख देने, हिसा करने से पहले हम अपने अत करण का गला घोट देते हैं, अपने मानस के सत्य को मार डालना चाहते है। अतएव हिंसा झूठ का ही दूसरा नाम है। अहिंसा और सत्यमय व्यवहार वास्तव मे भगवान की पूजा ही हैं। इस पूजा भावना की सुगध से ही प्रेम, दया, त्याग, नम्रता, सहिष्णुता आदि अनेक पुण्य गुण विकसित हो जाते है और मानव-जीवन वसन्त के समान सरल, सुदर और सुखद बन जाता है।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदु परमेष्ठिनम् ; सामवेद ॥१०।७।१७॥

=जो मानवतामे ब्रह्म के दर्शन करते है, वास्तव मे वे ही परमेश्वर को समझते हैं।

देवसेन ने 'सावयधम्म दोहा' ( १०वी शती ) मे लिखा है—

**मण्यत्तणु दुल्लहु लहिवि भोयहं पेरिउ, जेण ।**
**इंधण कज्जे कप्पयरू मूलहो खडिउ तेण ॥१९९॥**

—दुर्लभ मनुजत्व को भी प्राप्त कर जिसने उसे भोगो मे लिप्त किया उसने मानो ईंधन के लिए कल्पवृक्ष को समूल उखाड़ डाला।

नानक का कथन है—

मानस जनम दुर्लभ गुरमुख पाइआ।
मन तन होइ चुलभ जे सतिगुर भाइआ॥
चले जनम सवार वरवर सम लै।
पत पाइ दरबार सतिगुर सबद भै॥ रहाउ॥

# सन्तानोत्पत्ति और नारी

टाल्सटाय एक आदर्शवादी विचारक थे और उन्होने धर्म की छाया मे बैठकर ईश्वरीय नियम ढूँढने का प्रयत्न किया है। मर्यादा के पालन का मोह उनके लेख से झाँकता दिखाई पडता है। किन्तु आज का यथार्थवाद और मनोविज्ञान उस मोह पर व्यग्य-बाण छोडता आगे बढता जा रहा है।

टाल्सटाय उच्च वर्ग की महिलाओ के सम्मुख अपना मर्यादा-सम्पन्न आदर्शवाद प्रस्तुत करके उनकी स्वच्छद वृत्तियो को साधारण जनता मे फैलने से रोकना चाहते थे। आज के विचारक को यह सोचना है कि इन स्वच्छद वृत्तियो का वास्तविक कारण क्या है।

महात्मा गाधी ने सन्तानोत्पत्ति और तत्सम्बन्धी विषयो को बडी सूक्ष्म दृष्टि से देखा था और जनता के जीवन मे प्रगति लाने के लिए अपने सुझाव दिए थे। किन्तु उन सुझावो का आधार भी आदर्शवादी और धार्मिक मर्यादाओ पर रखा गया है। ब्रह्मचर्य का आदर्श कैसे-कैसे दैवी गुणो को उत्पन्न करने वाला है, यह जानते हुए भी साधारण व्यक्ति वहाँ तक पहुँचने मे असमर्थ रहता है।

ब्रह्मचर्य के इस आदर्श को भारत के मनीषी वैदिक काल से लेकर गुप्तकाल तक, गुप्तकाल से लेकर कबीरकाल तक, और कबीरकाल से लेकर वर्तमान काल तक प्रस्तुत करते आए है, परतु वेश्यावृत्ति का उल्लेख हमारे प्राचीन और अर्वाचीन सभी साहित्य मे बराबर मिलता है। हमारे देश मे यह वृत्ति कभी शात न हो पाई। कारण यह कि हमने इस समस्या को केवल धार्मिक आधार पर सुलझाना चाहा। फिर धार्मिक कट्टरता ने कई बार तो उलटे वाममार्गी और चारवाक उत्पन्न किए। हम इस समस्या की जड को केवल मोडने के प्रयत्न मे रहे हैं, इसे उखाड नही सके।

प्रकृति सतानोत्पत्ति के लिए ही स्त्री-पुरुष को प्राय एक दूसरे की ओर आकर्षित करती है। शरीर-विज्ञान के एक आचार्य ने लिखा है कि मनुष्य का पहला नैसर्गिक धर्म है—"युगो से सुरक्षित मानुषी जीवाणुओ को नए रक्षको को सौंप देना।"

सामाजिक जीवन मे सतान-निरोध अथवा सन्तानोत्पत्ति की समस्या के केवल दो आधार है—(१) काम-वासना। (२) आर्थिक स्थिति। इन्ही दो के चढ़ाव-उतार से हमारी सामाजिक व्यवस्था बनती-बिगडती रहती है।

आधुनिक काल मे आर्थिक स्थिति ही हमारी सभी समस्याओ का प्रबल कारण बन रही है। हमे कम सतान चाहिए क्योकि देश मे अनाज नही, धन नही, काम-काज नहीं। नारी को पुरुषो के काम-धधे भी सीखने चाहिए, क्योकि उसकी उन्नति और स्वतन्त्रता का यह भी एक साधन है, आदि-आदि।

किसी-किसी देश मे सरकार की ओर से सन्तानोत्पत्ति पर विशेष इनाम और शुल्क मिलते है और किसी-किसी मे इसे एक अपराध मानकर जुर्माना लगाने की भी बात है।

काम-वासना को मार डालना बहुत ही कठिन है। धार्मिक नेता इसे कोसते रहे, पर मिटा न सके। सूरदास ने इसे शुद्ध करके कृष्ण-भक्ति मे लगाना चाहा था, किन्तु इसका परिणाम क्या हुआ इसका साक्षी हमारा रीतिकालीन साहित्य है।

**जा तनि की झाई पड़े अंधा होत भुजग।**
**कबिरा तिन की क्या गति जो नित नारी के संग॥**
**विधिहू न नारि हृदय गति जानी।**
**सकल कपट अघ अवगुन खानी॥**

आदि विचार प्रकट करके कबीर और तुलसीदास ने नारी के विरुद्ध एक-पक्षीय निर्णय दे दिया है। और 'कचन-कामिनी' की निन्दा करके उस विद्यार्थी का अभिनय किया है जो सवाल हल न कर सकने पर अपनी स्लेट ही तोड डाले।

मेरे विचार मे नारी की सार्थकता को उजागर करने और सतानोत्पति की समस्या को सुलझाने के लिए दो उपाय सफल हो सकते है—(१) शिक्षा का विस्तार और (२) उद्योगो का राष्ट्रीयकरण।

जिन देशों मे शिक्षा का बहुत विस्तार रहा है वहाँ सतानोत्पत्ति उचित मात्रा मे होती है। दम्पती अपने अधिकार और अपने कर्तव्य जानते है। उनके मनोरजन के लिए अगणित क्षेत्र खुल जाते है। विवाह-योग्य आयु का स्तर भी ऊँचा हो जाता है। जनसख्या अपने-आप सतुलित हो जाती है और नागरिकता का स्वरूप निखर जाता है।

उद्योगो के राष्ट्रीयकरण से हमारा जीवन-स्तर ऊँचा हो जाएगा, नारी को अपने कर्तव्य पालन मे सुविधा होगी और फालतू जनसख्या कामधधो मे लग जाएगी, धरती का बोझ न रहेगी। इस राष्ट्रीयकरण से आज के उच्च वर्गो मे जो कृत्रि-मता आ गई है वह भी मिट जाएगी। वस्तुओं का संतुलित उत्पादन और प्रसार ही हमारी सामाजिक विषमताओ को दूर कर सकता है।

इन दो कल्याणकारी उपायो के पश्चात् हमारी जनता, सम्भव है, अपने

विवेक से महात्मा गाधी और टाल्सटाय के आदर्श को भी कुछ समझने लगे । अर्थ और काम के सतुलन से मोक्षदायी धर्म अपने-आप स्थापित हो जाएगा ।

निस्सदेह, साधारण नारी की सार्थकता सतान के उत्पन्न करने और उसे स्वस्थ नागरिकता के योग्य बनाने की साधना मे है, परन्तु जिन असाधारण नारियो में कामवासना बहुत कम हो और कुछ अलौकिक वृत्तियाँ उनको निष्काम कार्य एवं जनसेवा की ओर प्रेरित करे, उनके लिए अविवाहित रहकर अपने दैवी गुणो को विकसित करना प्रशसनीय है ।

# देवर-ननद

देवर और ननद हमारे तथाकथित सयुक्त परिवार के महत्वपूर्ण सदस्य है। इन शब्दो के अर्थ मे ही सयुक्त परिवार की सम्पूर्ण आलोचना मिल जाती है।

हमारी आधुनिक आर्य-भाषाओ का 'देवर' सस्कृत के 'द्विवर' का अपभ्रंश है। द्विवर का वाच्यार्थ है—'दूसरा पति', किन्तु व्यंग्यार्थ है—'दो मुल्लाओ मे मुर्गी हराम।'

ननद भी इसी प्रकार सस्कृत के 'ननादृ' का अपभ्र श है, जिसका सीधा अर्थ है 'भाभी को सतानेवाली।'

"प्राचीनतावादी" इन शब्दो को होली की चुहलबाजी कहकर टाल देंगे, पर मेरे विचार मे ये शब्द हमारी सयुक्त प्रणाली के गभीर व्यग्यचित्र है। जिन नवयुवक और नवयुवतियो को इस प्रणाली की वेदी पर सिसक-सिसककर अपने प्राणो की भेट चढानी पडी है, उनकी करुण कथाएँ भी इन्ही दो शब्दो से ध्वनित हो रही है।

वह समय बदल गया जब पिता अपनी कन्या को किसी भरे-पूरे बहु परिवार-वाले बडभागी घर में भेजने का अभिलाषी था। आज तो ऐसे घर की खोज रहती है जहाँ सास-ससुर और ननद-जेठानी का कोई टटा न हो।

यदि संयुक्त परिवार की प्रणाली सहकारी सस्था के रूप मे बराबर के अधि-कारो को मानकर चलती तो आज की सामाजिक व्यवस्था क्यो बिगडती? ऊँच-नीच, जाति-पाँति, छुआछूत, आलस्य, निष्कर्मण्यता और नियतिवाद जैसे कुष्ठरोग हमारी जनता मे क्यो घर कर लेते?

पश्चिम की जातियो मे जहाँ सयुक्त परिवार की प्रथा नही है, ये समस्याएँ नाममात्र को भी नही है। उनका जीवन-स्तर काफी उन्नत है और वे साहसी है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने हाथ की कमाई खाता है। यहाँ तो संयुक्त परिवार अनाथालय का विकृत रूप बनकर रह गया है।

सिविल मैरेज (कानूनी शादी), सतति-निरोध, बड़ी मशीनो से कृषि, बेकारी, अमरीकी सहायता से चल रही योजनाएँ—इन सबके पीछे हमारा रहा-सहा संयुक्त परिवार रो रहा है। यदि वर्तमान युग को लाँघकर ४५ करोड़ नर-नारियो को वैदिक युग मे वापस ले जाना असम्भव है तो आज साहस के साथ भविष्य की ओर दृढ पग उठाना हमारा कर्तव्य है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का राग

अलापनेवाला हमारा एकात्मवादी देश अपने आदर्श को जीवित न रख सका, और अपनी संयुक्त परिवार-व्यवस्था पर कायम नही रह सका—कैसी विडम्बना है ।

आश्रम-व्यवस्था के नितात विकृत हो जाने के कारण, विशेषकर वानप्रस्थ और सन्यास-आश्रम के मिट जाने पर, हमारा संयुक्त परिवार बासी संतरे की फाँको की भाँति नाममात्र को सयुक्त रह गया है। अतएव आज यह प्रणाली हमारे प्रगतिशील जीवन के लिए उपयुक्त नही रही।

अंग्रेजी सभ्यता ने हमको भौतिकवादी दृष्टिकोण दिया, तर्कनीति दी और दी स्वार्थपरता। धीरे-धीरे हम स्वच्छंदवादी तो बन गए, परन्तु पुरातन संस्कार न छोड सके। उधर अंग्रेजो के समान आर्थिक उन्नति के साधन भी हमको नसीब न थे। पहले एक कमाता था, दस खाते थे, अब दस कमाते हैं तो पाँच भूखे रह जाते है। ईर्ष्या, द्वेष और स्पर्द्धा ने हमको न घर का छोड़ा न घाट का।

हमारे समाज का बाहरी ढाँचा सुधारवादी नेताओ के लगाए पैवंदो से ज्यों-का त्यो बना रहा, पर अंदर से खोखला होता गया। आर्थिक समस्याओं ने हमे धर्मपरायण नही रहने दिया।

रामराज्य का स्वप्न देखने वाले महात्मा गाँधी ने संत तुलसीदास की भाँति सयुक्त परिवार की नीव आध्यात्मिक तत्त्वो—त्यागशीलता, श्रद्धा-भक्ति, अहिंसा, सत्याग्रह आदि—पर रखने की प्रेरणा दी। उन्होने वर्णाश्रम मे भी सुधार करने की रियायत दी, यद्यपि वे प्राचीन भारतीय सभ्यता मे पूर्ण आस्था रखते थे।

स्वतन्त्रता के इन छ वर्षों मे भी हमारे भारत पर व्यष्टिवादियो का ही आर्थिक शासन रहा है। यही कारण हैं कि हमारे सामूहिक जीवन के विकास की योजनाएँ सफल होती नजर नही आती।

# यंत्र एवं यंत्रणा

सुश्रुत मे यन्त्रक का अर्थ है, घाव पर बाँधने की पट्टी। यह बडा भारी सकेत है आज के यन्त्र युग के लिए। मानवता के घायल हृदय पर पट्टी बाँधना, निरीह एव निराश मानवता को सम्बल देना, यही यन्त्र युग का उद्देश्य होना चाहिए।

पट्टी बाँधने की क्रिया में से नियत्रण शब्द निकल आया है और वह पुकार-पुकार कर कहता है शस्त्रो, अस्त्रो आदि भयकर यन्त्रो पर नियंत्रण रखो, नियंत्रण रखो ! वरना विराट पुरुष विकराल रूप धारण कर लेगा !

इतिहास अपने आप को दुहराता रहता है, किन्तु कभी-कभी इसका आवर्तन बहुत भयकर होता है। अणुशस्त्र-जैसे विध्वंसकारी यत्र पुरातन काल मे भी बने थे। युग-द्रष्टा कहते रहे . नियत्रण करो—मन पर नियत्रण, वाणी पर नियंत्रण, कर्म पर नियत्रण रखो, जिस कैवल्य, जिस महासुख को तुम प्राप्त करना चाहते हो वह चित्त-वृत्तियो के निरोध से प्राप्त होगा, इनकी विश्रृखलता से नही। मानव के दम्भ ने एक न सुनी। बडी भारी तबाही हुई, इतिहास ही लुप्त हो गया और यत्र से शब्द बना यन्त्रणा !

त्राण का अभिलाषी मानव कहाँ से कहाँ चला गया। कुरान ने सच कहा है—"१. और वह ( आदम ) जलूमन ( अधकारग्रस्त ) एवं जहूलन ( अज्ञान-ग्रस्त ) था। २ फरिश्तो ने कहा—ऐ खुदा। तू क्यो ऐसी मखलूक को पैदा करता है, जो खून गिराती फिरेगी और फसाद करती फिरेगी।"

आज एक ओर तो भयकर यत्रो की अबाध होड लगी हुई है दूसरी ओर गणतंत्र के विश्वव्यापक उद्यम हो रहे है। गणपति गणेश आज तक पूज्य है, क्यो कि उसने अपनी माता पार्वती से शक्ति प्राप्त की और अपने पिता शिव से कल्याणमय साधना। आज के गणतत्रो के नेता शक्ति के तो पुजारी है किन्तु शक्तिप्रिय शिव को भुला बैठे है—और वे नही जानते कि शिव का नियत्रणकारी तीसरा नेत्र ऐसे ही लोगो को सीधी राह पर लाने के लिए खुलता है। जब शिव पाँव मे भूचालो के घूँघरू बाँध कर ताण्डव नृत्य करते है और उनका डमरू महाकाल के आगमन को घोषणा करता है, उनका त्रिशूल चमक-दमक कर संकेत करता है—दाम्यत—दत्त—दयध्वम् !!! —बृहदारण्यक उपनिषद, ५।२।३

वह ध्वनि गर्जन-तर्जन की है, किन्तु उसमे भी शिव के हृदय की कोमलता का स्पदन सुनाई देता है और उसी भाव की वाणी के रूप मे परिणत करने

के लिए नवीन चन्द्रमा चमकता है आशा और नव निर्माण का संदेश देने के लिए। वह सदेश चिर सत्य है, चिर सुन्दर है, चिर शिवम् है।

आत्मा स्वयं विज्ञानमय पुरुष है, सत् चित् आनंद, किन्तु उसके विज्ञान के उपनिषद-अर्थ और आज के भौतिक साहित्यिक अर्थ में कितना अतर पड़ गया, कितना व्यवधान! सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो इस व्यवधान के पक्ष भी एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं, यदि विवेक जाग उठे। संत विनोबा ने स्पष्ट कहा है—"जैसे पक्षी दो पखों से उड़ता है, वैसे ही मनुष्य आत्मज्ञान और विज्ञान, इन दो शक्तियो से अग्रसर हो बहुत सुखी होता है।"

एक पक्ष वाला पछी कभी उड नही सकता, उन्नति नहीं कर सकता, बल्कि देर तक अपने प्राणो की रक्षा भी उससे नही निभ सकती। भौतिकता की अंध-पूजा अथवा प्रकृति पर विजय पाने के स्वप्न मनुष्य को ऊर्ध्वगामी नही बना सकते। मनुष्य स्वय प्रकृति का एक अग है, प्रकृति-पुत्र है। पुत्र और माता के बीच तो प्रेम का साम्राज्य होता है, जीतने हारने का नही। उस प्रेम और अहिसा को अशक्त समझ कर बाह्य आडम्बरो की साधना हृदय की कृपणता ही तो है!

मौलाना रूमी ने ऐसे मानव के प्रति कहा है—विश्वजित होना चाहता है तो पहले अपने आप को जीत ले, बाहर उड़ान भरने से पहले अपने अंदर भी दो-चार कदम उतर कर देख। और कबीर एवं नानक ने मानो उसी स्वर मे कहा है—

"मन जीते जग जीत है"

हमारे तापसी साहित्य में सूर्य-विजय चक्षु-विजय है, प्राण-विजय चन्द्र-विजय है, और दोनो की विजय का नाम मोक्ष है। अनेकता मे से एकता आत्मदर्शन और सेवा-वृत्ति से ही सम्भव है। किन्तु आज का विज्ञान बाहर की अनेकता मे भटक रहा है। उसकी आतकप्रियता उसके अदर की कायरता और कगाली की द्योतक है, साहस और वीरता की नही।

भवसागर की अगणित, बहुकाय, बहुरग लहरियो को परखने या सँजोने का काम व्यर्थ है। सागर के शात अत स्थल के सगीत को सुनो जो व्यष्टि के समष्टि रूप हो जाने की सरस कहानी कहता है।

**दिलि हर कत्रा है साजे अनल्बहर।**

**हम उनके हैं हमारा पूछना क्या॥** ग़ालिब

प्रत्येक जलकण का हृदय एक साज है, जो बज-बज कर कहता है—'मैं समुद्र हूँ।'

विज्ञान को सत्य का पुजारी माना जाता है। किन्तु सत्य तो विकास एवं

सुख का नाम है; जो काम दुख और ह्रास को उत्पन्न करे, वह झूठ का पुलदा है, सत्य नही। सत्य की पहली शर्त है, जिसको निष्फल करने के लिए अविचार बदर-मूठ बन जाता है, यही अविचार नाजीवाद और साम्प्रदायिकता की भेदबुद्धि बन जाता है। सत्य तो मदिर का प्रसाद होना चाहिए, कुल्हिया का गुड नही, सत्य तो पारदर्शी स्फटिक-मूर्ति है, लोहावरण नही।

विश्वकवि रवीद्रनाथ ठाकुर यूरोप के विध्वंसकारी विज्ञान से बहुत क्षुब्ध रहते थे। मीलान (इटली) मे उन्होने अपने एक भाषण मे स्पष्ट कहा था—"जब सत्य का सदुपयोग नही होता तो वह भस्मासुर बन जाता है, अत: तुम्हारा विज्ञान ही तुम्हारे लिए विनाशकारी बन गया है—यदि तुमने साधना करके वज्र प्राप्त कर लिया है, तो तुम्हे इन्द्र देवता का-सा दक्षिण बाहु भी अपनी रक्षा के लिए अर्जित करना चाहिए। तुम निष्फल रहे हो ऐसे सद्गुणो की साधना मे, जो तुम्हें विज्ञान पर सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करवा सकते। इसी लिए तुम शाति गँवा बैठे हो। तुम शाँति के लिए चीखते-चिल्लाते हो, किन्तु एक से एक भयंकर मशीन बनाते रहते हो, कोई न कोई नया सशक्त सयोजन करते रहते हो। कुछ देर के लिए बाह्य विवशता से सन्नाटा तो उत्पन्न किया जा सकता है, किन्तु शाँति तो अध्यात्म से ही आती है; सहानुभूति की शक्ति से एवं आत्मत्याग की शक्ति से शाति आती है, आयोजनो के वेग से नही।"

उन्ही दिनो बिशप वारन (H. W. WARREN) ने भी अपने एक विशेष संदेश मे कहा था—

"बाएँ हाथ मे विज्ञान को रखते हुए हम दायाँ हाथ धर्म को दे और कहें—मेरे चक्षु खोल दो कि मै चमकती हुई जगतियो से अधिक अद्भुत वस्तुएँ देख सकूँ। धर्म अपने वचन को पूर्ण करते हुए हमारी आतरिक शक्तियो को जगाता है और हमारी आँखो को अधिक अद्भुत वस्तुएँ देखना सिखाता है। इस नए प्रकाश मे सूर्यवत् जगमगाते जगत सुबह के तारे की शोभा की भाँति मद पड जाते है। आत्मा जानती है कि प्रेम का अथाह सागर उसके चारो ओर व्याप्त है, उसमे स्पंदन है, स्नेह की भुजाएँ उसको उठाती है और वह पितृप्रेम की चेतनता मे स्नान करती है।"

हमारा वाड्मय ऊपर से नीचे उतरता आया है—ईश्वर, द्युलोक, मर्त्यलोक, मानव, मन, शरीर, प्रकृति अथवा ईश-गान; भक्ति, चारण-काव्य, जन-काव्य, प्रकृतिकाव्य। अब हम गतिचक्र के उस छोर पर पहुँच गए है जहाँ से एक ओर तो पशुत्व का आरम्भ होता है और दूसरी ओर ब्रह्मदर्शन का। विचारको का मत है कि विज्ञान का सारा प्रयास अनचाहे ही अध्यात्म के निकट आ रहा है।

बंदर की कूद-फाँद के पश्चात् मदारी जब लेखा-जोखा करेगा तो सारी जीविका का आधार अपनी आत्मा के पुरुषार्थ को मानेगा, बंदर को नही।

सारांश यह कि यंत्र, मत्र एवं तत्र के त्र पर ध्यान देना अब बहुत महत्व-पूर्ण हो गया है। इनमे से मन्त्र अर्थात् मन के त्राण की अधिक आवश्यकता है, यह विकास का केन्द्र-बिन्दु है। इसी से सुचारु रक्षा और सफलता ( यत्र; सूत्र ) की उपलब्धि होगी, इसी से सब नियत्रण और प्रबध होंगे। असावधानी से मनोविकार उत्पन्न होगे और यंत्र यत्रणा बन जाएगा, तंत्र परतत्रता।

योगिराज कृष्ण का वह चित्र कितना प्रिय है जिसमे यह दिखाया गया हैं कि भगवान कृष्ण पाँच घोडों ( ज्ञानेन्द्रियो ) की लगाम पर नियंत्रण रख कर विज्ञान रूपी रथ को जीवन के रणसंग्राम मे से कल्याण ( विष्णु ) के परम पद की ओर लिए जा रहे है। इसी भाव को कठोपनिषद् ने यो कहा था—

विज्ञानं सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

# विज्ञान तथा मनुष्य

मनुष्य को कुछ ज्ञान तो सहज ही प्राप्त होता है। सोने-जागने, पीने-खाने और रोने-चिल्लाने की क्रियाए वह बिना सिखाए जानता है। उसको दूसरे जीव जन्तुओ के समान शारीरिक काम करने मे बहुत परिश्रम नही करना पड़ता। हाँ, अपने आपको बचाने और अधिक सुखी रखने के लिए उसे अपनी जीवन-यात्रा मे विशेष ज्ञान प्राप्त करना पडता है। ऐसे विशेष ज्ञान का नाम ही विज्ञान है।

अपनी रक्षा और उन्नति के निमित्त मनुष्य ने कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और मंत्र-तत्र बनाए। उसने अपनी परिस्थितियो का अध्ययन किया, अपनी आवश्यकताओ का निरीक्षण किया, और फिर नए प्रयोग करके भाँति-भाँति के आविष्कार किए। इतिहास बताता है कि प्राचीन मनुष्य जिस महत्त्वपूर्ण वस्तु का तथ्य न जान पाया उसे पूज्य ही समझता रहा। सूर्य देव, चन्द्र देव, उषा रानी, सध्या देवी, वायु देवता ऐसे ही देवी-देवता प्रत्येक देश मे पुराने समय में उपास्य थे।

ज्यो-ज्यो मनुष्य विज्ञान की सहायता से अपने वातावरण पर विजय पाता गया और प्रकृति पर अधिकार जमाता गया वह अहभाव मे फँसता गया। बाहर के दृश्य पदार्थों ने उसकी अंतर्मुखी शक्तियो को विकास का अवसर कम दिया। जिस कटार से वह हिंस्रो से अपनी रक्षा किया करता था उसी से वह निर्बल जीवो की हिंसा भी करने लगा। सच पूछिए तो भौतिक विद्या ने मनुष्य को अपने मार्ग से भटका दिया है। आज का मानव जल-थल और नभ पर अपना अधिकार जमा चुका है पर परमाणु और उद्‌जन (हाइड्रोजन) की शक्ति से वह अपने आपको विनाश के गर्त मे फँसाने वाला है। मनुष्य की चपल बुद्धि ने उसकी आध्यात्मिक और मानसिक शक्तियो को निकम्मा कर दिया है। भारत के दार्शनिको ने सच कहा है कि भौतिकता वास्तव मे अज्ञान है, माया का छलावा है।

इस भौतिकतावादी विज्ञान ने मनुष्य के मन से श्रद्धा, त्याग, सहानुभूति, आत्मनिर्भरता और मनुष्यता रूपी अनमोल रत्न लूट लिए हैं। आज का वैज्ञानिक सेवाभाव के उच्च आदर्श को छोड कर स्वार्थ मे पड गया है। वेश्यावृत्ति ने उसे पूँजीपतियो के हाथ का खिलौना बना दिया है। वह अपनी बुद्धि को बेचता है, ध्वंसकारी सिद्धान्तो को सफल बनाता है और सम्मान पाता है।

आज अमेरिका अरबो रुपया युद्ध सामग्री के जुटाने पर व्यय कर रहा है,

यद्यपि उसी देश मे हजारो भिखारी दाने-दाने को तरसते है, हजारो बिना घर-द्वार के जीवन बिता रहे है, निर्धन रोगी बिना चिकित्सा और औषधि के मर जाते है, सहस्रो व्यक्ति अपढ हैं और सभ्यता के उच्च आदर्शों से अनभिज्ञ है।

विज्ञान ने आज रेडियो, हवाई जहाज, उपग्रह इत्यादि से मनुष्य को समय और स्थान की सीमाओ को उलाघने मे सफल किया, पर यह जो शोषक बनने की लालसा बढा दी है इससे आज विज्ञान भस्मासुर बन कर अपने निर्माताओ को ही नष्ट करने पर तुल गया है। जो दशा कल जर्मन वैज्ञानिक की हुई थी वही आज रूसी अथवा अमरीकी वैज्ञानिक की प्रतीत होती है। उसके विश्व-बधुता के विचार शस्त्रो की झंकार मे डूबे जा रहे है और उसका स्वार्थ उसे हिंस्र प्राणियो से भी अधिक घृणित बना रहा है।

मानवता तथा विज्ञान के बीच में मध्यस्थ का काम करने के लिए ईश्वर ने हमारे पास महात्मा गाधी जी को भेजा था जो सत्याग्रह अथवा अहिसा का सदेश देकर चले गये हैं। वे वैज्ञानिक नही थे पर उनकी सभी बातो मे विज्ञान के उत्तम तथ्य छिपे हुए है। उन्होने मनुष्य को शोषण की भारी मशीनों से बचाने के लिए खादी का प्रचार किया, सर्वोदय का विचार दिया।

जब तक सारे विश्व मे रोटी, कपडे और मकान की समस्या बनी रहेगी, राम-राज्य सम्भव नही होगा। जब सत्याग्रह और अहिंसा का विज्ञान अपनी परा-काष्ठा को पहुँच जायेगा तो यह वसुधरा मनुष्य के लिए अनुपम स्वर्ग बन जायगी।

# ज्ञान-प्रेम

प्रेम भी ज्ञान की गरिमा से पनपता है। परिचय के बिना प्रेमी का आकर्षण स्थापित नही होता। ज्ञानहीन प्रेम अंधविश्वास मे परिणत हो जाता है।

मैंने कैक्टस का एक सुदर पौधा लगाया। उसकी बहुत देख-रेख करता था यहाँ तक कि जब स्वय पानी पीता उसे भी पानी पिला देता था—'बेचारा प्यासा ही न रह जाए।'

मैंने उससे अगाध प्यार किया; किंतु मेरा प्रेम भी अधा निकला। उसे यह नही पता चला कि वह पौधा तो सूखे वातावरण मे अधिक प्रसन्न रहता है।

अधिक तर्पण ने उसकी जडे गला डाली और वह गिर पडा सिर के बल। उसका वह दण्डवत प्रणाम मेरे प्रेम को बहुत भयंकर प्रतीत हुआ; मेरे मोह और अधविश्वास को सत्य ने झकझोर डाला।

मैंने गले हुए पोर को काट दिया। शेष को फिर आरोपित कर दिया। अब बहुत ही कम जल देता था—दो चार अश्रुविंदु।

और मेरा प्रिय कैक्टस विकासवान हो गया। वह भिक्षुक नही था, साधक था जिसे अपनी सिद्धि के लिए कृपादृष्टि ही अभीष्ट है।

कृपादृष्टि क्या यो ही मिल जाती है! त्याग, तपस्या, निष्काम सेवा और प्रेम-भक्ति के बिना क्या कोई कृपापात्र बन सका है?

अपनी दृष्टि को दीपशिखा की भाँति तापस एवं पवित्र बनाना ही ईश्वर की कृपादृष्टि की प्रक्रिया है। प्रेम का रस जब छलकने लगता है, उसकी चमक से ज्ञान का प्रकाश फूट पडता है, और ज्ञान का प्रकाश जब सघन हो जाता है वह अमृतधार बन जाता है प्रेमामृत।

# गाँव साफ़ रखिए

अंधकार से प्रकाश, शिशिर से वसंत और वृद्धावस्था से यौवन उत्तम है। प्रकृति ने यह स्वभाव बनाया है कि प्रत्येक प्राणी अपनी भलाई और विकास का प्रयत्न करता है। पछी और पशु भी अपने बच्चो को गदगी से सुरक्षित रखा करते है।

चिडिया को देखिए! मुट्ठी भर पछी है किन्तु वह भी अपना नीड बडी सफाई से बनाती है। वह साधारण तिनको को सुघडता से रख कर सादगी और सफाई का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करती है। वह अपने बच्चो को साफ-सुथरा रखती है, उनके लिए जो खाद्य पदार्थ लाती है उसे साफ करके खिलाती है। आपने उसे पानी मे नहाते देखा होगा। कैसे आनन्द से डुबकी लगाती है, अपने परो पर नाम मात्र को भी धूल जमने नही देती। जो लोग साफ सुथरा रहना पसद करते है, अपने वस्त्र उजले और शरीर स्वच्छ रखते हैं वे चिरकाल तक विविध रोगो से बचे रहते है। इनका स्वास्थ्य भी अनुकरणीय होता है।

ईश्वर ने जिन लोगो को विद्या और विज्ञान के अमूल्य आभूषण से सजाया है। वे इस बात का महत्व भली प्रकार जानते है, किन्तु किसान लोग प्राय: इस की आवश्यकता न जान कर हानि उठा बैठते है।

देखिए एक किसान सबेरे-सबेरे अधेरी और तंग कोठडी से उठता है, ढोर डगर को भी उसी कोठडी मे बधा पाता है। उन्हे बाहर ले चलता है। रास्ते मे गदगी के ढेर से गुज़रता है। विचित्र बात यह है कि नित्य के दूषित वातावरण से उसका मन विद्रोह नही करता। सारा दिन खेतो मे काम करने के पश्चात् जब वह वापस लौटता है, उसके कपडे पसीने से लत-पत होते हैं, सिर मे धूल, मुँह पर श्रमविन्दु। वह एक जोहड के किनारे आता है, जानवरो को पानी पीने के लिए छोड देता है, स्वय भी वही मुँह-हाथ धो कर जल्दी-जल्दी घर की राह लेता है। उसके बच्चे भी सदैव पशुचारण मे सहायता देते है; किन्तु वे प्राय गदे, भद्दे और कुरूप से दीखते है।

गाँव का दुकानदार भी प्राय पुरानी, बासी और गली-सडी वस्तुएँ बेचता रहता है। घर की यह दशा है कि स्थान-स्थान पर गोबर पडा रहता है, दुर्गन्ध और कीचड की नमी के कारण उसका घर रोगो का जन्मस्थान बन जाता है। नीची छते, तग कमरे उस वातावरण को और भी दूषित कर देते है। घर क्या हुआ, काल कोठडी! बाल बच्चे, मित्र, अतिथि सभी को एक ही कमरे मे सोना

पडता है। दूसरे कमरो मे घास, भूसा और अन्य सामग्री पडी रहती है। वह अपने ढोर-डगर को केवल हल जोतने का साधन समझता है। वह उन्हे साफ नही रखता।

वर्ष भर मे पशुओ के मेले मे एक आध बार उसे जाना पडता है। उन दिनो उन्हे साफ रखने की आवश्यकता अनुभव करता है। सर्दियो मे वह स्नान विरले ही करता है और गर्मियो मे उसकी असावधानी मच्छर-मक्खियो को पालती रहती है। साराश यह कि गाँव का जीवन नित्य बढती हुई गदगी के कारण दूभर बनता जा रहा है।

कुछ ग्रामीण लोग अपनी अस्तव्यस्त और गदी रहन-सहन को सादगी का नाम देते है। यह बडी भारी भूल है। सफाई के बिना सादगी बनी नही रह सकती।

बैसाखी, दीवाली आदि त्यौहारो पर स्वच्छ वातावरण, सुन्दर वस्त्र और सजावट जीवन मे आनद-उल्लास उत्पन्न कर देती है। मानव का हृदय स्वच्छता और सुन्दरता पर रीझ जाता है, किन्तु आडम्बर और दिखावे की बातो में धन का व्यर्थ व्यय होता है। सरल, सादा और उचित व्यवहार, पहरावा और भोजन मनुष्य को आनन्दमग्न कर सकता है।

गदे जानवर प्राय शिथिल, रोगग्रस्त और कुरूप हो जाते हैं। उन्हे बुढापा भी जल्दी घेर लेता है। इसी प्रकार गदे बच्चे आँख, कान और पेट की अनेक बीमारियो से दु ख पाते है। हैजा, चेचक, मलेरिया आदि रोगो का प्रकोप होता है और वे दुर्बल, अस्वस्थ एवं आलसी बन जाते है।

मनुष्य की तीन वस्तुओ मे स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए—रोटी, कपडा और मकान। भोजन चाहे सस्ता हो किन्तु, ताजा, साफ और गुणकारी हो। केवल दाल-भात और दही-लस्सी से शरीर पुष्ट नही हो सकता। हरे पत्ते वाली तरकारियाँ, साग-पात, मूली, गाजर, टमाटर, ककडी, खीरा आदि का सेवन अदल बदल कर करना चाहिए। भूख से अधिक भोजन करनने से अजीर्ण हो जाता है। केवल स्वाद के कारण मिठाई खाते रहना भी बुरी आदत है। इससे दाँतो की जडें दुर्बल हो जाती है और पेट मे कई विकार उत्पन्न हो जाते है। मन भी दुःखी रहता है—यथा अन्न तथा मन।

अनाज से भी अधिक महत्व पानी का है। पानी को सस्कृत मे जीवन कहते है और नानक देव जी ने कहा है—'पहला जीव जल है जित हरिआ समलोह।' पानी का सबसे बडा गुण होता है निर्मल होना। मैला, गदला और गंदा पानी अनेक रोगो का मूल कारण होता है। इसलिए जोहड़ का गंदा पानी मनुष्य के

काम का होता है और न पशु के काम का। हमारे देश में अब तो गाँव-गाँव मे बिजली पानी प्राप्त करने का प्रबन्ध किया जा रहा है; किन्तु कई गाँवो मे देर तक ऐसा प्रबन्ध करना कठिन है। वहाँ जोहड को भगवान के मंदिर की तरह स्वच्छ और पूजायोग्य बनाना चाहिए। उसमे केवल बारश का स्वच्छ जल एकत्र होना चाहिए। पशुओ के लिए विशेष स्थान बना देना चाहिए। गदा पानी जोहड मे जाने न पाए। पीने का पानी सदैव छान लेना चाहिए। कहा भी गया है—

**पानी पीजिए छान के।**
**गुरु कीजिए जान के॥**

जोहड या तालाब मे नहाने की बजाय, पानी भर कर बाहर नहाना बिहतर है। पहाडी स्थानो मे प्रकृति ने कई चश्मे बहाए है किन्तु ग्रामीण लोगो की असावधानी से वे गदे और व्यर्थ बन जाते है। ईश्वर की देन का आदर करना चाहिए, उसे गंदा करने से ईश्वर के दान की अवहेलना होती है।

जब हमारे गाँव मे गदगी के ढेर नही रहेगे, गदे जोहड नही रहेगे, तो वहाँ का वातावरण भी शुद्ध हो जायगा। वायु निर्मल, शीतल और सुगन्धित हो जायगी। ताजी हवा और धूप ईश्वर की अमूल्य देन है।

जिस मकान मे धूप और हवा की कमी होती है, वहाँ स्वास्थ्य का भी अभाव होता है। खुले मकान, खुले आँगन और खुली हवा से दिल के कपाट भी खुल जाते है। घर मे स्थान-स्थान पर गोबर और कूडे-कर्कट के ढेर स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। सील और अँधेरे मे जुएँ, पिस्सू, खटमल, मक्खियाँ, मच्छर आदि छावनी डाल देते है। कूडा आँधी मे उड कर खाद्य पदार्थों पर पड जाता है, बच्चो की आँखें भी दुखने लगती है। बरसात मे दुर्गन्ध फैल जाती है और सारा घर नरक का नमूना बना जाता है।

कुत्ता प्राय घृणित समझा जाता है; किन्तु वह जहाँ-कही बैठता है अपनी पूँछ से साफ कर लेता है। उसके शरीर पर गंदगी लग जाए तो उसे जल्दी दूर करने का प्रयत्न करता है। मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है, उसके लिए सफाई का ध्यान रखना परम कर्तव्य है। साफ वातावरण में ही पवित्र विचार और पवित्र कार्य सम्पन्न होते हैं। दूषित और अस्वच्छ स्थान शारीरिक और मानसिक दु खो का केन्द्र बन जाता है। इसलिए घर की सफाई के साथ-साथ अपनी गली की सफाई भी आवश्यक है।

गली-महल्ले की सफाई करना भगवान की सब से बड़ी पूजा है। गढो मे खाद बनाना और गदगी को ढाँक कर रखना भी एक प्रकार का हवन है।

जिस तरह स्वार्थ से लोभ, लोभ से ईर्ष्या और अनेक विकार उत्पन्न हो

जाते है उसी तरह गंदगी से दु ख, आलस्य, रोग और कुरूपता फैल जाती है। सफाई का ध्यान रखते हुए वास्तव मे हम अपने परम सुन्दर भगवान को अपने निकट बुलाते है। गदे स्थान, गदे अत.करण और गंदे मस्तिष्क वाले मनुष्य को भगवान के दर्शन नही हो सकते। उसको सुख-शाँति कहाँ।

स्वच्छ घर, स्वच्छ महल्ला और स्वच्छ गाँव मे रहना ही स्वर्ग-प्राप्ति है। सेवा, तपस्या और त्याग के सुन्दर गुण सफाई के प्रयत्न मे स्वत: सिद्ध हो जाते है।

हमारे गाँव हमारे देश की उन्नति और अवनति के मापदड है। गाँव स्वच्छ होगे तो देश की काया पलट जाएगी, गाँव सुखी होगे तो देश समृद्ध एव बलवान बन जाएगा। ग्राम-सुधार का पहला कार्यक्रम है गाँव की सफाई। आदमी का पहला लक्षण हैं स्वास्थ्य। स्वास्थ्य और स्वच्छता वास्तव मे बहन-भाई का-सा सबध रखते है।

# ग्रामीण खेल

जहाँ प्रसन्नता है वहाँ सूर्य, चन्द्रमा और तारे अधिक उजाला बरसाते प्रतीत होते है। बागो और क्रीडा-स्थलो मे गहमा-गहमी दिखाई देती है और जीवन भरापुरा, सुन्दर, सुखद होता है। दु खी जगत मे अधेरा ही अधेरा होता है; सिसकियो और उच्छ्वासो के तूफान उमडते है, जीवन मरुस्थल सा सुनसान, नीरस प्रतीत होता है। इसीलिए स्वास्थ्य-सम्पन्न व्यक्ति के लिए यही मर्त्यलोक देवलोक बन जाता है और आलसी दरिद्र व्यक्ति के लिए नरक।

स्वास्थ्य चाहे शरीर से अधिक सम्बद्ध है, किन्तु वह मन और अत करण को भी स्थितप्रज्ञ बनाता है। सामाजिक जीवन का स्वास्थ्य नैतिक पवित्रता है किन्तु रोग ग्रस्त और निर्बल व्यक्ति कभी पुष्ट और रुचिर समाज का निर्माण नहीं कर सकते।

ग्राम-जीवन हमारी सभ्यता का प्रथम सोपान था। इसके निर्माण मे प्रकृति और पुरुष ने सुन्दर सहयोग से काम किया। अंग्रेज़ कवि काउपर का कथन है—

**बनाया है गाँवो को भगवान ने।**
**बसाया है शहरो को इन्सान ने॥**

God made the country,
And man made the town.—Cowper

चाहे ग्रामीण जनता मे कुछ आर्थिक शिथिलता सी आ गई है किन्तु इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि ग्राम्य जीवन सादगी, मिलनसारी एवं कर्मठता का आदर्श रखता है। स्वच्छ एवं ताज़ी वायु, एवं प्राकृतिक दृश्यों का जो आनन्द उन्हे प्राप्त है वह नगरो के लोगो को घनी आबादी के बोझल वातावरण मे दुर्लभ है।

हरे-भरे खेत हो या चटियल मैदान, सुनसान मरुस्थल हो या घना जंगल, ग्राम्य जन अपने अवकाश के समय एव त्यौहारो के दिनो मे कई प्रकार के खेल खेलते है। ये खेल सरल, सादा एवं सस्ते होते है। इनके द्वारा शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य मिलता है।

काम-धंधे से छुट्टी पा कर खेल तमाशे की रुचि स्वाभाविक वृत्ति है। बच्चो को देखिए! भोले-भाले हँसते-भालते प्रात-सायं खेलने में व्यस्त रहते हैं। कोई बच्चा मिट्टी के बैल बना कर खेलता है, कोई लकड़ी के घोड़े दौड़ाता है। एक

छुपता है दूसरा उसे ढूँढता है । बच्चे चादनी रातो को बहुत देर तक खेलते रहते है । वे अघाते नही, मानो खेलना ही उनके जीवन का ध्येय हो । जीवन की ये घडियाँ, बचपन की यह अवस्था राज्य-काल है ।

विरले ही कोई अभागा व्यक्ति होगा जो अपने लडकपन को स्मरण कर के प्रसन्न न होता हो और एक बार पुनः उस अवस्था को प्राप्त करने का इच्छुक न हो । सच तो यह है कि मनुष्य छुटपन मे निश्चिन्त होता है । प्रकृति उसे खेलने-कूदने को विवश करती है । खेलना जीवन का प्रथम स्वाभाविक गुण है । हार-जीत, सुख-दु.ख, हानि-लाभ जीवन के खेल ही तो हैं ।

मनुष्य की शक्ति सीमित है । अधिक काम की प्रतिक्रिया उसे आराम करने को उकसाती है । वह कई बार अपने काम की उपेक्षा करता है और कहता है—'मेरा जी नही लगता है ।' काम छोड कर वह टहलने लगता है । कई बार वह बाहर सैर को निकल जाता है, किन्तु उस समय भी वह कुछ-न-कुछ अपने काम के लिए सोचता रहता है । उसकी विचारधारा उसके मन का बोझ बन जाती है । अतएव उसे वास्तविक सुख नही मिल सकता । रात को वह लेट जाता है तो नर्म-नर्म बिस्तर भी उसे काँटो की सेज सा प्रतीत होता है । चिंता के कचोके उसे निढाल कर देते है । वह उलझनों के जाल मे भयभीत हरिण-शावक की भाँति विवश पडा रहता है । विचार-सागर मे गोते खाता रहता है, न आँख मे नीद न दिल मे शाति । भयंकर स्वप्नो के अस्पष्ट प्रभाव उसके जीवन को दूभर बना देते है । प्रात. से साय और साय से प्रातः तक उसका जीवन जटिल ततुवाय-सा बना रहता है, उसकी प्रसन्नता पर उदासीनता की धूल जमती रहती है । अँधेरे-अँधेरे घुटे-घुटे वातावरण मे वह दुर्विचारो का शिकार बन जाता है । वह अपने जीवन को कटुता और नीरसता मे डुबो देता है । उसका मर्म मर जाता है और उसे चारो ओर से निराशा की क्रूर परछाइयाँ घेर लेती है । वह पछता-पछता कर कहता है—

'वे दिन कितने उज्ज्वल थे जब मै अपनी गली मे मिट्टी के घरौंदे बनाता था वा नन्हे-नन्हे हमजोलियो के साथ खेलता था, दिन भर उत्साह और जिज्ञासा का नशा बना रहता था । वह अवसर कहाँ गया, वे खेल क्या हुए ? मेरा हरा-भरा उद्यान क्यो सूना और उजाड पड गया । मै तो अपने ही हाथो अपने जीवन-स्रोत को गदला करता रहा । अब मुझे बुढापा अज्ञात लोक की ओर लिये जा रहा है । मै निराश और निष्फल होकर जा रहा हूँ ।'

अपने काम-धधे से निपट कर कुछ समय भ्रमण एवं मनोरजन में व्यस्त रह कर हम अपनी मानसिक थकान से मुक्ति पा सकते है, फिर नये कार्य मे ह

अधिक जागरूकता एवं सावधानी दिखा सकते है। ऐसे खेल जो शारीरिक व्यायाम के गुण भी रखते है, अधिक उपयोगी होते है, शरीर के स्नायु पुष्ट हो जाते है, भोजन भली प्रकार पच जाता है और मस्तिष्क चतुर हो जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य एक शक्ति है जिसके द्वारा विशृंखलित मनोविकार भी परिष्कृत होने लगते है। ऐसे खेलो वाला व्यक्ति मीठी गहरी नीद सोता है और दुर्विचारो से बचा रहता है। उसकी स्मरण-शक्ति तीव्र हो जाती है। और कार्य-कुशलता बढ जाती है।

एक अग्रेज लेखक ने भारतीय खेलो की आलोचना करते हुए लिखा है—सब खेलो से उत्तम खेल कबड्डी है। इस खेल द्वारा फेफडे साफ और पुष्ट होते है, रक्तचाप सतुलन मे रहता है; स्नायु, बलवान और सुडौल बनते है। यह खेल सहकारिता, आत्मविश्वास, शूरवीरता और विजय के महत्वपूर्ण भाव विकसित करता है। प्रति वर्ष गाँव मे मेले लगते है। कबड्डी के खिलाडी आस-पास से आ कर इसमे भाग लेते है। वे पुरस्कार की इतनी परवाह नही करते जितनी अपनी ख्याति की। जब कोई खिलाडी जीत जाता है, उसका जलूस निकाला जाता है। उसे हार पहनाए जाते है, उसके मित्र नृत्य करते है और उसे अपने कधो पर उठाए खुशियाँ मनाते-मनाते अपने गाँव मे पहुँच जाते है। इस प्रकार विजेता खिलाडी अपने गाँव का नाम प्रसिद्ध कर देता है। दूसरा खेल 'चौगान' है। यह खेल हाकी की भाँति है, किन्तु इसके नियम अधिक सरल होते है। कठोर बाल के स्थान पर तागो की बनी गेंद होती है, हाकी के स्थान पर एक टेढी सी चौगान होती है। यह वृक्ष की पुष्ट शाखा को गर्म कर बनाई जाती है। एक वैद्य का वचन है कि जो व्यक्ति यह खेल खेला करता है उसे छाती के रोग—क्षय, खासी, दमा आदि, पेट के रोग—कब्ज, कोलंज, अजीर्ण आदि कदापि नही होते। चौगान के खिलाडी तेज़ दौडने वाले होते है।

तीसरा खेल 'लकड कोहना' है। यह वृक्षो पर खेला जाता है। वृक्ष पर चढने और उतरने, छलाग लगाने और जोखम मे दृढ रहने की फुरती इस खेल द्वारा आ जाती है। एक व्यक्ति अपनी पारी मे वृक्षारूढ व्यक्तियो मे से किसी एक को छूने का प्रयत्न करता है, वे ऊपर-नीचे दाएँ-बाएँ खिसकते रहते है। अवसर पाकर नीचे उतर जाते है और गतव्य स्थान पर हाथ लगा आते है, इस बीच कोई पकडा जाए तो उसे पिटना पडेगा।

काठ कठऊआ, आँख मिचौनी, घेर घमट आदि कई खेल बच्चो के लिए विशेष उपयोगी है। बडे व्यक्ति नेजाबाज़ी, घुडदौड़ और कुश्ती के खेल खेलते है।

आज के नवयूवको का स्वास्थ्य प्राय निर्बल है। इसलिए भावी सतानो के शौर्यहीन होने की सभावना है। बहुत से लडके बुरी-बुरी आदते अपना बैठते है, और फलाश, जुआ खेलने लग जाते हे। इन खेलो से न तो शारीरिक विकास होता है, न नैतिक, अपितु आर्थिक हानि और नैतिक तबाही के दृश्य उपस्थित हो जाते है।

कई नवयुवक खेलो से कतराते है। उनको यह वहम है कि खेलना केवल बच्चो का काम है। वे यह बात भूल जाते है कि स्वास्थ्य को चिरकाल तक बनाए रखना मनुष्य का कर्तव्य है। बिना व्यायाम अथवा खेल-कूद के स्वास्थ्य की रक्षा असभव है। जो माँ-बाप बच्चो को खेलने से रोकते है, वे एक तरह के अपराधी होते है। स्कूल का काम करने के पश्चात् खेलना बहुत आवश्यक है। वरन् उनका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता जाएगा और उनके फूल से मुखडे मुरझा जाएँगे। संभव है देर लगाने पर दवा दारू और वैद्य की सेवा सभी व्यर्थ सिद्ध हो। भावी आपत्तियो को पहले ही रोक लेना दूरदर्शिता की निशानी है।

कुछ नवयुवक पढाई के काम मे इतने व्यस्त रहते है कि वे किताबी कीडे बन जाते है। ऐसे नवयुवक न केवल दुर्बल होते हैं अपितु भौतिक विकास मे भी निराश्रित रह जाते है। उनको चाहिए कि बौद्धिक कार्य से निपट कर प्रतिदिन अवश्य खेला करे, वरन् वे अपना स्वास्थ्य बिगाड बैठेगे, फिर मोटी-मोटी ऐनकें लगाते हुए भी अपनी मजिल से भटक जाएँगे और उनका परिश्रम निष्फल होगा। बहुत से लडके इतना तो समझते है कि खेलना लाभप्रद है किन्तु वे बहुत ही आसान खेल खेलते है जिनसे न तो शारीरिक व्यायाम होता है और न सम्मिलित मनोरंजन। ब्रिज, स्वीप, चौपड आदि निकम्मे खेल समय और धन विनष्ट करते है।

विलासी और आलसी व्यक्ति न घर की सेवा कर सकते है न राष्ट्र की। वे तो समाज पर बोझ बने रहते है। उनको जानना चाहिए कि जीवन फूलों की शय्या नही, यह तो काँटो का ताज है; सेठ की गद्दी नही, रणक्षेत्र है।

नगर-निवासी प्राय: पीले-पीले, दुबले-पतले होते है किन्तु इन अवगुणो को वे नज़ाकत, फुरती और बाकपन का नाम देते है। कुछ नागरिक खेलो का शौक तो रखते है किन्तु उनके बहाने अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते है। वे क्लबे बनाते है, मैच खेलते हैं, जशन करते है, इनाम बाँटते है और खाते-पीते है। इन अमीर खेलो मे निम्न वर्ग के लोग भाग नहीं ले सकते, इसलिए यह व्यवस्था समाजवाद के विरुद्ध है।

जिस खेल मे आडम्बर, विलासिता एवं अपव्यय का समावेश हो वह हानिकर होता है, उसे त्याज्य ही समझना चाहिए। यदि शहरी लोग ग्राम्य खेलो को अपना लें तो वे स्वदेशी सस्कृति, स्वदेशी उद्योग और स्वदेशी परम्परा का उत्थान कर सकेगे। पिछले दो महायुद्धो के प्रसिद्ध युद्धवीर गाँवो के कर्मवीर व्यक्ति ही थे। हमारे ग्रामीण खेल सभी के लिए समान रूप से उपयोगी है।

# श्रम से मिट्टी उगले सोना

जब से रात और दिन बने है, जीवधारी के लिए दु:ख और सुख के चक्र भी चलते रहे है। सुख का अर्थ है भली प्रकार विकसित होना। हम फूल को खिला हुआ, विकसा हुआ देखते है। काँटे को प्रफुल्ल अथवा विकसित नही कहते। इसका कारण क्या है ?

कारण यह है कि फूल श्रम करता है और दान देता है, काटा विश्राम करता है और दु ख देता है। फूल मिट्टी मे से रूप, रंग और सुगन्धि के उपकरण बडी मेहनत से इकट्ठे करता है। उसका श्रम उसे इतनी महान शक्ति प्रदान करता है कि वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है। सुखी और सुन्दर जीवन का आधार श्रम ही है और श्रम का उज्ज्वल रूप निष्काम सेवा है।

आज भारत मे अनाज का अभाव है, अकाल का आतक है। क्या अब प्रत्येक भारतवासी के दो-दो, तीन-तीन पेट लग गए है ? क्या प्रत्येक भारतवासी का एक-एक हाथ रह गया है ? नही, ईश्वर ने हमे एक-एक पेट और दो-दो हाथ दिये है। ईश्वर सकेत करता है कि विश्राम से दुगुना श्रम करो। हमारे भारत को प्रकृति ने बहुत सुगम और सरल साधन प्रदान किए है, किन्तु हमारे हाथ श्रमहीन हो गये है। हमारा सुख नष्ट हो गया है, हम दान-दक्षिणा देने मे असमर्थ हो गये है।

अनुचित विश्राम ने हमे बेकारी और गुनाहगारी के नरक मे फेक दिया है। हमारा देश दूसरे देशो को अन्न तथा वस्त्र दिया करता था, आज वह दाने-दाने का मुहताज है—उलटी गगा बह गई इस देश मे।

निर्धन देश को श्रम का, तपोधन का अधिक गर्व होना चाहिए था, परन्तु हमे श्रम करते शर्म आती है। विश्राम की उपासना हमे श्मशान की ओर लिए जा रही है क्योकि विश्राम का रास्ता सघन निद्रा या मृत्यु-लोक की ओर ही जाता है—'विश्राम से जीवन बनता मिट्टी।' हम समझते रहे है कि विश्राम बहुत ऊँची वस्तु है, परन्तु विश्राम के माउट एवरेस्ट को भी श्रम का तेनसिंह जीत चुका है।

मैने अभी बताया कि सुख का अर्थ है भली प्रकार विकसित होना। एक सेठ ने विकास का अर्थ लगाया, मोटा होना। विश्राम के सेवन से सेठ जी सचमुच मोटे हो गए। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य बिगड गया। सौभाग्य से उनके नगर मे

विनोबा जी पधारे।

सेठ जी की तकलीफ सुनकर विनोबा जी ने कहा—"भाई, कुछ ग्रौर सैर किया करो ना।"

"जी हाँ, सैर तो दस पन्द्रह मील रोज करता हूँ, कार मे बैठकर।" "ग्ररे पैदल चला करो। यदि पैदल चलने से घबराते हो, तो कोई बगीचा लगाग्रो।" "ग्रजी बगीचा भी लगाया है, उसमे दो माली भी रखे हुए हैं।"

विनोबा जी ये सब युक्तियाँ सुनकर बोले—"सेठ जी ! ऐसा प्रतीत होता है कि ग्राप सर्पयोनि मे जाने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

सेठ जी ग्रपने मोटापे को सँभालते हुए, घबरा कर बोले—'सर्पयोनि ? वह कैसे ?'

"ग्ररे वही एक योनि है जहाँ हाथ पैर की ग्रावश्यकता नही होती।"

एक बार गुरुगोविन्द सिंह जी के सेवादार की ग्रनुपस्थिति मे एक राजकुमार पानी का कटोरा भर लाया। गुरुजी उसके हाथ की कोमलता को देखकर बोले—"राजकुमार ! प्रतीत होता है तुमने इन हाथो से कभी श्रम नही किया।" वह बोला—"गुरुवर ! काम करने को नौकर-चाकर बहुतेरे है।"

गुरु जी ने पानी का कटोरा लौटाते हुए कहा—"ग्रब यह कटोरा ग्रपवित्र हो गया है, क्योकि इसको थामने वाले हाथ श्रम-हीन ग्रौर ग्रपवित्र है।"

बैया पची ग्रपने श्रम से कितना सुन्दर घर बना लेता है। मधुमक्खी रस-कण सजोकर स्वादिष्ट मधु बना लेती है। उनके श्रम ने उनका जीवन ग्रानन्द-दायक बना दिया है। हम मनुष्यो को ईश्वर ने बहुत ही सुन्दर ग्रौर उपयोगी हाथ-पाँव दिए हैं। हम ग्रपनी नृत्यकला, मूर्तिकला ग्रौर चित्रकला के चमत्कार दिखा सकते है।

श्रमिक के हाथो ने ही ताजमहल ग्रौर भाखडा बाँध बनाया। हमारा भाखडा बाँध पजाबी ग्रौर सर्वोदय ग्रान्दोलन द्वारा बना है: ग्रामीण जनता ने सिंचाई, ग्रावागमन ग्रादि के साधन सुलभ कर दिए है।

श्रम द्वारा ही खानो मे से सोना चाँदी ग्रौर हीरे निकलते है। श्रम द्वारा समुद्र मे से मोती प्राप्त होते है। पावन श्रम द्वारा ही गाधी जी महात्मा बन सके। श्रम से न केवल मिट्टी सोना उगलती है, बल्कि मिट्टी का पुतला मानव देवता बन सकता है।

# देश पिता का जन्म-दिवस

मिट्टी भी सोना उगलती थी—सोने सा गेहूँ, सोने सी मक्की और सोने सा धान। सोने जैसे अनेक पदार्थ भारत भूमि उत्सुक हृदय के साथ प्रस्तुत करती थी श्रमिको और कृषको के लिए, किंतु उन निरीह लोगो की साधो पर पानी फेर कर सब कुछ ले जाता था अग्रेज सात समुद्र पार।

चाँदी जैसा कपास, लाखो मन कपास ब्रिटिश जहाज लाद कर ले जाते थे भारत के वस्त्र-उद्योग को समाप्त करने के लिए, बुनकरो को भूखो मारने के लिए। कालीकट, ढाका एव अन्य नगरो के शिल्पकारो को हाथ पसार कर भीख माँगने के लिए राज्यसत्ता विवश कर रही थी। शबनम की सी बारीक मलमल बुनने वाले हाथ काट दिए गए और उनके खून मे डूब गई भारत की स्वतंत्र कला।

गाँव उजड गए, नगर अग्रेज व्यापारियो के गोदाम बन गए। राजनीति के अत्याचार ने महलो को धराशायी कर दिया और झोपडियो को स्वार्थी तूफान ने उडा फेंका। जनता अनाथ बालको के समान रोटी, कपडे और मकान के अभाव मे बिलख रही थी, किंतु करुण क्रंदन करना वर्जित था।

राज-सत्ता का दमन चक्र चल रहा था किंतु हिंद महासागर की उत्ताल तरगें तट पर सिर पीट-पीट कर कहती थी—'इन्कलाब'। हिमालय पर बादल गरज कर कहते थे—'इन्कलाब'। पर इसके अर्थ कौन करता! अज्ञान, दरिद्रता एव दासता ने भारत को मानो सज्ञाहीन बना दिया था। निराशा की अंधेरी घुप रात मे तारे बादलो की ओट मे गुपचुप आँसू टपकाते प्रतीत होते थे।

भारत की दार्शनिकता एक कल्पना की वस्तु बन चुकी थी। उस सिक्के को जंग खा गया था। पिसे-पिसे मुद्राहीन सिक्के का मूल्य कुछ भी नही था। भारत की आत्मा अपमान और विषाद से अत्यंत पीडित थी।

ईश्वर की करुणा अनंत है। वह सूखे खेत हरे कर सकती, डूबते पत्थर तैरा सकती और बुझे दीप जला कर अमावस को पूर्णिमा बना सकती है। उसकी दया कोई न कोई अवसर अवश्य प्रदान करती है दास को स्वतत्र बनने का, दरिद्र को समर्थ बनने का और निर्बल को सबल बनने का।

भारत के संकट दूर करने के लिए, सत्य एवं अहिंसा की विजय दिखाने के लिए ईश्वर ने अपना एक देवदूत भेजा जो मोहन का रूप धारण करके भाद्रपद द्वादशी, १९२६ वि० के सुदामापुरी (पोरबदर) के गाधी परिवार में प्रकट हुआ।

वह मुहूर्त धन्य था जब इस महापुरुष का जन्म हुआ। बचपन मे उसे प्रतीत हो गया था कि राम नाम का मंत्र भयहारी है। बडे होकर उसने घर गार्हस्थ्य के कामों से ऊपर उठ कर जनता की सेवा को प्रभु-पूजा का साधन बना लिया। यह तथ्य उसकी साधना का उज्ज्वल परिणाम है। स्वदेशी लहर, अछूतोद्धार, गोसेवा, ग्राम-सुधार, खादी-उद्योग और सत्याग्रह के महत्त्वपूर्ण आदोलन उसके सरक्षण में प्रभावशाली बने। राजनीति मे सात्विकता की स्थापना करना उसकी निर्मल तपस्या का चमत्कार है।

यह धरती कई बार सूर्य की प्रदक्षिणा करेगी। इतिहास कई क्रातियो को अकित करेगा; किंतु देशपिता गाधी की रक्तहीन क्राति सदैव बेजोड रहेगी।

दिए से दिया जलता है। आज़ादी का जो चौमुखिया दिया महात्मा गाधी ने जलाया उसका प्रकाश दूर-दूर तक आशा का सदेश देता रहा है। एशिया की नव जागृति मे बापू गाधी की प्रेरणा प्रत्यक्ष दिखाई देती है। पश्चिम की भौतिकता भी आज गाधी का आदर्शवादी जीवन-सदेश ग्रहण करने के लिए उत्सुक है। परमाणु शक्ति के विकराल प्रभाव को गाधी-वाणी ही सयम का पाठ पढा सकती है और उसे सेवा मे अनुरक्त कर सकती है।

शाति, अहिंसा, एकता और सेवा के शीतल प्रकाश वाला एक चद्रमा था जिसे हम बापू गाधी कहते हैं। मानवता के इतिहास मे उसका जन्म-दिवस सदैव आशा और शाति का पर्व माना जाएगा। भारत को इस बात पर उचित गर्व है। गाधी का जन्म-दिन मनाना सर्वोदय की प्रतिज्ञा लेना है।

# बापू की छोटी-छोटी बातें

बापू का जन्म-दिन हमारे इतिहास का एक पवित्र दिवस है। बापू ने अपने जीवन-काल मे हम पर जितना प्यार बरसाया, उसकी याद दिलाने के लिए यह दिन आया करता है। उनकी सूझ-बूझ और तपस्या ने ही हम को स्वतन्त्रता प्रदान की।

बापू को बच्चो से अत्यन्त प्रेम था। सच पूछो तो उनका सारा काम भारत के भावी बच्चो के निमित्त ही था। अपने जीवन के कल्याणकारी प्रसंगो द्वारा वे हमारे लिए असख्य शिक्षाएँ छोड गए हैं। इनमे से दो-चार छोटी-छोटी बातो का उल्लेख यहाँ किया जाता है —

[ १ ]

जिन दिनो गाधी जी गोलमेज़ कान्फ्रेस के लिए विलायत जा रहे थे, एक बन्दरगाह मे एक गोरा टामी आया। उसने दो-तीन पन्नो की अपनी बनाई एक अग्रेजी कविता उनको भेट की। उसमे उन्हे गालियाँ दी गई थी। उन्होने उसे जल्दी मे पढा और कागजो पर लगा पिन तो उतार कर अपनी डिबिया मे रख लिया, कागज उस टामी को वापस दे दिए। उसने कहा—अजी! यह बडे काम की चीज़ है, इसे अपने पास ही रखिए।

गाधी जी ने मुस्करा कर उत्तर दिया—भई! जो काम की चीज़ थी वह मैंने अपनी डिबिया मे रख ली है!

[ २ ]

अंग्रेज़ महिला मीरा बहिन अभी उनके आश्रम मे नई-नई आई थीं। शाम को किसी बडे व्यक्ति के यहाँ उनका भोजन था। वापसी पर उनको पान का बीड़ा भी मिला, और उन्होने खा लिया। आश्रम मे आकर वह सोचने लगी—'बापू जी से पूछ लेना चाहिए था। जाने, पान खाना अनुचित हो।'

मीरा बहिन ने गाधी जी को पत्र लिखा। उत्तर में गाधी जी ने कहा—जिस वस्तु के उपयोग का ही पता न हो उसे खाना पाप ही है। उस दिन से मीरा बहिन बहुत सावधान हो गईं।

[ ३ ]

कुछ महीनो के पश्चात् मीरा बहिन से एक और भूल हो गई—

रात पड़ गई थी। बापू अभी चर्खा कात रहे थे। चर्खे की डोरी ढीली हो

गई थी। उन्होंने मीरा बहिन को इमली की कुछ पत्तियाँ लाने के लिए भेजा। वह झट से एक टहनी तोड लाई। इस पर बापू बोल उठे—'कितना अनर्थ है। उचित से अधिक का उपयोग करना पाप ही है। और ये पत्तियाँ, देखो! बेचारी आराम से सो रही थी। तुमने इन्हे मार डाला।'

इस प्रकार हमारे देश-पिता सभी छोटी-छोटी बातो का ध्यान रखते थे। सवेरे ही पीने का पानी अपनी बोतल मे भर लेते थे। उसकी एक बूँद भी व्यर्थ नहीं फेंकते थे।

बापू पत्रो के कोरे भाग काट कर अपने पास सँभाल रखते थे। मौन व्रत के दिन इन्ही कागजो पर लिख कर बातचीत करते थे। धनराशि के एक-एक पैसे और समय के एक-एक मिनट का हिसाब वे रखते थे।

ऐसी छोटी-छोटी बातो द्वारा उन्होंने हमे शिक्षा दी है कि बूद-बूद से सागर बनता है। समय और सम्पत्ति के सयम से आदर्श जीवन बनता है।

हम उस जगद्-गुरु गाधी के चरणो मे इन्ही शब्दो के छोटे-छोटे फूल श्रद्धाजलि रूप मे अर्पित करते है।

# छुट्टी

बेगवती नदी अपनी कुलकुल-भाषा मे जाने क्या कुछ कह जाती है। एकाग्र मन से ध्यान दे तो उसका सन्देश कुछ इस तरह का प्रतीत होता है—"जीवन नाम है सतत अग्रसर होने और प्रगति करने का। समुद्र के पानी ने अनन्त खारेपन से छुटकारा पाने के लिए भाफ का रूप धारण किया! वह चाहता था पछियो के समान मुक्त आकाश मे पवन के कन्धे पर आराम से उडता रहे, किन्तु उसे कही विश्राम न मिला। उसने उत्तम पर्वतो पर हिम-खण्ड बन जाने की चाह की। उसकी यह इच्छा तो पूरी हो गई किन्तु सफेद बर्फ का रूप धारण करके उसकी उमगे ठिठुर गईं। वह डरता था कही पत्थर के समान जड मात्र न बन जाए। सूर्य भगवान ने अपने उज्ज्वल हाथो के स्पर्श से उसे सात्वना दी, उसकी करुणा ने हिम-खण्ड को भी पिघला दिया। शीतल जल-विन्दु इकट्ठे होकर बाधाओ को पार करते है। वे चारो ओर परोपकार का संचार करके जीवन की तरङ्ग मे बढे जा रहे है। मरुस्थल मे रुक जाना भी मृत्यु है और नीले पत्थर के समान हिम-खण्ड बने रहना भी मृत्यु है।"

अरब के एक दार्शनिक ने लिखा है—अल्गाफिलु हयात मौत व लैस आदम, अर्थात् गाफल या आलसी व्यक्ति का जीवन मौत के समान होता है, उसे मनुष्य नही समझना चाहिए।

हमे जीते जी पूर्ण रूप से अवकाश प्राप्त नही हो सकता। दम लेकर नई शक्ति बटोरना अवकाश का सदुपयोग है। हमारा त्रिगुणात्मक अस्तित्व सदैव परिवर्तनशील है। हमारे श्वास का डोरा वर्तमान का उपासक है, भविष्य का नही। इस लिए भविष्य की कल्पना को भी साकार वर्तमान बनाने के लिए हमें इतना परिश्रम करना पडता है कि छुट्टी या छुटकारा पाना असम्भव है।

समय हम को काट सकता है, हम समय को काट नही सकते क्योकि समय भी एक प्रकार से अनादि है। समय कोई घास का तिनका नही, यह तो विद्युत-कण की भाँति है। विद्युत-कण को फाड डालना बहुत भयकर होता है। समय को काटने या उसे टाल देने का दु साहस करना भी भयंकर हो सकता है। समय का दुरुपयोग ही अधर्म और पाप है। समय का सदुपयोग ही ईश्वर की पूजा है। जो व्यक्ति इस मर्म को समझ जाता है वह काल को जीत सकता है।

प्यारे पाठकगण! ग्रीष्म-अवकाश होने वाला है। कुछ समय के लिए हमारा

कालेज बन्द रहेगा, परन्तु छुट्टी के विचार में मग्न होकर हमे अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति नही मिल सकती। यह अवकाश भी एक प्रकार की परीक्षा है। स्वाध्याय, स्वावलम्बन एवं स्वराज्य का अभ्यास करने का यह मूल्यवान अवसर है!

आत्म-निरीक्षण द्वारा अपनी त्रुटियो और अभावो को पूरा करके हम सच्चे ज्ञान की खोज कर सकते है! ज्ञान शक्ति भी है और आनन्द भी। हम चाहते है कि हमारे पाठक-गण इन छुट्टियो मे ज्ञान की शक्ति और आनन्द प्राप्त करने की तैयारी करे। शिव सङ्कल्पमस्तु!

# शिशिर

बसंत के रग जब वर्षा धो डालती है और धूप सुखा डालती है तब शिशिर का आगमन होता है।

भावुक कवि भी बाल स्वभाव वाले होते है, वे रंग और ध्वनि पर मोहित होते है, उनको फूलो का रग, कोयल की ध्वनि ही अच्छी लगती है। शायद वे सूक्ष्म शक्ति के दर्शन नही कर सकते, नही तो शिशिर पर कितने ही महाकाव्य लिखे जा सकते थे।

शिशिर तो वनस्पति को अतर्धान कर के अपनी शक्ति को गभीर, सघन और सूक्ष्म बनाने की शिक्षा देती है। रुड-मुड पेडो, पौधो की जडो मे कैसा सुदर नाटक खेला जाता है। कौन अनुमान लगाएगा कि बाह्याडम्बर की अपेक्षा निर्धनता ही उत्तम साधन है—इस भाव से वह नाटक खेला जाता है।

सूर्य की किरणे सब कुछ देखती है और मूक भाव से शिशिर को अशीर्वाद देती है—'शाबाश ! तुम्हारी साधना महान है। हे गुप्तदान की अधिष्ठात्रि देवि, तुम्हारी महिमा महान है। हम तो उन जडो मे उष्णता नही भर सकती, किंतु तुम उन्हे सजीव, सशक्त और सरस बनाती हो। तुम्हारी जय हो !'

शिशिर जब सभी वनस्पति जगत मे व्यवस्था स्थापित करके चलने लगती है, शीतल आशीर्वाद उसे चारो ओर सुनाई देता है। और वह पूरे संतोष के साथ प्रभात के अँधेरे मे वापस चली जाता है, उसके पद-चिह्नो के सुदर रंगो से सारा उद्यान रगीन हो जाती है, उसके श्वास की सुगधि बढती ही रहती है सीता के सतीत्व के समान। शिशिर तुम कितनी महान हो अपनी मौन साधना मे !

# हेमन्त

सूर्य और धरती का प्रेम चिर-नूतन है किन्तु सूर्य जितना धरती के समीप होता है उसका स्नेह उतना ही उष्णिमायुक्त होता है। जब भाग्य के चक्र से धरती सूर्य से बहुत दूर रह जाती है, बेचारी उदास-उदास, ठिठुरी सी, सिसकियाँ भरती रहती है। उसके चटियल शैल-शृगो और अधिपत्यकाओ के रुण्ड-मुण्ड वृक्षो को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो उसकी साधो पर तुषाराघात हो गया है। सचमुच पृथकता की भावना जीवन को प्रगतिहीन हिमखण्ड के समान बना देती है। आत्मीयता, सहानुभूति, सहृदयता और द्रवणशीलता मे से ही गर्म-जोशी अथवा अनुराग फूट पडता है।

कास के धवलोभूत फूल शाति-पताका के समान लहराते दिखाई देते है। शीतल पवन की हिलोर और चन्द्रमा की किरण भी शान्ति का सदेश देती है, किन्तु आज मानव समाज मे शान्ति का कही अस्तित्व नही। एशिया मे तो राजनीतिक उथल-पुथल के कारण शोत युद्ध का सा वातावरण बना हुआ है। निर्मम शीत युद्ध घमासान युद्ध से अधिक भयकर सिद्ध हो रहा है। स्वार्थ, लिप्सा और षड्यत्र की वृत्ति तीव्र होती जा रही है। श्रद्धा, उपकार और त्याग की भावना लुप्त हो रही है। जैसे लोहे के टुकडे गर्म होने पर ही जुड सकते है, वैसे ही दो दिलो मे प्रेम-भाव की उष्णिमा से ही सहयोग हो सकता है। हमारे वैर को देखकर हमे, कोई सहयोग प्रदान नही कर सकता। कीचड को कीचड़ से नही धो सकते, आग को आग से नही बुझा सकते। जिसका हृदय निर्मल जल के समान प्रसन्न और शात है, जिसने अपनी वासनाओ की तरगो का दमन कर लिया, वह सारे विश्व को वश मे कर सकता है, क्योकि—
'मन जीते जग जीत है।'

हिम-खण्ड, हिम-कण, सलिल, बुदबुदा और जल-तरग सब एक ही तत्त्व के अनेक रूप है। इसी प्रकार अनेक गुण-कर्म, रंग-रूप, ऋतु-पर्व सभी एक ही लीलामय विश्व-जीवन के चमत्कार मात्र हैं।

हेमन्त और शिशिर के उपरात वसत भी आएगा—If winter comes, can spring be far behind—Shelley. सुख मे दभ करना और दु ख मे व्याकुल होना अधीर मन के गुण-विशेष है। धरतो माता के समान धैर्य धारण करके सुख-दु.ख मे एक-रस रहना ही उच्च आदर्श है—

**सुख दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन !**

# बसंत

सर्दी से ठिठुरे और पतझड के कारण उदास वातावरण मे उत्सुक शोभा थक कर सो जाती है । जब ऋतुराज बसन्त का आगमन होता है, सारी प्रकृति प्रसन्नता और वैभव से परिपूर्ण हो जाती है । बसन्त का अभिनन्दन गीत गाने के लिए मानो कोयल और मधुप एक दूसरे से होड करते प्रतीत होते है । फूलों की सुगन्धि से वन-उपवन महक उठते है । रग-बिरगी तितलियाँ आनन्द मे नृत्य करती दिखाई देती है ।

बसन्त ऋतु वास्तव मे दृश्यमान जगत् को अपने सौन्दर्य और उल्लास से नव-यौवन प्रदान कर देती है । शस्य श्यामला धरती विषमता और अभाव से मुक्त होकर नई आशाओ से प्रफुल्ल हो उठती है कि सयम और सन्तुलन ही जीवन का बसन्त है ।

नवयुवक अपने यौवन के बसन्त को सयम और सन्तुलन द्वारा ही सदाबहार बना सकते है ।

प्राकृतिक बसन्त की समृद्धि कोई शाश्वत समृद्धि नही क्योकि इसके फूल खिलकर मुरझा जाते है । इसकी सुगन्धि उडकर क्षीण हो जाती है और काल-चक्र उसे शिथिल कर देता है ।

यह बसन्त-पचमी का उत्सव शास्त्रकारो की देन नही, यह तो रसीले कवियो एवं बाँके नवयुवको ने चलाया है । कोयलो और मधुपो ने उसे आमंत्रित किया है । कलियो और तितलियो ने उसका स्वागत किया है, और आम्र-मजरी की सुगन्धि ने इसका अभिनन्दन किया है ।

हम चाहते है कि हमारे देश मे काम और दाम का सन्तुलन भी स्थापित हो, गरीबी, अमीरी, ऊँचनीच, जाति-पाँति, वेशभूषा, लिपि और भाषा की पतझड जैसी उदास विषमता सदा के लिए मिट जाए । यहाँ सत्य, अहिसा और सयम से परिपुष्ट रामराज्य स्थापित हो जाए । तभी हम कह सकेगे कि हमने चिर-बसन्त देखा है ।

# होलिकोत्सव

होली के रंग भरे उत्सव मे ऐसा प्रतीत होता है हमारे देश मे कही भी किसी प्रकार का अभाव नही रहा, विषाद नही रहा। हँसते-हँसते जीने की कला सिखाने के लिए ही इस त्यौहार की प्रथा चलाई गई थी। अतः हमे जीवन के संघर्षों मे भी प्रसन्नचित्त रहना चाहिए।

अबीर-गुलाल हमारी सामाजिक समृद्धि का प्रतीक रहा है। वर्ण-भेद, जाति-भेद और वर्ग-भेद होली के सुरीले गीतो और रंगीन छीटो में लुप्त हो जाता है। यदि यही भावना वर्ष भर हमारे समाज मे बनी रहे तो हमारे देश का सर्वोदय-स्वप्न साकार सत्य का रूप धारण कर सकता है।

फाल्गुण की पूर्णिमा का चाँद आकाश मे हँसता हुआ दीखता है, धरती पर विद्रोह की पापात्मा राक्षसी को जलाया जाता है। प्रजा अभयदान प्राप्त करके आनन्द-विभोर हो उठती है। गेहूँ, चने, जौ आदि नवान्न की पूजा होलिका-दहन के प्रकाश में की जाती है।

# विदाई

सागर की उत्ताल तरगो मे बहते हुए लकडी के कुछ टुकडे आ मिलते है। इसी प्रकार इस भवसागर मे हम मित्र, शिष्य, गुरु, बहन, भाई आदि कई रूपों मे एक दूसरे से सम्बन्ध रखते है। मिलन तो थोडी देर का होता है और बिछोडा अनत—

**पात झरंता यों कहै, सुन तरवर बनराय।**
**अब के बिछुरे ना मिलै, दूर परैंगे जाय॥**

गगा बहती है, सैकडो यात्री पुण्य-स्नान करके चले जाते है। उसी तरह हमारा महाविद्यालय, विद्या-मन्दिर, सदा ही विद्यादान करता रहता है और विद्यादान को महादान माना जाता है, शुल्क दे कर इससे उऋण नही हो सकते। अतएव हमे स्वामी विरजानन्द के वे शब्द याद रखने चाहिए जो उन्होने अपने परम प्रिय शिष्य स्वामी दयानन्द जी को कहे थे—"बेटा! भारत मे अज्ञान फैल गया है। वेदो की सच्ची विद्या लुप्त हो गई है। यदि तुम इस अधकार मे अपनी साधना से कुछ प्रकाश दे सको तो मै समझूँगा यह दीक्षा सफल हुई!

आचार्य काका कालेलकर ने अपने एक लेख मे सच कहा है—"बुद्ध भगवान् की शिक्षा आज के लिए विशेष रीत्ति से अनुकूल है, विशेष रीति से पोषक है।"

अपने शिष्यो और भिक्षुओ को भगवान् बुद्ध ने अपना अन्तिम उपदेश दिया था—"अब तुम लोग अपने को ही अवलबन बनाओ। इस संसार-समुद्र मे द्वीप ही बन जाओ, धर्म को अपना द्वीप बनाओ! अपनी ही शरण जाओ और धर्म की शरण जाओ। जो पुरुष मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा, इन चार मृत्युप-स्थानो की भावना करता है वह अपने लिए द्वीप बना लेता है, यही धर्म-शरण है। तुम्हारा ब्रह्मचर्य चिरस्थायी रहे, और तुन्हे ऐसा अनुभव होता हो कि तुम्हारे उस ब्रह्मचर्य के द्वारा बहुत से लोगो को सुख मिले। मै अन्त मे कहूँगा कि तुम सावधानी के साथ जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो।"

तैत्तिरीय उपनिषद् मे गुरु ने अपने स्नातको को बहुत सुन्दर शब्दों मे विदाई-भाषण दिया है। इस प्रसंग के कुछ वाक्य है—अब हमे पठन पाठन से क्या काम—ऐसा नही सोचना चाहिए; अपितु, स्वाध्याय शील बनना चाहिए। अपने गुरुकुल की सहायता करते रहना, जब कभी अवसर मिले। मातृदेवो भव,

पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, इस भाव के होते हुए भी अपने गुरु मे कोई त्रुटि देखी हो तो उसका अनुकरण मत करना।"

हम विदा होने वाले छात्र गण के प्रति अपनी शुभ इच्छाएँ एव सत्कामनाएँ प्रकट करते है और ईश्वर से प्रार्थना करते है कि वे जीवन की प्रत्येक परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर सदैव भारत माता की सेवा करते रहे।

# रावण-वध के पश्चात्

राम का क्रोध भी परम सात्विक होकर रावण की नाभि के सधान मे प्रखर शर बन गया और रावण दोनो हाथों से अपनी अंतडियाँ समेटे गिर पडा।

चारो ओर जय जयकार की ध्वनि गूंज रही थी। रावण के सेनानी भी "राम राम" पुकार उठे थे। उनके शोक में द्रवणशीलता थी। लक्ष्मण ने राम को देखा, वे उदासीन भाव से निस्तब्ध खडे थे—"तात! क्या बात है, आप इस महान विजय के पश्चात् उलटा उदास-उदास, खोए-खोए प्रतीत होते है।"

"तुमने वह क्रंदन नही सुना जो रावण की तपोपूत विभूतियो ने उसके भौतिक शरीर के पतन पर किया। इस युग के महान विद्वान के मोहग्रस्त हृदय पर मुझे भी दु ख होता है। ऐसा व्यक्ति विरले ही मिलेगा जिसको पाप भावना से बचाने के लिए अनेक सस्कार घेरे रखते थे।'

"मैने तो रावण का बाह्य व्यवहार ही देखा। जाने आप उसके हृदय की गति मति को कैसे भाप गए।"

'अरे, तुमको भी एक दु ख रहा, सीता-हरण का, और मेरा मोह। तीर की वह नोक जो रावण की नाभि को छेद कर पार निकल गई, सचमुच उसने उसके पाप के भौतिक साधनो को समाप्त कर दिया। इसीलिए ज्ञान की आभा अब भी उसे घेरे हुए है। लक्ष्मण, उस आभा को अर्जित करो, उससे शिक्षा लेने जाओ।'

लक्ष्मण युद्ध का सारा प्रकोप भुला कर सौम्य रूप मे रावण के पाँव छूने गया और बड़े विनीत स्वर से शिक्षा की याचना करने लगा।

रावण ने कहा—"राम के बाण मे जो शक्ति काम कर रही थी वह सत्य और शील की शक्ति थी। ज्ञान के प्रकाश मे सत्य तो प्राप्त किया जा सकता है किन्तु शील के लिए तपस्या, उदारता और शालीनता की साधना आवश्यक है। राम के बाण ने मेरी भौतिकता का सारा आडम्बर तोड़ दिया, मेरे पापों का मार्ग ही नष्ट कर दिया। मै स्पष्ट देख रहा हूँ कि मेरी मोह-मुक्ति का साधन बन कर राम का बाण चला। न कोई किसी को मारता है न कोई मारने वाला है। जीवन के रगमच पर हम सभी कठपुतली जैसे नाचने वाले पुतले है। वह महा सूत्रधार जब तक, जिस रूप मे नचाता है, हम नाचते है, किन्तु मुझ जैसा देवत्व का पुजारी खल नायक बन सका, दंभ के सूत्र ने मुझे यह दिन दिखाया। लक्ष्मण, यह घटना भी युग-युग तक याद रहेगी। विधि की विडम्बना यह रूप भी धारण कर लेती है।"

× × × ×

दशहरा मनाया जा रहा था। रावण का पुतला जल चुका था। राम का अभिनय करने वाले जा चुके थे। रजनी की काली शीत चादर ने सारे दृश्य को छिपा दिया।

आधी रात को जब दूर के तारे सॉय-साँय करते घूम रहे थे, एक हवा का विवर्त सा उठा और राख को लपेटता हुआ ऊँचा होता गया, चाद ने आखें फाड-फाड कर देखा रावण खडा है और पूछ रहा है—'पृथ्वीपुत्र! चंद्रमा! तुम मर्त्य लोक के इतिहास के साक्षी हो। सच-सच बताना, आज के कपटी, नास्तिक और अश्लील मानव को क्या अधिकार है कि मेरा पुतला बना कर मुझे जलाता है। बहन के प्रतिशोध-वश मै सीता को उठा लाया था, किन्तु मैंने सीता से बलात्कार नही किया, मै सदैव अपनी पत्नी मदोदरी के साथ अशोक वाटिका मे जाता था। किन्तु आज का कामी, खल, लोलुप मानव क्या ;मेरी दृष्टि से भी नारी को देख सकता है? क्या मेरे ज्ञान का शताश भी आज किसी मानव के पास विद्यमान है? क्या सदाचार का स्तर न्यूनतम नही हो चुका? बोलो, हे चद्रमा, बोलो आसमान!'

और चाँद फीका पड गया, तारे डोल गए, ध्रुव नक्षत्र भी करवट बदल कर रह गया।

+ + + +

रात बीत गई, रावण का प्रश्न गूंजता रहा। उषा आई, सिमटी-सिमटी, सहमी-सहमी, अंशुमाली की छटा से आकाश जगमगाने लगा। शतरंगी धनुष, रामधनुष आकाश मे दिखाई दिया, किन्तु वह भी प्रश्न-चिह्न ही बना हुआ था, मानो राम कह रहे थे—

"इस मानव ने श्रद्धा-भक्ति द्वारा मुझे घटघटवासी बन जाने की प्रार्थना की—'राम हमारे पाप के रावण को भी नष्ट कर देना।' ऐसा कहने वाले चले गए। उनका वंशज आज का मानव तो मेरे बाण पर पहले ही अपने छल-कपट का गुरुभार रख देता है और मुझे विवश करता है कि मै पतित-पावन न बनू। जब वह अपने अत करण की सात्विक आवाज को दबोच रहा होता है तो कौन जानता है मेरी क्या दशा होती है। रावण मेरे बाण से एक बार ही मारा गया था किन्तु मुझे अनेक व्यक्तियो के अंत:स्थल में मरना पड़ता है। रावण मुझे नही मार सका किन्तु यह मानव, मेरा नाम-लेवा ही मुझे अपने पाप के विष से मार डालना चाहता है। हे सूर्य देव! फिर लोग 'राम की जय', 'सीतापति रामचंद्र की जय' क्यो बोलते है? कैसी विडम्बना है।"

# राम नवमी

वासन्तीय नवरात्र, चैत्र शुक्ल नवमी को श्रीरामचन्द्र जी का जन्म हुआ था। सत्य, शील और सौदर्य की पराकाष्ठा को छूने वाले अनेक भाव रामचरित मे अकित है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति हमारे साहित्यकार शताब्दियो से अपने पावन उद्गारो की श्रद्धाजलि अर्पित करते रहे है। इस प्रकार राम नवमी का त्यौहार हमारी सस्कृति का चिर-नूतन स्मारक बन चुका है, मानो श्रीराम-चरित के दर्पण मे मानव जाति का जीवनादर्श साकार हो गया है।

श्री रामचन्द्र की जन्मभूमि अयोध्या से लेकर रामेश्वर तक सैकडो कोस का अन्तर है किन्तु इस पुण्य पर्व की महिमा समस्त भारत मे एक जैसी उत्साह-जनक है। उत्तर और दक्षिण भारत मे चाहे हमारी बोली-ठोली; हमारी वेश-भूषा, हमारे खान-पान अथवा हमारे कला-कौशल मे कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य दिखाई देता है, किन्तु श्री रामचन्द्र का जन्म-दिवस तो एक प्रकार से हमारा राष्ट्रीय पर्व बन चुका है।

राम ने शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करके राक्षसी वृत्ति का दमन किया, ताडका, कबध, रावण आदि असुरो के आतक से जनता का त्राण किया और भौतिकता पर अध्यात्म की विजय स्थापित की।

सदाचार, सुव्यवस्था, सुशासन, शाति और कल्याण की पूर्णता के लिए आज भी हमारे पास 'रामराज्य' से अधिक सुन्दर शब्द कोई नही।

# परीक्षाएँ

मनुष्य की पहली परीक्षा यही है कि वह अपनी विवेक-बुद्धि का उपयोग सात्विक विकास के लिए करता है अथवा तामसिक विलास के लिए, तपोधन के कमाने के लिए साधना-व्रत अपनाता है अथवा भोग मे व्यस्त रहने का प्रयत्न करता है। परीक्षा मे ज़रा सी शिथिलता भयंकर विनाश का कारण हो सकती है, जैसे दूध मे काजी की एक बूंद विचित्र विस्फोट दिखाती है। अज़ाज़ील फरिश्ते को खुदा ने आदम के पुतले के आगे प्रणाम करने का आदेश दिया। वह अहंकार के वशीभूत होकर कहने लगा—'अजी, हम ज्योतिपुंज है, हम इस आदम के सामने क्यो सिर झुकाएँ। मिट्टी के सामने ज्योति को तुच्छ बना देना अन्याय है।'

खुदा ने आदम को सारे ससार की वस्तुओ के नाम सिखा दिए थे, फरिश्ते वे नाम नहीं जानते थे। परीक्षा होने पर ज्योतिपुंज फरिश्तो का गुरु अज़ाज़ील हार गया और उसे अपने घमंड के फलस्वरूप शैतान बनना पडा। कवि मिल्टन ने इस प्रसग को सत्य स्वरूप ईश्वर के प्रति विद्रोह माना है। शैतान ने आदम से बदला लेने के लिए उसे कठिन परीक्षा में डालना चाहा। वह चुपके से बागि-अदन (नन्दन कानन) मे पहुँच गया और हव्वा के द्वारा आदम को ज्ञान का वर्जित फल चखने की प्रेरणा देता रहा। संयम तोडने के अपराध मे आदम और हव्वा मर्त्य लोक मे भेज दिए गए। बाइबल मे इसीलिए लिखा है—'हे ईश्वर! हमको परीक्षा से बचाओ।' किन्तु ईसा ने स्वयं परीक्षा से बचने का कोई उपाय नही सोचा अपितु सूली पर चढकर अपनी तपस्या की परीक्षा मे सफलता प्राप्त की।

राजा हरिश्चन्द्र, शिवि, सावित्री और सीता के युग से लेकर दयानन्द, लिंकन और गाधी के युग तक ससार के सभी महापुरुष कठिन परीक्षाओ मे दृढ रह कर ही अमर हुए है। जैसे अग्नि मे सोना तप कर कुंदन बन जाता है, वैसे ही जीवन की परीक्षाओ में सफल होकर ही मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो सकता है। जो मननशील व्यक्ति परीक्षा से भागना चाहता है वह भले-बुरे के विवेक से आँखें मूंद लेना चाहता है। हमारे स्कूलो कालेजो की ये परीक्षाएँ—प्रश्न-पत्र, अक, प्रमाण-पत्र, बेकारी, बोझ और निराशा की एक अटूट शृखला है। सामंतशाही युग मे थोक माल का सौदा अधिक होता था। वही प्रथा इन परीक्षाओ मे भी दिखाई देती है।

केवल वर्ण-बोध नही, संस्कृति, कला और दार्शनिकता की क्रियात्मक शिक्षा देने के लिए हमारे गुरुकुल-केंद्रो मे शिक्षण का काम सेवाव्रती सन्यासियो के हाथ मे रहता था।

अंग्रेजी मशीन युग के अभिशाप ने भारत मे भी शिक्षा संस्थाओ को कलर्कों के कारखानो में बदल दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे राष्ट्रीय जीवन के लक्ष्य नए क्षितिज को छू चुके हैं। आत्मनिर्भरता लाने के लिए हमे शिल्प, कृषि, उद्योग, स्थापत्य, चिकित्सा आदि विषयो की शिक्षा अपेक्षित है, किन्तु खेद का विषय है कि हमारा मनोभाव अभी तक गत शताब्दी के वातावरण मे ही चक्कर काटता रहता है।

जीवन मे अनेक प्रकार की परीक्षाएँ हैं परन्तु हमारे विचार मे सब से बडी परीक्षा यही है कि हम किस प्रकार की परीक्षा के लिए अपने आप को तैयार करना चाहते है—हम ससार मे हुल्लड मचाना चाहते है, समय काटना चाहते है; अथवा सुख और शाति का प्रसार करना चाहते है, हम स्वार्थ-सिद्धि चाहते है अथवा राष्ट्र-निर्माण ?

# दिवाली

राम ज्योति स्वरूप है। उनकी ज्योति समस्त स्थानो मे रमण करती है। सूर्य डूब जाता है तो तारे टिमटिमाते है, दिये जगमगाते हैं और जुगनू चमकते है। राम की दिवाली सदैव मनाई जाती है।

अयोध्या तो जनता की प्रतीक मात्र है। दिये अनत शरीर है, और ज्योति, ब्रह्म-ज्योति। अमावस के घने अंधकार मे, तमस के अथाह अज्ञान मे ज्ञान की ज्योति कौन लाता है? असीम दु ख मे सुख के प्रकाश-स्तम्भ कौन खडे कर देता है?

ज्योति स्वरूप राम ही यह कार्य सम्पन्न करते हैं। यह उनका स्वभाव ही है। जाग्रति का लाभ यही है कि हम दृश्यमान साकार जगत् मे सर्वशक्तिमान राम के शील का आभास देख सके। स्वप्नावस्था का वरदान इसीलिए मिला हैं कि हम उस सगुण सौंदर्य को अपने अंत नेत्रो से भी देखते रहे।

सुषुप्ति की एकाग्रता उस अति सगुण एवं अति साकार ज्योति स्वरूप को प्रेम स्वरूप मे परिणत कर देती है। फिर संसार का अधकार भी कृष्ण की काली कामरिया सा दीखने लगता है। हम नही चाहते कि वह कामरिया श्वेत हो कर उजाले मे लुप्त हो जाए अपितु उसका ससीम कालापन हमारे असीम प्रेम को प्रियतम के विशाल हृदय से सम्बद्ध कर देता है, मानो यह कृष्णत्व की परम ज्योति का द्योतक हो। आकाश की अति शुभ्रता ही नीलिमा बन जाती है और नीलिमा का सघन रूप अधकार है। जीवन के सिक्के के दोनों पहलू शुक्ल-कृष्ण, दु ख-सुख मिल कर ही सिक्के के अस्तित्व को कायम रखते है। राम और कृष्ण भगवान विष्णु के दो रूप है जो भक्त हृदय को समान रूप से प्रिय है।

दिये से दिया जलता है। परमाणु से परमाणु विद्युतकण लेता है। दीवाली दान का, सहयोग का अथवा सर्वोदय का महान पर्व है। सारी सृष्टि ज्योति-स्नात प्रतीत होती है। जहाँ सात्विकता है वहाँ नित्य दीवाली है, वहाँ राम का साक्षात्कार है।

# साहिबज़ादों का बलिदान

वाचक—

सर्दी सख्त थी और मुगल हकूमत उससे भी अधिक सख्त थी। गुरु गोविंद सिंह ने वीरभूमि पजाब मे बरसो से अत्याचार के विरुद्ध जन-आदोलन चलाया हुआ था। सन् १७०४ का दिसम्बर मास बहुत विकट घटनाएँ ले कर आया था। आनन्दपुर से निकल कर गुरु-परिवार बलिदान-पथ पर अग्रसर होता चला गया। सरसा नदी ने पजाब की वीरता के कई कारनामे देखे और चमकौर युद्ध मे किशोर साहिबज़ादे अजीत सिह और जुझार सिह ने पराक्रम एवं शूरवीरता का नया आदर्श स्थापित करते हुए शहीदी प्राप्त की। उधर माता गुजरी के साथ दोनो छोटे साहिबज़ादे मोरिडा नगर के निकट खेडी नामक गाँव मे पहुँच चुके थे। मुगलो के गुप्तचर भी परछाइँ की तरह उनका पीछा कर रहे थे। बसी थाना के कोतवाल ने उन्हे माता गुजरी समेत पकड कर किले के एक ठडे बुर्ज मे कैद कर दिया।

जब तक सूर्य और चन्द्रमा दृश्यमान रहेगे, जब तक हिमालय और गगा का नाम रहेगा, तब तक इन साहिबज़ादो की कीर्ति पर मानवता श्रद्धा के फूल चढ़ाती रहेगी।

दूसरे दिन सूबेदार वज़ीर खान ने इन साहिबज़ादो को अपनी अदालत में पेश होने के लिए बुलावा भेजा। राह मे नौ वर्ष के बालक ज़ोरावर सिह ने खुसर-पुसर करते सिपाहियों को कहा—

**ज़ोरावर सिंह**—कोई बात नही, हथकडियाँ हमारे हाथो से बहुत बडी है तो क्या हुआ। अरे! हम भागना नही जानते। हमे जहा बुलाया गया है हम वहाँ पहुँच चुके है।

**फ़तिह सिंह**—वाहि गुरु को जो भाता है, वही होता है। हमें वज़ीर खान ने नहीं बुलाया—बुलाने वाला कोई और है।

**ज़ोरावर सिंह**—हाँ। वीर फतिह सिह! बुलाने वाला सचमुच कोई और है। सरसा युद्ध के जिन शूरवीरो को सचखंड से बुलावा आया था उन का दाह-संस्कार दशमेश पिता ने अपने हाथो किया था।

**फ़तिह सिंह**—छः बरस की इस छोटी उम्र मे मैने तो यही कुछ सीखा है

कि प्राण धर्मपथ के लिये होते है ।

**सिपाही**—. . ..... .. लो । अदालत मे पेश होना है । बा-अदब, बा-अदब, तैयार हो जाओ । (हँसी, भयकर हँसी........ )

**वज़ीर ख़ान**—( गभीर रहस्यमय आवाज़ मे ) हमारी अदालत का बडा दरवाजा बद कर दो । ( दरवाजा बद होने की आवाज ) छोटा दरवाज़ा खोल दो । उन्हे सिर झुका कर ही हमारी अदालत मे पेश होना पडेगा । (दरवाजा खुलने की आवाज़ )...........हँसी.... . ..... . वज़ीर खाँ के सामने सबको झुकना ही पडता है ।

[एक आवाज़ ..... . . .बा अदब, बा मुल्हाजा, होशियार... ...नन्हे बागी ज़ोरावर और फतिह अदालत मे पेश हों . . . ]

(हथकड़ियो की आवाज, पाँव धरने की आवाज़)

**वज़ीर ख़ान**—यह क्या । खो, पहले पैर, सिर अकड़ाए !

**दोनों**—वाहि गुरु जी का खालसा ! श्री वाहि गुरु जी की फतिह !!

**वज़ीर खान**—अच्छा ! ये है, बगावत के दो खारदार पौधे ।

**ज़ोरावर सिंह**—बगावत के दो ज्वालामुखी पर्वत, दो शेर बब्बर ।

**फतिह सिंह**—श्री कँवल-चरण का आसरा, श्री कँवल-चरण चित जोडिए ।।

बाँह जिन्हाँ की पकडिए, सिर दीजे बाह न छोडिए ।।

**वज़ीर खान**—तुम पर सल्तनति मुगलिया के खिलाफ बगावत फैलाने का इलज़ाम है, संगीन इलज़ाम ।

**ज़ोरावर सिंह**—जी हाँ, हम ज़ालिम ओरगजेब से बागी है, हम बेइन्साफी और हठधर्मी के खिलाफ हैं । बागी तो सारा पजाब है, करो कैद सारे पंजाब को ठडे बुर्ज मे ।

**वज़ीर खान**—जानते हो बगावत की सज़ा ? . मौत ! क्यो, काजी जी ?

**काज़ी**—लेकिन, लेकिन, इतनी छोटी उम्र के बच्चो को मौत की सज़ा देने का कानून शरअ मे नही है । खान साहिब ! आप इन्हे कोई और सजा दे दे ।

**वज़ीर खान**—अरे ! सज़ा नही, इनाम देगे । इनाम !! . .लडके बहुत सयाने मालूम होते हैं । इस्लाम कबूल कर ले तो इनका कसूर मुआफ समझा जाएगा । शाही इनाम मे जागीर भी मिलेगी ।.क्यो बेटा, मजूर है ना ?

**फ़तिह सिंह**—जब तक सूरज पश्चिम से नही निकलता, हिमालय गंगा की तरह नही बहता, तब तक हम इस्लाम कबूल नही कर सकते ।....हमे, बस हमे दशमेश पिता के पास पहुँचा दो, हम तुम्हे जागीर दिलवा देंगे ।

**वज़ीर खान**—तुम वापस जाना चाहते हो ना ? तो, यह बताओ, वापस जाकर क्या करोगे ?

**ज़ोरावर सिंह**—क्या करेंगे ? बस जग देखा करेंगे, पाप की सेना का नाश करेंगे। हम बागियो का यही धर्म है .

धन्य जियो तिह को जग में
मुख ते हरि, चित्त में जुद्ध विचारै।
देह अनित न नित रहे,
जस नाव चढे भव सागर तारै॥

**वज़ीर खान**—मेरा सवाल साफ है।

**दोनों**—हमारा जवाब साफ है।

**वज़ीर खान**—सोचो तो, तुम्हे अपने बागी बाप के तबाहकार रास्ते पर चलना है या हमारा हुक्म मान कर सलामत रहना है ?

**ज़ोरावर सिंह**—जिस को मुगल हुकूमत सलामती का नाम देती है उसे हम मौत से भी बदतर समझते है। खान साहिब, लडाई जब्र और सब्र की है। जब्र थोथा होता है, सब्र गभीर।

**वज़ीर खान**—तो, तो 'तुम हुकूमत की ताकत आज़माना चाहते हो। कहाँ चिडियाँ कहाँ बाज। अदालत का आखिरी फैसला है—इन दोनो को खडे-खडे दीवार मे चुन दिया जाए। बगावत की इन कोपलो को कल ही दीवार मे दबा दिया जाए। अदालत बरखास्त।

( दु ख भरी तान,... )

**वाचक**—

दिसम्बर महीने के अतिम सप्ताह की वह शाम बहुत दु'ख भरी थी जब सरहिंद के मुगल किले के अन्दर उन दोनो साहिबजादो को नई दीवार मे बेरहमी के साथ चुना जा रहा था—

( ईटो की आवाज तेजी से ठक ठक महमद—'और गारा' . रबाब की दर्द भरी तान.. . )

**ज़ोरावर सिंह**—वीर फतिह सिह ! तुम सचमुच फतिह पा गए। तुम धन्य हो। उम्र मे छोटे शहीदी मे बडे। ये कठोर ईटे, तुम्हारे कोमल कानो को छू रही है और मेरे तो अभी कंधो तक ही आ पाई है....

( गला रुन्ध जाता है )

**वज़ीर खान**—पछतावा नाम को नहीं। मानना पडता है—शेर का दिल,

हिमालय का सब्र.. बहादुरी की ऐसी दो मासूम तसवीरे दुनियाँ की तवारीख मे नही मिलेगी।

जोरावर सिंह—मरना सच है। सच्चे गुरु की राह मे प्राण देना ही अमर जीवन है—( रुक रुक कर ) सति श्री अकाल !

( तलवार चलने की आवाज....रबाब की दर्दनाक तान )

माता गुजरी का विलाप—

मेरी आँखो के सुंदर सितारे।
मेरे बेटे के बालक प्यारे॥
हाय ! निर्दोष ही मार डाले।
हाय ! कलियो से कोमल दुलारे॥

मेरी कौन सुने हाहाकारी।
क्या करूँ हाय ! विपता की मारी॥
हा ! बुढापे मे यह सोग भारी।
कैसे काटूँ अकेली बिचारी॥

बुझ गए चार दीपक हमारे।
मिट गए अधखिले फूल सारे॥
मेरी आँखो के सुन्दर सितारे।
हाय, निर्दोष ही मार डाले॥

वाचक—

भारत को इस बात का उचित गर्व है कि उसने ससार को केवल उच्च सिद्धान्त नही दिए बल्कि आदर्श जीवनियाँ भी दी है।

साहिबजादो ने अपने बेजोड़ बलिदान द्वारा सिद्ध कर दिया है कि शरीर क्षणभगुर है, आत्मा अमर है। धर्म का अनुराग उत्तम है, प्राणो का मोह तुच्छ है।

जब तक सूर्य और चन्द्रमा दृश्यमान रहेंगे, जब तक हिमालय और गगा का नाम रहेगा, तब तक इन साहिबज़ादो की कीर्ति पर मानवता श्रद्धा के फूल चढ़ाती रहेगी।....

"जय हो साहिबजादो की, जय हो !"

# अवकाश-सिद्धि

[ १ ]

तात्विक दृष्टि से निर्माण, विकास एव आनन्द-साधना का नाम ही जीवन है। निद्रा, आलस्य और विनाश ही मृत्यु है। कल्प-विकल्प से स्पन्दनशील मन को विश्राम कहाँ! ज्ञान, आनन्द और शान्ति के साधक चेतन के लिए पर्वतखड की-सी चिर-विराम वाली अवकाश-सिद्धि असम्भव है।

कहते है इस ससृति की रचना करने मे अल्लाह मियाँ को छ दिन लग गये थे। सातवे दिन उसने भी छुट्टी मनाई। यहूदी और ईसाई धर्मावलम्बी आज भी उस सातवे दिन की छुट्टी रविवार को मनाते है। किन्तु रविवार का अधिष्ठाता सूर्य आग की लपटो की जबानी पुकार उठता है—'मुझे तो कर्म-यज्ञ मे सदा ही तपना पडता है, फिर मेरे नाम की छुट्टी क्यो की जाती है ? इस रग रूप के दृश्यमान जगत मे क्षण-भर का विराम भी भयकर प्रलय मचा सकता है। क्या धरती कभी अपनी चिर-यात्रा मे रुकी है, कभी सुस्ताई है ? निर्माण के कार्य मे लगी अटल सत्ता के लिए आराम हराम है। उसके निष्क्रिय अवकाश का एक क्षण भी आतककारी बन सकता है।'

[ २ ]

"गर्मी की छुट्टियाँ हो गई है, अब न विद्यालय मे पहुँचने की चिन्ता है न किसी प्रकार की झाड-झपट का सशय। अब दिन अपने है, राते अपनी है। छुट्टी बडी मीठी वस्तु है, किन्तु यह अवकाश अल्प समय का है, तीन महीनो मे तो न शारीरिक उन्नति हो सकती है न मानसिक ! फिर, परीक्षाएँ ! उफ, संसार कितना क्रूर है। चिन्ताओ से मुक्ति का अवकाश भला कब मिलेगा ?"

"नौकरी से अवकाश ग्रहण किया तो घर के झझटो ने घेर लिया। लडकी का विवाह करना है, मकान बनवाना है और जमीन-सम्बन्धी मुकद्दमा लडना है—एक अनार और सौ बीमार ! हाय राम, यह अवकाश है या कारागार !!"

"हे काल-देवता ! तुम कहते हो मैं मृत्यु की शीतल थपकी से तुम्हारे दु ख-दर्द दूर कर दूँगा। क्या मोह का तपाक और बिछोडे का संताप उस महा-निद्रा मे शान्त हो सकता है ? क्या उस निद्रा मे सुन्दर स्वप्नो के चल-चित्र नही होते ? मेरे गर्म शरीर पर वह बर्फानी हाथ अगारे की भाँति जलन उत्पन्न करेगे, वह जलन, जिसकी पीडा सौ बिच्छुओ के डंक से भी तीव्र होती है। जीवन की डोरी

आशा-निराशा की असीम जप-माला है जिसमे अवकाश का सुमेरु नहीं होता। आवागमन का चक्र भी चलता रहता है अविराम गति से, फिर शीतल अवकाश-सिद्धि क्योकर हो सकती है?"

[ ३ ]

सिद्धार्थ ने रात्री के निगूढ अँधेरे मे चुपचाप अपने परिवार से अवकाश ग्रहण किया। वर्षो की तपस्या से उन्होने भगवान बुद्ध का रूप धारण किया और उस अवकाश-सिद्धि को महानिर्वाण बना दिया।

मूल शकर ने सन्देह और अज्ञान से बचने के लिए सत्य की खोज आरम्भ की थी। घर से निकल कर मथुरा पहुँचे। गुरु विरजानन्द के पास वेद का अध्ययन किया। फिर अवकाश प्राप्त किया। कैसा अवकाश?

हिमालय की चोटियो से लेकर हिद-महासागर के तट तक, गगा के तीर्थों से लेकर राजस्थान के मरुस्थलो तक उन्होने वेद का सच्चा प्रचार किया, जनता को इस अमृत-वाणी से तृप्त किया और उनके दु ख-दर्द, ईर्ष्या और वैर का विष स्वयं पी गए। दीपावली की जगमगाहट मे उन्होने अन्तिम श्वास मे कहा—
"प्रभो! तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

छुट्टी को छुटकारा एव अवकाश को विकास का अमर रूप दे देने मे ही साधक की सफलता निहित है। अवकाश की पवित्र सिद्धि ही सभी प्रकार की शिक्षा का ध्येय है।

# आकाश थम गया

बहुत ही पुराने युग मे आकाश धरती से बहुत निकट था, इतना निकट कि लोग अपनी छत पर चढ कर तारो को छू सकते थे।

टिम-टिम करते तारे बहुत सुन्दर लगते थे। कोई उन्हे तोडता न था। सभी के मन मे उनके प्रति पूजाभाव था। नीले, पीले, लाल, हरे, अनेक रगो के तारे रात भर चमकते रहते थे। आकाश बहुत निकट था।

एक बार एक गँवारिन ने गोबर के उपले थाप कर छत पर सुखाने के लिए रखे। झुटपुटे मे उसका पति अपने मित्रो के साथ घर वापस आया, शिकार खेल कर। उसने आते ही अपनी पत्नी को पुकारा। वह गोबर से सने हाथो के साथ उन सब के सामने कैसे आती। उसने जल्दी मे एक तारे से ही अपने हाथ पोछ डाले।

तारा रात भर टिमटिमाया नही। दुख के मारे रोता रहा, घुट-घुट कर। और उसने भगवान् से प्रार्थना की—"हम ज्योति-पिड है। मानव मिट्टी का पुतला है, वह हमारा इतना घोर अपमान करता है! हे भगवान्! न्याय कीजिये, हमे ऊँचा कर दीजिये, मानव की पहुँच से परे। आपके दर से कोई खाली नही जाता और आपके यहाँ किसी प्रकार का अभाव नही है।"

प्रात काल अरुण शिखी की आवाज से सारा आकाश गुजायमान हो गया। साएँ-साएँ करता आकाश ऊपर उठने लगा। तारे धरती से दूर होने लगे। वे दूर होते गये, होते गए। गोबर से लिप्त तारा भी ऊपर उठता गया। आकाश की धमक से उसका गोबर भी उतरता गया, उतरता गया।

लोगो मे कोलाहल मच गया। वे चाहते थे आकाश थम जाये। आकाश थमता न था।

बडे बूढो ने चकित नेत्रो से उठते हुए आकाश को देखा। उन्होने बहुत याचना की। आकाश न रुका। उनकी सफेद दाढो पर भी उसे तरस न आया, कुँवारी लडकियो ने नृत्य किया, देवताओ की आरती उतारी। किन्तु आकाश दूर ही जाता रहा। साएँ-साएँ की ध्वनि मे सारा सगीत डूब गया, बच्चे एकटक देख रहे थे। वे हाथ के इशारो से अपने प्रिय तारो को वापस बुलाते रहे। तारे वापस नही आए। अब भी आकाश से गोबर के कण गिर रहे थे।

जादू टोने वाले अनेक मन्त्र-तंत्र करते रहे। उनकी एक न चली। आकाश कोसों दूर चला गया। धरती सूनी-सूनी, फीकी-फीकी लगने लगी, मधम-मधम, मैली-मैली !!

झुटपुटे मे एक ग्वाला अपने रेवड को हाँकता हुआ बसती की ओर आ रहा था। एक पाठा-सा बैल बार-बार कुमार्ग पर पड जाता था। ग्वाले ने उसको डपट कर कहा—'रुक जा पट्ठे ! रुक जा ओऽ, थम जा ! थम जाऽ, नही तो तेरी खाल उधेड़ दूँगा, इसी लाठी से; ओ थम भी जा !!'

यह हाँक आकाश मे गूँजने लगी। 'थम-थम' की गूँज मे सभी तारे रुक गये। सचमुच आकाश थम गया! लोग प्रसन्न हो गए।

उस ग्वाले की आवाज़ मे जाने क्या जादू था, जाने क्या प्रभाव था, आज तक आकाश जहाँ का तहाँ थमा हुआ है। तारे चाहे दूर है किन्तु उसी तरह टिम-टिमाते है, प्रकाश बरसाते है। यह बरकत है उस सशक्त वाणी वाले ग्वाले की। ( कहते है गतिमान नाद ने ही बिंदु मे गति-यति उत्पन्न की थी। इस गूढ दर्शन की यह लोककथा सुन्दर परिचायिका है। )

एक पजाबी लोककथा

# अंधेरा ढोना

[ १९४८ ई० में मलवई उपभाषा-भाषी एक बुढिया से लेखक ने यह लोककथा सुनी थी जिसकी प्राचीनता तो स्पष्ट है किंतु प्रतीकात्मकता अस्पष्ट और भाव की शैली उपनिषद् व जातक कथाओं जैसी। हाँ, साकेतिक तत्व की कुंजी पुरातन विद्वानों के हाथ रह गई प्रतीत होती है। ]

बहुत पुराने समय की बात है, बहुत ही पुराने समय की, जब मनुष्यो मे अभी रात को सोने की प्रथा नही थी। वे दिन-रात काम ही करते रहते थे। चाँदनी रातो मे तो गुजारा हो जाता था किन्तु अँधेरी रातो मे सितारो के प्रकाश मे कठिनाई होती थी।

अमावस की रात तो बहुत दु खदायी थी। चलना, फिरना, हाथ पैर मारना कठिन था। हाथ को हाथ सुझाई न देता था। लोग प्रायः बातें करते, कहानियाँ कहते; पर बात का भी क्या मजा जब बोलने वाला दिखाई न दे। आवाज़ अँधेरे को चीर कर दूर-दूर तक पहुँच जाती थी।

शेर दहाडते, हाथी चिंघाडते, मेढक टर्राते, बिल्लियाँ ममियाती, चमगादड उडते, उल्लू बोलते—वे सभी काम करते थे, जाने कैसे चलते फिरते थे, जाने उनकी आँख मे कैसी ज्योति थी जो मनुष्य को नही मिली थी ?

कुछ पशु, विशेप कर घरेलू पशु सो जाते थे। मनुष्य सो नही सकता था, वह इस पशुत्व से अपार घृणा करता था, या उसमे सोने की शक्ति ही नही थी।

कई सदियाँ बीत गईं। अमावस की गहरी रातो मे सोच-सोच कर भी मनुष्य को अँधेरा मिटाने की कोई युक्ति नही मिली।

एक बार क्या हुआ, एक नवयुवक को युक्ति सूझी—हम सब को अँधेरा टोकरी मे भर-भर कर ढेर कर देना चाहिए, अपने आप समाप्त हो जाएगा। और सभी लोग—लडके, लडकियाँ, बच्चे, बूढे, सभी अँधेरा ढोने लगे। अपार अँधेरे मे टोकरियाँ भर-भर कर अँधेरा ढेर करने लगे। रात-रात बहुत बडा ढेर बन जाता था। सूर्य निकलने पर वह ढेर लुप्त हो जाता था। लोग मन लगा कर यह काम करते थे। वह अभ्यस्त हो गए थे, न किसी की टोकरी टकराती, न कसी को धक्का लगता, शब्द ही उनको उजाले का काम देता था, मानो शब्द

मे अग्नि थी, प्रकाश था।

अँधेरा ढोने की यह प्रथा बहुत बडे युग तक चलती रही। फिर क्या हुआ? एक युवक का विवाह किसी अप्सरा से हुआ, जाने वह देवबाला थी! किन्नरी थी या कौन थी! थी वह बहुत सुन्दर और चतुर।

विवाह के बाद उसने लोगो को अँधेरा ढोते देखा, उसे भी इस काम के लिए कहा गया। वह कहने लगी—मुझ से तो यह काम न हो सकेगा?

उसकी वाणी में लज्जा, मुस्कान, व्यंग्य सब कुछ एक बार ही प्रतीत होता था।

सास ने कहा—देखो बहू! एक आध टोकरी तो ढो ही आओ, ताकि कोई यह न कहे कि कैसी घमण्डी बहू आई है! और ऐसा न करना पशुपन ही तो है!

बहू ने सास की बात मान ली। टोकरी उठाई, सकुचाते हुए चलने लगी। उसके पाँव की आहट मे भी विशेषता थी। टोकरी भर अँधेरा ढोकर वापस आई तो जाने उसे कोई काम याद आ गया।

उसने किसी पदार्थ की सफेद-सफेद बत्ती बनाई, जाने आक की झऊ जटाएँ थी, एक कटोरी मे घी रखा, बत्ती रखी। लकडी के दो टुकडो को रगड़ती रही, रगडती रही, कुछ बोलती रही, मन्त्र-से बोलती रही।

यह लो! अग्नि प्रज्वलित हुई, बाती जलने लगी, प्रकाश फैल गया। लोगो ने देखा यह चमत्कार, वे टोकरियाँ फेंक कर नाचने लगे—बूढे, बच्चे, लडके, लडकियाँ नाचने लगे। वे उस बहू को देवी मान कर पूजने लगे। अँधेरा ढोने की प्रथा समाप्त हो गई। अब वे अपनी-अपनी रुचि के काम कर सकते थे। बडा उत्साह था, बडी आज़ादी। शेर, चीते, उल्लू सब दिये के प्रकाश से डरते थे। दिये से दिये जलाते-जलाते वे लोग सभी जगहें प्रकाशित कर लेते थे। ऐसा था वह युग।

# हीर-रांझा

पश्चिमी पजाब मे तख्त हजारा एक रमणीक स्थान है, जहाँ आज से कोई ५०० वर्ष पहले जाट वश का मौजू चौधरी रहा करता था। उसके आठ पुत्र और दो पुत्रियाँ थी। धन-धान्य से सम्पन्न इस परिवार को छोड कर जब मौजू कब्र की साकरी एव अधेरी दुनिया मे चला गया, उसकी कनिष्ठ सतान राझा बुझा-बुझा सा रहने लगा। भाइयो ने बटवारे मे बजर जमीन उसके नाम कर दी। कठिन परिश्रम करने पर भी उसे कोई सफलता न दीखी। भौजाइयो ने भी उसे अनेक व्यग्यबाणो से पोडित कर दिया। तंग आकर वह घर से निकल चला। एक क्रूर भौजाई ने कहा—"देखूंगी कब तुम राजा रसालू की भाँति सियाल परिवार की 'हीर' ब्याह लाओगे?"

राझा सचमुच झग-सियाल की ओर चल पडा। रात को वह एक मस्जिद में जा उतरा। मुल्ला ने देखा एक बाका लडका है, न नमाज, न तस्बीह, न शरई वेशभूषा—धर्मांध मुल्ला ने राझा को बहुत बुरा-भला कहा। राझा सवेरे-सवेरे वहाँ से चल कर चनाब (चन्द्रभागा) के तट पर पहुँचा। लुड्डण मल्लाह तरस खा कर उसे पार ले गया। सगीत-प्रिय राझा ने बासुरी बजाई। कई स्त्रियाँ मोहित हो कर उसके पास आ बैठी। वे उसके सौम्य गुणो के कारण उसे जल-देवता खिजर का बालक समझने लगी। उन्होने बडे सम्मान के साथ राझा को हीर की विशेष बेडी मे सुसज्जित खाट पर बिठा दिया। वह बडे आराम से रात को वही सो गया।

सुन्दर, सुशील और सौम्य राझा के आगमन का समाचार रातो-रात सारे गाँव में फैल गया। राजपूत कुल का सरदार चूचक यद्यपि मुसलमान था किन्तु वह अपनी बेटो को हिन्दू युवतियो की भाँति स्वतत्र रखता। हीर अपनी साठ सहेलियो को साथ लेकर नदी तट पर आई। अपनी विशेष बेडी मे अज्ञात व्यक्ति को विश्राम करने की आज्ञा देने पर लुड्डण की मुश्के उसने कसवा दी और एक छडी उठा कर सुकुमार राझा को पीटने लगी मानो कोई अप्सरा मर्त्यलोक के मानव पर क्रुद्ध हो रही हो।

राझा ने आँख खोली। इस विचित्र भेट पर मुस्काने लगा। हीर उसका हाव-भाव देख कर ठगी सी रह गई। राझा ने उचटती नजर से हीर का चित्र अपने

मन-दर्पण मे अंकित किया—

लक्क चीन कश्मीर तस्वीर जट्टी,
कद सरू बहिश्त गुल्जार विचों।
. गर्दन कूज दी उंगलियाँ रवांह् फलियाँ,
हथ कूलडे बर्ग चनार विचो।
.. शाह्-परी दी भैण पज फूल राणी,
गुज्झी रहे न हीर हजार विचो।
इश्क बोलदा नढी दे थाउ थाईं,
राग निकले जील दी तार विचों।

ऐसी सौंदर्य-प्रतिमा के समीप भी राझा अत्यत सयम मे रहा। उसने हीर को भी चेतावनी दी—'इश्क जालणा खरा दुहेलड़ा ई' अर्थात् प्रेम निबाहना बहुत कठिन होता है।

प्रेम-पगी हीर अपने पिता चूचक को कह कर राझा को गाय-भैंस चराने के लिए नौकर रखा देती है। राझा चिलचिलाती धूप मे भी काम करता है। थक जाता है, किन्तु हीर का स्नेह उसे मदमाता बनाए रहता है।

एक दिन राझा को पाँच पीर मिले और उस की तपस्या पर रीझ कर उसे सदैव सहायता देने का वचन दे गए। हीर अपने प्रियतम राझा के लिए उत्तम भोजन घर से चोरी-छिपे लाने लगी। कई वर्ष बीत गए। एक दिन हीर का चाचा कैदो इस विशेष कृपादृष्टि का सबूत 'मीठी चूरी' हाथो मे भर कर ले गया। हीर को पता चला तो रास्ते मे ही चाचा से उलझ पडी। वह कमबख्त गिरी-पडी 'चूरी' ही घर ले गया। माता मलकी, भाई सुलतान, पिता चूचक और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने हीर को इश्कबाजी से रोकने के लिए कई सुझाव सोचे।

राझा को नौकरी से हटा दिया गया। भैसे अब वन मे चरने न जाती, सब काम चौपट होने लगा। उसे फिर काम पर लगाया गया। हीर ने राझा को सकटग्रस्त देख कर इकट्ठे भाग चलने की बात कही। राझा ऐसे व्यवहार को दूषित समझता था। उधर घरवालो ने हीर पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए थे। वह राझा को आसानी से मिल न सकती थी। मिट्ठी नाम की नायन के घर उनकी भेट होने लगी। कैदो ने इस बात का भी सुराग लगा लिया। हीर की सहेलियो ने कैदो को बहुत पीटा। उस ने फिर उन दोनो को प्रेमालाप करते हुए पकडवाने का प्रयत्न किया किन्तु पिता के घोडे की टाप सुन कर हीर घर भाग आई।

राझा की भौजाइयाँ पश्चात्ताप के मारे राझा को वापस आने के लिए अनु-

रोघपूर्वक पत्र भेज रही थी । इधर हीर के भाई-बन्धु खेडे अज्जू के पुत्र सैदा के साथ हीर की सगाई कर देना ठान चुके थे । विवाह निकट आ गया ।

राभा के मन की वेदना असीम थी ।

हीर ने निकाह के समय काज़ी को स्पष्ट बता दिया कि वह मन ही मन मे राभा को पति रूप मे वर चुकी थी, किन्तु हीर की एक न सुनी गई । नववधू हीर रगपुर पहुँची । राभा भी सेवक के रूप मे वहाँ गया । हीर ने राभा को अपने प्रेम मे परिशुद्ध रहने का वचन दिया और उसे जोगी बन कर रंगपुर से ले जाने के लिए कहा ।

'टिल्ले' के बाला नाथ से राभा ने कान फडवा कर दीक्षा ली और रंगपुर के कुएँ पर पहुँचा । हीर की सहेलियाँ उसकी सहायता करने लगी ।

हीर की ननन्द 'सहती' जोगी राभा के साथ बहुत झगडा करती है । हीर राभा के सकेतो को समझ लेती है । एक बाँदी उसे भिक्षा मे चीना देती है । राभा जोगी निरादरपूर्वक चीना बखेर देता है ताकि अधिक समय मिल जाए । परन्तु सहती और उसकी बाँदियो ने उसे बहुत पीटा । वह दुख-दर्द में डूबा उसी कुएँ पर वापस आ गया । गभीर भावों मे डूब कर उसकी समाधि लग गई । सहेलियो ने उसका खप्पर, सिंगी आदि सभी जोग-चिह्न तोड दिए, किन्तु एक लडकी ने राभा को सहायता का वचन दिया । उसी के द्वारा सहती भी राभा मे श्रद्धा रखने लगी । वह वास्तव मे अपने प्रियतम मुराद बलोच के पास पहुँचना चाहती थी । जोगी ने उसके ढके हुए प्रसाद की सामग्री बता दी और उसे अपने प्रियतम से मिलने के लिए आशीर्वाद दिया ।

हीर ने कीकर का बड़ा सा काँटा अपने पाँव मे चुभो कर साँप के डसने का बहाना किया । इसका इलाज जोगी अथवा सँपेरा ही कर सकता है । सैदा स्वय जोगी को बुलाने गया । उसने जोगी को सारा वृत्तात कह सुनाया कि यद्यपि हीर ने उसे आत्मसमर्पण नही किया किन्तु वह उसे साँप के विष से बचाना कर्तव्य समझता है ।

थोडी दूर पर डोमो के एक घर मे हीर के शरीर से विष उतारने के लिए जोगी राभा जादू-टोना करने लगा । आधी रात को दोनो भाग निकले । सहती भी उनके साथ चली गई और अपने प्रियतम मुराद बलोच को जा मिली ।

खेडे उनका पीछा करते-करते मरुस्थल तक चले गए । मुराद के लोगो ने उन्हें बुरी तरह खदेड़ दिया । अब वे राभा के पीछे पड गए । रांभा उस समय सोया पड़ा था । शीघ्र ही पकडा गया । मारपीट से अधमुआ हो गया । हीर को खेड़े वापस ले चले । राभा चीखता-चिल्लाता न्यायशील राजा के पास पहुँचा ।

उस राजा ने हीर को रास्ते से ही वापस मंगवा लिया। एक काजी को इस्लामी शरअ के अनुसार न्याय करने के लिए नियुक्त किया गया। वह घूस खा गया और उसने सैदा खेडा को हीर का पति माना और उसे रगपुर जाने का आदेश दिया।

हीर और राझा की मूक वेदना शाप का रूप धारण कर गई और सारा नगर धू-धू जलने लगा। राजा ने हीर को फिर वापस मँगवाया। खेडो के चंगुल से हीर मुक्त कराई गई और राझा को सौंप दी गई।

राझा हीर को लेकर तख्त हजारे की ओर चल पड़ा। राह मे वही वन था जहाँ उन्होने प्रेम का प्रभात देखा था। मल्लाहो ने शीघ्र ही सियालो को सूचित कर दिया। उन्होने आकर राझा को चिकनी-चुपडी बातें करके समझाया कि विधिपूर्वक बारात लाकर हीर को ब्याह ले जाओ अन्यथा दोनो का असह्य अपमान होगा। राझा अपने भाइयो को लाने के लिए चला गया।

पीछे हीर के मायके वालो ने हीर को विष दे कर मार डाला और सवेरे राझा को पत्र भेज दिया कि विधि की विडम्बना ने कुछ का कुछ कर दिया।

राझा ने पत्र पढा और आहें भरता हुआ निष्प्राण हो गया। [ **हीर वारिस के आधार पर** ]।

मिस डी-मेलो ( Miss D'Mello ) ने अरबी की एक पाण्डुलिपि के आधार पर लिखा है कि हीर-राझा कोट कबूले के न्यायशील राजा को मिल कर पश्चिम की ओर जाते-जाते मक्का पहुँचे। दामोदर ( १४८२—१५६२ ई० ) ने भी अज्ञात स्थान को जाने का संकेत किया है। मुकबिल के बाद सभी कवियो ने हीर-राझा की करुण मृत्यु का वर्णन किया है। वारिस ने अपने काव्य के अंत में जायसी की भाँति रहस्यात्मक संकेत दिए हैं। इस प्रकार ५०० वर्ष पहले की ऐतिहासिक घटना आज रहस्यमयी कल्पित कहानी बन चुकी है। सच पूछो तो इस प्रीत-कहानी के द्वारा पजाब की संस्कृति पूर्णरूपेण मुखरित हुई है।

# चिऊंटी के पर

सावन मास था। अभी-अभी सूर्य की किरणे बादलो को चीरती हुई धरती पर पडने लगी थी। वे पक्षी जो अपने घोसलो मे छिपे पडे थे अब बाहर निकल आए थे और दाना-दुनका चुनने मे प्रयत्नशील हो गए थे। एक झोंपडी के पास कुछ मकई के दाने बिखरे पडे थे। वर्षा ने इनकी धूल मिट्टी धो डाली थी और वे अब निखरे-निखरे ऐसे प्रतीत होते थे मानो किसी राजकुमारी के हार के मोती यहाँ गिर गए हो। एक चिऊटी भूख से व्याकुल इधर-उधर दौडती फिरती थी। सहसा उसने एक लाल चमकता हुआ मकई का दाना देखा। आगे बढी और उसे दबोचने लगी। छोटा मुँह और बडा दाना। उठाए तो कैसे! परन्तु इस छोटे से जीव मे भी आशा का सचार था। और सच पूछो तो आशा ही जीवन है।

चिऊटी ने उस दाने को इधर से धकेला, उधर से उखाडा, ऊपर से खीचा नीचे से खिसकाया।

ज्यो-त्यो करके उसे अपनी जगह से हिला लिया। उसका घर बहुत दूर था। उसके साथी भी बहुत दूर थे। तीन चार चिऊटियाँ कही से आ जाती तो उसका हाथ बटाती। उस अकेली का सारा प्रयत्न निष्फल हुआ जाता था। पर वह मन हार कर बैठ नही गई। अपना सारा जोर लगा कर उसे खीचती रही।

इतने मे एक चिडिया वहाँ आ धमकी और आते ही अपनी चोच से ठूँगा मारा। चिऊटी साथ चिपटी हुई थी पर झटका लगते ही गिर गई। चिडिया मुँह मे दाना लिए फुर से उड गई। चिऊटी वही चक्कर लगाती हुई उदासीनता से फिर रही थी। अपने भाग्य पर उसे रह-रह कर दु ख हो रहा था—यदि ईश्वर मुझे भी पख देता तो मै अपना दाना उस चिडिया की भाँति ले कर उड जाती। आकाश मे उडना भी कैसे आन्नदमय होता। ईश्वर ने मुझे न जाने क्यो ऐसा निर्बल बनाया।

ऐसे ही अपने काल्पनिक आकाश मे उडती धीरे-धीरे कुछ अन्न के कण सँभाले अपने घर पहुँची। क्या देखती है कि उसके भाई-बहन छोटे-छोटे पख समेटे बाहर आ रहे है। वह चकित रह गई कि ईश्वर कितनी जल्दी असम्भव को सम्भव बना सकता है। मेरी प्रार्थना से उसने सभी को पख दे दिए। वह कैसा दयालु और अन्तर्यामी है, उसकी महिमा परम अपार है।

अपरंपार महिमा
अपरंपार उस की।

इसी संगीतमयी भावना मे वह मग्न हो गई और अपनी सुध-बुध भुला बैठी। वह सचमुच अपरपार की अदृष्ट सीमा तक जा पहुँची थी। जैसे तेज़ भट्ठी में लोहे का टुकडा तप कर अग्निमय हो जाता है पर ठण्डा पडने पर फिर लोहे का लोहा रह जाता है, उसी प्रकार वह चिऊटी फिर इस मर्त्यलोक मे आ गई। उसके भी पख लगे थे—छोटे-छोटे, सफेद, चमकीले, उज्ज्वल। घर से निकलते ही उस चिऊटी ने पंख पसारे, अबाध गति से उडने लग गई और उस समय न जाने उसके मन मे कैसी कामनाएँ तरगित हो रही थी। वह अब पक्षी थी। और पक्षियो की भाँति उड सकती थी। वह इन्द्रधनुष की रश्मियो में मानो डोल रही थी। कुछ देर के बाद वह थक कर गिर पडी। ठंडी-ठंडी धरती पर वह धीरे-धीरे कुछ खाने को ढूँढने लगी। वह अपने लम्बे-लम्बे पखो को सँभाले सुगमता से दौड नही सकती थी। भूख ने उसे व्याकुल कर दिया था। ज्यो-त्यो करके वह एक दाने के कण तक पहुँची और उसे उठा कर उडने लगी—घर ले जा कर आराम से खाऊँगी। उसने पख पसारे उसी अबाध गति से एक उडान लगाई। उसके दोनो पर कट गए और सूर्य्य की किरणो मे वे इन्द्रधनुष की भाँति रग दिखाते न जाने कहाँ जा पडे।

और चिऊटी धरती पर गिरी—मृतक, निराश, भूखी और असफल।

धरती ने अपना कण भी उससे छीन लिया। बादल की कडक दूर से कह रही थी—दोनो नही पा सकते, अकाश का आनन्द और धरती का सुख।

# शोध-पत्र

# पंजाब का चिरंतन आदर्श

ऋग्वेद के काल मे पजाब कितना चरित्रवान्, सबल और तापस था यह अनुमान पजाब को धरती पर रची गई ऋचाओ से सहज ही लगाया जा सकता है।[1]

उपनिषद् काल मे भी याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि और केकय राजा जैसे विद्वान् इस पुण्य भूमि के आदर्श जीवन के परिचायक थे। केकय जनपद के जो राजा महाभारत काल मे विद्यमान थे उन्होने भी बडे गर्व से कहा है—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यप.
नानाहिताग्नि नायज्वा नामा कान्तारमाविश ॥

( महाभारत, शाति पर्व, अध्याय ७७ )

अर्थ—मेरे जनपद ( पजाब ) मे न कोई चोर है, न कजूस और न कोई शराब पीने वाला। इस भूमि मे नित्य कर्म ( अग्निहोत्र ), सामाजिक योजना ( दान आदि यज्ञ ) भी कोई त्यागने वाला नही है।

सिकदर के युग मे भी पजाब चरित्र मे काफी ऊँचा था। राजा पुरु (पोरस) एव चद्रगुप्त मौर्य के युग मे यहाँ की सस्कृति उदार, विशाल, एव समृद्ध थी। कुरु, पचाल, शल्व और मद्र जनपदो के अतिरिक्त हरियाना का जनपद 'योधेय' बहुत शक्तिशाली था। पहाडी इलाके के जनपद कुणिद और त्रिगर्त बहुत कलाप्रिय थे।

उन जनपदो के गाँवो में कृषक, मज़दूर एव शूद्र जातियाँ रहा करती थी—

तथा शूद्र जन प्रायासु समृद्ध कृषिकला।
क्षेत्रैये योग भूमध्ये वसंति ग्रामसज्ञिका ॥

—मार्कण्डेय पुराण।

---

[1]भीष्म पितामह ने कहा है—

न तत्र राजा राजेंद्र न दण्डो न च दण्डिक
स्वधर्मेणैव प्रजा सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥३६

—महाभारत, भीष्मपव, अध्याय ११

उस समय न वहाँ कोई राजा था, न दण्ड, न दण्ड देने वाला। सारे लोग सच्चे धर्म द्वारा एक दूसरे की रक्षा करते थे। शासक प्रजा को रंजित करता था, इसलिए राजा कहलाता था।

चीनी यात्री फाहियान ने भारत-भ्रमण के दिनो ( ४००—४११ई० ) पजाब को भी देखा। कृषको के सबंध मे उसने लिखा है कि वे केवल उसी खेत का कर देते है जो सरकारी होता है। राजा न मृत्युदण्ड देता है न कोई और शारीरिक कष्ट।

७वी शती मे बाण भट्ट ने अपने 'हर्षचरित' मे पजाबी सभ्यता एवं विद्याप्रेम की बहुत प्रशसा की है। लोगो के उद्योग, कौशल, कला एवं वैभव से वह अत्यत प्रभावित हुआ। उन्ही दिनो ह्यून्तसाङ बलख बुखारा एव बामियाँ के रास्ते भारत मे आया था। कधार से उतर कर पुष्पपुर ( पेशावर ) पहुँचा। यहाँ अनेक मत-मतातर के लोग रहते थे, किन्तु उनमे कोई वैरभाव न था। नगर सम्बावस्तु मे १४ मदिर थे, १४ हजार पुजारी वहाँ रहा करते थे। उनके पाँच सम्प्रदाय थे—धर्मगुप्त, महिषा साकर, काश्यप्यस, सर्ववस्तुवादी एव महासधिका। सभी सम्प्रदाय प्रेमपूर्वक रहते थे।

टैकसला ( तक्षशिला ) बहुत प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था। यहाँ स्थान-स्थान पर सघाराम, विहार, विद्यालय और विश्राम-गृह बने हुए थे।

सियालकोट मे वासु बच्च बुद्धस्त्व ने अपनी पुस्तक 'रोगीतेलवण' रची थी। ह्यून्तसाङ ने लिखा है कि शाकल ( सियालकोट ) से नगर नार सम्बा की ओर जाते हुए रास्ते मे एक भयकर जगल था जहाँ डाकुओ ने उन्हे घेर कर लूटने मारने का प्रयत्न किया। चीनी यात्री अपने साथियो के साथ भागता एक खेत के समीप पहुँचा जहाँ एक ब्राह्मण हल चला रहा था। इन यात्रियो का वृतान्त सुन कर उसने हल रोक लिया, यात्रियो को अपने गाँव ले गया, ढोल बजा कर अपने ग्रामवासी मित्रो को इकट्ठा किया, कोई ८० व्यक्ति हथियार लेकर जगल के घटनास्थल पर पहुँचे। डाकू डर के मारे घने जंगलो मे तित्तर-बित्तर हो गये।

इस भाग-दौड मे ह्यून्तसाङ के साथियो का बहुत सा सामान डाकू ले गए। कई व्यक्ति तो सर्दी से काँप रहे थे। गाँव वालो ने उनकी पूरी-पूरी सहायता की और कई लोग करुणा से रो पडे। ह्यून्तसाङ ने कहा—'भाई, तुम्हारी ही पुस्तको मे लिखा है—"सबसे मूल्यवान वस्तु मनुष्य के लिए उसका जीवन है, धन-सम्पत्ति नही। जान बची लाखो पाए।"

ऊपर की घटना से स्पष्ट हो जाता है कि उस युग मे एक ही व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सेवक के कार्य करने मे गर्व समझता था। पजाबी जीवन कभी सकुचित अथवा भीरु नही था।

८वी शती से ११वी शती तक का युग पजाबवासियो के ऐश्वर्य, विलास एवं

आलस्य के दृश्य दिखाता है । जीवन के वे उदार तत्व जिन्हे यहाँ के वासी समस्त मानवता के लिए उपयुक्त मानते थे, उनको इस्लामी आक्रमणकारियो की तलवार ने मिटा डालने का प्रयत्न किया ।

गोरखनाथ ने सभवत इस हिंस्रवृत्ति का विरोध किया—

**मुहम्मद मुहम्मद न कर काजी मुहम्मद का विषय अपार ॥**
**मुहम्मद हाथ करद जे होती लोहे गढ़ी न सारं ॥**

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को मिटा कर समन्वय का वातावरण उत्पन्न करने मे पजाबी विचारको, सतो और नेताओ ने बहुत गभीर योगदान दिया है। यही कारण है कि काश्मीर के जैनुलाबिदीन और रोहतास के शेरशाह सूरी जैसे उदार शासक इतिहास के मच पर आये ।

नामदेव, सेना, सधना, रविदास, कबीर एव दादू की वाणी में पजाबी शब्दावली की जो अबाध अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है उसका कारण यही है कि पंजाब भारतवर्ष की विकट समस्या को सुधार रहा था और सबल सभ्यता का केन्द्र पजाब ही था । सूफियो ने भी मानवी गुणो को राजनीति से श्रेष्ठ माना—

**इक फिक्का न गालाह् सभना मे सच्चा धणी**
**हिआउ न कैंही ठाहि माणक सभ अमोलवे ।१२९।**
**सभना मन माणिक ठाहण, मूलि मचाएव ।**
**जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ढाहे कही दा ॥१३०॥**

—एक भी फीका वचन न बोलो, क्योकि सभी मे वह सच्चा स्वामी निवास करता है। किसी का हृदय मत दुखाओ क्योकि ये सभी जीव अमूल्य मणि-माणिक्य ही है ।

सभी जीवो के मन मोती है किसी को भी दुखाना बुरा है। ईश्वर सभी के हृदय मे रहता है । यदि तुझे प्रभु से मिलने की आकाक्षा है तो किसी का हृदय मत ढाह ।

यह उसी वाणी की गूज है जो कुरुक्षेत्र की पुण्य भूमि से सैकडो वर्ष पहले भगवान कृष्ण के मुख से अभिव्यक्त हुई थी—

**मयि सर्वमिद प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।७।७॥**
**—गीता**

गुरु नानक देव ने हिन्दू-मुसलमानो का ऐसा सुन्दर समन्वय एव सगठन किया कि आज तक वह प्रकाश-स्तम्भ की भाँति मनोविकारो के डूबते बेडे बचा सकता है ।

१. सत संतोखि रहु जन भाई । खिमा गहु सतिगुर सरनाई ।
आतम चीनिहु परातम चीनहु, गुर संगति इहु निसतारा है ।
—मारु ८।४

२ हक पराइआ नानका, उस सूअर उस गाइ ॥—जपु

३ घालि खाह किछु हथहु देइ । नानक राह पछाणहि सेइ ॥ मारु

४. हिरदैं रिदै निहाल ।—वार माझ

छादोग्य उपनिषद् मे कहा गया है—

हृदयं यस्मात् हृदयम् ।

गुरु नानक देव ने सर्वधर्म समन्वय के महान कार्य के लिये और शब्दो की आत्मा दिखाने के लिये नई परिभाषाएँ बताईं । इनमे श्रेष्ठ जीवन के महान् आदर्श दृष्टिगोचर होते हैं—

जोगी—

सो जोगी जो जुगत पछाणै गुर परसादी एको जाणै ।

ब्राह्मण—

सो ब्राह्मण जो ब्रह्म वीचारै । आपि तरै सगले कुल तारै ।

काज़ी—

काज़ी सो जो उलटी करै । गुर परसादी जीवत मरै ॥

ज्ञानी—

प्रणवती नानकु गिआनी कैसा होइ । आपु पछाणै बूझै सोइ ॥

मुसलमान—

तउ नानक सरब जीआ मिहरंमत होइ । त मुसलमान कहावै ।

खत्री—

खत्री सो जो करमां का सूर । पुन दान का करै सरीर ।
खेत पछाणै बीजे दान । सो खत्री दरगाह परवाण ॥

दिगम्बर—

दइआ दिगंबर देइ बीचारी । आप मरै, अवरा नह मारी ॥

मुल्लाओ के कट्टरपथ की प्रतिक्रिया स्वरूप सूफियो के काव्य मे बाह्याडम्बर की तीव्र आलोचना चल पडी थी । शाह हुसैन, इनायत शाह, वारिस शाह एव बुल्हाशाह ने बहुत खुले शब्दो मे धर्म के ठेकेदारो पर कई व्यग्य किए । बुल्हाशाह ( १६६२—१७५८ ई० ) कह गए है—

१. बुल्हा धर्मशाला विच धड़वाई रहंदे ठाकुर द्वारे ठग ।
मसीतां विच कुसत्ती रहंदे आशक रहण अलग ॥

२ करम शरअ दे धरम बतावन सग पावन पैरीं।
जात मज़्हब इह इश्क न पुछदा शरअ इश्क दा वैरी ॥
३. जब जोगी तुम वस्ल करोगे बांग कहो भावें नाद वजावे।
जब देखूँ तब ओही-ओही बुल्हा शहु हर रग समावे ॥
४ ज्यों-ज्यो पढ़दा इल्म वधेरे। त्यो-त्यो पैदे झगड़े भेड़े ॥
माही जावे परे-परेड़े। होदी जिंदो जिंद पुकार।
इल्मो बस करी ओ यार। इको अलफ तेरे दरकार ॥

रीतिकालीन प्रवृत्तियो ने भारत के अनेक प्रातो मे विषय-वामना मे साहित्यकारो को मग्न कर दिया था। दरबारी सस्कृति का प्रभाव ग्रामीण जनता पर भी पडा। ऐसा प्रतीत होता है। आदर्श की साधना मृतप्राय हो गई थी किंतु पजाब प्रदेश ने सिख गुरुओ की छत्रच्छाया मे वीरता, त्याग एव सात्विकता का मार्ग अपनाया, पंजाब ने इस युग मे भी सूफी एव सत काव्य-धारा को अक्षुण्ण रखा। यही कारण है कि आधुनिक काल मे भी स्वामी रामतीर्थ ( १८७३—१९०६ ई० ) जैसे समदर्शी वेदाती सत भी पजाब मे प्रकट हुए।

उन्होने अलौकिक प्रेम मे रग कर दिव्य अनुभूति का प्रकाश किया —

१ फकीरा आपे अल्लाह हो
राम रहीम सब बन्दे तेरे तैनूँ किसदा भओ।
फकीरा आपे अल्लाह हो!
तूँ भौला नही, बदा चंदा। झूठ दी छोड़ दे खो
फकीरा आपे अल्लाह हो।

२ भय भेद ते भरम दी माडियां ते हलवाह सुहांगडा फेर दीता
फ़रज, करज़ ते गरज़ दे बेलड़े नूँ अग्ग ला के शेर नूँ घेर लीता।

३. भीखा भूखा कोइ न सब की गठड़ी लाल
गिरह खोल नहीं जाणदे, इत बिध कंगाल।
सात गाठ कुपीन मे साच न माने संक
राम अमल भाता फिरे गिने इंद्र को रंक।

४. न है कुछ तमन्ना न कुछ जुस्तजू है।
कि वहदत मे साकी न सागर न बू है ॥
मिलीं दिल की आँखें जभी मारफत की।
जिधर देखता हूँ, सनम रू बरू है ॥
गुलिस्तां में जाकर हर इक गुल को देखा।
वो मेरी ही रंगत व मेरी ही बू है ॥

अध्यापक पूर्णसिंह ने पुरातन पंजाब के आदर्श-जीवन के प्रति अनेक कविताएँ लिखी हैं और खेद प्रकट किया है कि कई सुन्दर प्रथाएँ मिटती जा रही हैं—

१. उह जंञा किथे ? उह विहल, उह खुल
उह चाउ, उह घोड़ियाँ, उह सुहाग,
उह गिद्धे, उह धूड़ां दा उठाउणा रलमिल
उपर चंन, हेठ चंनियाँ, बंने ते बंनियाँ
नच्च-नच्च, धम्म, धम्म, थंम, थंम
आखर मांगन मुड़ उहो
खिच-खिलियाँ पुराणियाँ ! !

अर्थात्

वे बरात कहाँ अब ? वह अवकाश, यह उदारता,
वह चाव, वे 'घोडियाँ, वे सुहाग';
वह गर्वा नृत्य, वह धूल उठाना रल मिल के
ऊपर चाँद नीचे चाँदनी, दूल्हे, दुल्हनें ! !
नाच नाच कर धम-धम, थम-थम,
आखिर मनावे फिर वही
अट्टहास पुराने ! ! !

२. आ पंजाब पिआर तूँ मुड़ आ ।
आ सिख पंजाब तूँ घर आ !
तेरे तूत दिस्सण मुड़ सावे,
मुड़ आवण बूटियाँ नाल तेरियाँ दोस्तियाँ ।
तेरे पिप्पलां हेठ होण मुड़ मेले ।
तेरे अंबाँ ते पींघाँ उलरदीआं ।
कुड़ीयां नढ्ढे मुड़ खेडण अभक्क होके
रल मिल उन्हा चंने दियां चानणियाँ
किरकिल्लियाँ पाण रलमिल के खेडण छपनलुकियाँ ।
उहो रातां मुड़ आवण, निरवैर,
निर्द्वेष, पवित्र, अबोल, बेइलम,
निष्पाप, सोहणियाँ, स्वादलियाँ ।

अर्थात्—

फिर पंजाब के प्यार, आ जा,
फिर सिख-पंजाब अपने घर आ !

तेरे तूत वृक्ष दीखें फिर हरे
फिर आए मित्रता तेरे पौधो के साथ ! !
फिर लगे तेरे पीपलो के नीचे मेले
तेरे आमो पर झूले फिर ।
युवक युवतियाँ फिर खेले निस्सकोच
रलमिल उसी चाँद की चाँदनी मे
डालें गलबैहियाँ, खेले रल मिल आँख मिचौनी ।
वही रातें फिर छा जायें निर्वैर
निर्द्वेष, पवित्र, अबोल, अज्ञात,
निष्पाप, सुन्दर, स्वादिष्ट !!

इस प्रकार साम्य योग, भाव-एकता और अविरोध बाह्याचार का आदर्श पंजाब अज्ञात काल से लेकर आज तक नित नूतन रूप मे सुरक्षित रखता आया है। चाशनी के उबाल और उफान से मैल का परिहार ही होता है, इतिहास की उथल-पुथल में भी पंजाब ने अपने आदर्श के परिष्कार का ही प्रयत्न किया है। निकट भविष्य पजाब से अधिक सयम, तपस्या, और त्याग की याचना कर रहा है। आशा है प्रत्येक पंजाबी अपने सहज श्रेष्ठ आदर्श के अनुरूप ही दैनिक जीवन मे पूरा उतरने की चेष्टा करेगा ।

# सूफ़ियों के प्रेममार्ग की भारतीय व्याख्या

अभी सृष्टि नही बनी थी जब परमात्मा अपने सत्य प्रेमस्वरूप मे अनतता का खेल खेल रहा था। उसी निराकार प्रेम तत्व ने सुन्दरता का रूप धारण किया और दृश्यमान जगत बन गया।

बाइबल ने कहा है[१]—ईश्वर प्रेमस्वरूप है, उसने मनुष्य को अपना ही स्वरूप प्रदान किया है। कुरान मे इसी लिए मनुष्य को इन्सान (उन्स अथवा प्रेम वाला) नाम से याद किया गया है।

एक सूफी ने कहा है, इश्क वह तत्त्व है जो ईश्वर से विमुख करने वाली सभी वस्तुओ को मिटा देता है। अत इश्क ही अल्लाह की जात है।

परमात्मा के समान ही प्रेम भी अनिर्वचनीय है—

१ 'अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम्'

२ मूकास्वादनवत्

३ गुणरहित कामनारहित प्रतिक्षण वर्द्धमानमविच्छिन्नं सुन्दरतम मुकुन्द-रूपम्—नारद भक्तिसूत्र

प्रेम का रूप गुणो मे रहित है, कामनाओ से रहित है, प्रतिक्षण बढाने वाला है, एकरस है, अत्यन्त सूक्ष्म है और केवल अनुभवगम्य है।

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरङ्गा एव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेमसञ्ज्ञकः॥

'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' मे भी आया है—

सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कित।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधै प्रेमातिगद्यते॥

---

[१] (1) God is love बुल्हा इश्क अल्ला दी जात वे अडिया

(11) God created man in his own image.

(111) दादू जी ने कहा है—

इश्क अल्लाह की जाति है, इश्क अल्लाह को रंग,
इश्क अल्लाह औजूद है, इश्क अल्लाह को अंग।

जिस से हृदय अति कोमल हो जाता है, जिससे अत्यन्त ममता उत्पन्न होती है, उसी भाव को बुद्धिमान जन परमदेव कहते है। परमानुराग ही प्रेम है।

"Love is not getting, but giving, not a wild dream of pleasure and a madness of desire—Oh, no, love is not that It is goodness and peace and pure living, yes, love is that, and it is the best thing in the world and the thing that lives longer. —Henry wan Dike

प्रेम लेन नही देन है। वह न तो विलास का उजड्ड स्वप्न है और न ही इच्छा का उन्माद। जो नही, प्रेम वह नही है। वह तो भलाई, शान्ति और सदाचार है। यह दुनिया मे उत्तम वस्तु है, नित नूतन और चिरस्थायी है।

Love gives itself, but is not bought —Longfellow.

देवर्षि नारद कहते है—

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति—

सिद्ध सभवतया 'सिद्दक' का पुरातन रूप था जो साधक से उत्तम है। फ़ारसी मे एक सम्प्रदाय था सिद्दीकी। शायद इसका इस्लाम से विद्रोही होने का कारण योग एव भक्तिपरक प्रवृत्तियाँ ही था। महाभारत के भीष्म पर्व, अध्याय ९, श्लोक ३९-८० मे जनपदो को गणना मे गाधार, किरात, पल्हव, पारसिक (फारस) के साथ सिद्ध नाम के एक जनपद का उल्लेख भी हुआ है।[1]

खुरासान आदि प्रदेशो मे भक्तियाँ अथवा बखशियाँ नाम के एक सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है। सभवतः यह शब्द भक्त अथवा भक्ति से सम्बन्ध रखता है।

प्रेम का स्रोत बुद्धि नही हृदय है।[2] बुद्धि केवल सिद्ध कर सकती है कि प्रेम किसे कहना चाहिए किन्तु वह इसका साक्षात्कार नही करवा सकती। इसीलिए सूफियो ने अक्ल को इश्क से विभिन्न माना है। गालिब ने कहा है—

बुलबुल के कारोबार पर है खंदाहाय गुल।
कहते है जिसको इश्क़ खलल है दिमाग़ का॥

---

[1] ईरान का 'बगस्तान' नामक स्थान वास्तव मे 'भगवान स्थान' या भगस्थान ही है।

[2] शाह हुसैन—

मन चाहे महबूब को
तन चाहे सुख चैन।

बुद्धिवादी विज्ञान विश्लेषणात्मक अनुसधान द्वारा अपनी तुष्टि चाहता है। जो तत्व तर्क और विश्लेषण की पकड से परे होता है, वह उसे रुचिकर नही।

G. V. Plekhanov ने इसीलिए रहस्यवाद को तर्क का घोर शत्रु कहा है—

'Mysticism is the irreconcilable enemy of reason.

—p 210, Art and Social life.

किन्तु गालिब की अपेक्षा प्लेखनोव का दृष्टिकोण घृणा एव निन्दा से परिपूर्ण है। सूक्ष्म अनुभूतियो की अभिव्यक्ति साधारण भाषा द्वारा कठिन है। रहस्य-वादी अध्यात्म-अनुभूति की अभिव्यक्ति मानवी सौदर्य एव प्रेम द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयत्न सूफियो ने किया है। अनिर्वचनीय को वचन मे बाँधना कठिन है, अटपटा काम है, यही प्लेखनोव को अखरता है। A J. Arberry ने अपने ग्रथ Sufiism मे लिखा है—'The marriage of romance to mysticism took place early in the history of the Sufi movement. The language of human love was used freely to describe the relations between the mystic and his Divine Beloved.

## भारतीय रहस्यवाद का प्रभाव

यूनान का रहस्यवाद ६०० ई० पूर्व से अधिक पुराना नही है जबकि भारतीय रहस्यवाद ऋग्वेद के नासदीय एव पुरुष सूक्त से प्रारम्भ होता है और उपनिषदो मे अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। यूनानी दार्शनिकता के बाल्यकाल मे यहाँ प्रौढ जैन एव बौद्ध दर्शन भी विकसित हो चुका था। छ दर्शन भी उस युग से पहले स्थापित हो चुके थे।

आत्मन् एव विश्वात्मन् का विचार उपनिषदो ने बृहत् रूप मे प्रस्तुत किया था। यूनानी दर्शन का (Nous) नौस उसी आत्मन् का पर्याय मात्र है। विश्वात्मन् को योरोप मे (Universal Soul) एव इस्लामी प्रदेशो मे रूहिकुल माना गया।

सिकन्द्रिया मे पूर्व और पश्चिम के विचारो का सम्पर्क कई शताब्दियो तक चलता रहा था और ऐसा प्रतीत होता है कि भारत का योगदान काफी विशाल था।

Prof. Palmer:

'Sufiism is a strange combination of the pantheism of the Aryan race and of the severe monotheism of their Semitic conquerors, and aims at leading men to the contemplation of

spiritual things by appealing to their emotions. The keynote of the system is that the human soul is an emanation from God, and that it is always seeking and yearning to rejoin the source from where it has sprung. Ecstasy is the means by which a nearer intercourse is obtained, and absorption in the divinity is the ultimate object to be attained.'

रहस्यवाद का मूल सिद्धात ऐन्द्रिय तृप्ति पर निर्भर नही है। वह तो आत्मानुभूति एव आत्मदर्शन पर आधारित है।[१]

अरस्तु, ( निधन ३९९ ई० पू० ) ने कहा है 'दृश्यमान जगत का आभास लालिमा के समान है, और आत्मदर्शन उज्ज्वल धूप के समान है। अलचेंद्र ( सिकन्दर ) के इस गुरु के मन मे भारतीय ज्ञान को प्राप्त करने की अद्भुत जिज्ञासा थी और उसने अपने शिष्य को वहाँ का ज्ञान लाने का सकेत किया। सिकन्दर की सेना मे पाइरो (Pyrrho) नामक दार्शनिक भी आया था। सलियूकस के सम्बन्ध चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ गूढ थे। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज भी भारत आया था। अशोक महान् ने रूप सागर के तटवर्ती प्रदेशो मे अनेक प्रचारक भेजे थे। भारतीय ज्योतिष-शास्त्र ने भी यूनानी विज्ञान के बहुमूल्य तत्त्व लिए थे।

"We may say that in the pre-Christian era Greek philosophy in its earlier phases was perhaps influenced by Indian philosophy. So far as the post-Christian era is concerned there are reasons to believe that some concepts of Indian thought were influenced by Greek knowledge."[२]

अत ब्राउन (E. G Browne) जैसे विद्वानो की यह उक्ति तथ्य पर आधारित प्रतीत नही होती कि सूफीवादी दर्शन नव-अफलातूनी स्रोत से विकसित हुआ।

---

[१]Indian and Iranian Philosophy : Maulana Abul Kalam Azad. Indian Inheritance : Vidya Bhawan, p. 165—What is the basic principal of Mysticism ? It is that the knowledge of reality cannot be obtained through the sense. If we are to reach reality, we must withdraw from the world of sense into that of inner experience.

[२]P. 172.

यह विचार ठीक नही प्रतीत होता कि सूफी मत को पहले ईसाई रहस्यवाद ने प्रभावित किया, फिर बौद्ध सिद्धो ने।[१] ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर मध्य एशिया पर बौद्ध मत का प्रभाव ईसा के आगमन से भी पहले पड चुका था। त्याग, नम्रता, तपस्या, एकातवास आदि मनोमारण की साधना उपनिषद्-काल से चली आ रही थी। गाधार तो बहुत देर तक भारतीय सस्कृति, धर्म और सभ्यता का अग रहा है। इसीलिए वहाँ गुरुभक्ति, संगीत, नृत्य, कीर्तन आदि का अधिक प्रभाव रहा।

कहते है सौदर्यानुभूति का प्रयास नव-अफलातूनी (Neo-Platonic) प्रचारको द्वारा ग्रहण किया गया, किन्तु भारत मे विस्माद और प्रेम के विचार परम सौदर्य से ही उत्पन्न होकर पहले से प्रचलित थे। फना का विचार प्रत्यक्ष रूप से माया एव निर्वाण के सिद्धात से विकसित हुआ है। तापसी अथवा खानकाही जीवन इस्लाम मे वर्जित रहा है—'ला रुहबा नियत फिलिस्लाम'।

'अहं ब्रह्मास्मि' जैसा वाक्य बायज़ीद बस्तामी ने कहा था—'मेरी कितनी शान है, वह परम सत्ता मेरे चोले मे विद्यमान है।' मन्सूर के 'अनलहक' मे भी 'तत्त्वमसि' की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। इस्लामी शासन ने बायज़ीद को देश-निकाला कर दिया था और मन्सूर को प्राणदण्ड दे दिया था। यही तथ्य सूफीवाद एव मौलिक इस्लाम के अन्तर को स्पष्ट कर देता है। बायजीद के अनुयायी न मुहम्मद को अतिम देवदूत (नबी रसूल) मानते थे न बहिश्त मे विश्वास रखते थे।

इस्लाम का जन्म ७वी सदी मे हुआ था, किन्तु उस समय तक भारतीय रहस्यवादी दर्शन जीवन का अग बन चुका था और उसका प्रभाव एशिया के दूरस्थ प्रदेशो मे भी फैल चुका था। सन्त-काव्य मे तथाकथित इस्लामी विचारो के पूर्व रूप उपनिषदो एव सिद्धो की रचनाओ मे मिल जाते हैं। अलवार, बौद्ध सिद्ध, बाउल आदि सन्तो की वाणियो मे प्रेममार्ग के दर्शन भी होते हैं। शैव भक्ति मे गम्भीर रहस्य सदैव वर्तमान रहा। तान्त्रिक एव हठयोगी भी गुह्य साधना मे निमग्न रहते थे। जिस प्रकार तिब्बत एव नेपाल मे बौद्ध एव शैव रहस्यवाद का एक मिश्रित रूप प्रचलित हो गया था, उसी प्रकार उत्तरपश्चिमी भारत मे वेदान्त एव सूफीवाद का एक मिश्रित रूप विकसित हो गया था।

इस्लाम की मूल विचारधारा जीवात्मा और ब्रह्म का सम्बन्ध दास और स्वामी के रूप मे स्वीकार करती है। इन दोनो की बराबरी, प्रेम अथवा निमग्नता

---

[१]प्रो० मोहन सिंह : पंजाब, पृ० ४१८ (गुरुमुखी)

का भाव उसे सह्य नही है। कुरान मे यह भी लिखा है कि 'इना अल्लाह रजअअन' उस ईश्वर के पास सभी को वापस लौटना पडता है, किन्तु इसकी व्याख्या में जीवात्मा की असमर्थता एव हीनता ही दिखाई जाती है।

सूफीवाद मे जीव और ब्रह्म का अद्वैतभाव 'हमा अस्त' के सिद्धान्त मे सुरक्षित है। दाराशिकोह ने इस वहदतुल्वजूद को शंकर के एकात्मवाद ( अद्वैत ) का पर्याय ही माना है। सूफी जगत को मिथ्या नही मानता बल्कि उस परम सुन्दर के सौन्दर्य से ओत-प्रोत मानता है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में वह ब्रह्म की लीला देखता है। प्रत्येक वस्तु मे ब्रह्म का प्रतिबिम्ब उसे स्पष्ट दिखाई देता है।

गीता मे भी कहा है—

**ममैवांशो जीवलोके जीव भूत सनातनः।**

फ्रेड्रिक पिनकाट ( Predric Pincott ) ने अपने एक लेख मे यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सूफीवाद पर वेदान्त का गम्भीर प्रभाव रहा है—

'It ( Vedanta ) is found in the ancient creed of Persia, and it penetrated into Greece in times beyond historical record. Socrates, Plato and Pythagoras were eventually Vedantists, even believing in the transmigration of soul. The Neo-platonists were certainly tinged by the same doctrines; and these Pantheistic ideas may have penetrated much further " p. 71

'It happened however, that the Mohammadanism which was largely mixed with the notions of the Sufis, which were practically the same as those of the Vedantists, or the ancient Indian philosophers " p. 72, The Sikh Religion · Sushil Gupta & Co. Calcutta, 1958.

जर्मन विद्वान ट्रम्प ( Trumpp ) ने भी इसी विचार की पुष्टि की थी—

'Dass der Sufismus ein indisches Product ist, darüber Kann Kein Zweifel obviatten, und noch naher bestmint ist der Sufismus ein speciall Budhistrisches Erzeugniss."

Z. D M. G., XVI, p. 244.

श्री पोकाक ने भी विस्तार से बताया है कि यूनानी रहस्यवाद भारतीय प्रभाव से ओत-प्रोत है—'India in Greece'.

बौद्ध श्रमणों को ईरान मे शमन कहा जाता था। इनकी लोकप्रियता ने शमन का अर्थ भी 'प्रिय' बना दिया था। विपर्यय द्वारा यही शब्द सनम ∠ समन, शमन बन गया। उसी युग में जैन शब्द से जैन ( शोभाशाली ) फारसी शब्द बन गया।

चगेज़ खा का वशज कुबलाई खान ( १२५४-९४ ई० ) बौद्ध मत का अनुयायी था, किन्तु तकुदर ( १२८२-८६ ई० राज्य-काल ) मुसलमान होकर अहमद कहलाने लगा। गजा खा ( १२९५-१३०५ ई० ) ने ईरान मे से अनेक बौद्ध विहार मिटा डाले।

E. G. Browne ने अपने ग्रथ Literary History of Persia, भाग ३, पृ० ४४ मे लिखा है—Henceforth ( 1280 A. D. ) Shamanis or Buddhist monks could no longer domineer over the Muslim Ulama, their monasteries and temples gave place to colleges and mosques.

श्रमण के अर्थ—

१—शम् = शाति, जो व्यक्ति शाति के लिए प्रयत्न और तपस्या करता है वह श्रमण कहलाता है।

२—सम = बराबरी, जो व्यक्ति साम्य योगी होकर सभी चेतना के दर्शन करता हुआ आत्मवत् सभी को मित्र की सम-दृष्टि से देखता है, वह श्रमण होता है।

३—श्रम = मेहनत, जो व्यक्ति मनोविकारो का शमन करने और समता को प्राप्त करने के लिए मेहनत करता है, तपस्या करता है, वह श्रमण हुआ।

फारसी के पुरातन शब्दकोश 'मुयिदउलफुज़ला', पृ० ५३८ मे शमन का अर्थ 'शर्फनाम' के आधार पर बुतप्रस्त ( मूर्तिपूजक ) दिया है और साथ ही 'साह व सराह' ग्रन्थ के आधार पर इसका अर्थ 'बुत' बताया है। यद्यपि बुत शब्द बुद्ध का ही विकसित रूप है।

## समन

श्रमण के सम्बध मे डा० मुहम्मद इकबाल ने मौलाना सैयद सुलेमान नदवी के नाम एक पत्र मे लिखा था ( इकबाल नामा, पृ० ७८-७९ )—

"आपको 'खैर उल्करून' वाली हदीस याद होगी। इसमे नबी करीम (मुहम्मद साहब ) फरमाते है कि मेरी उम्मत ( जाति ) मे तीन करनो (शताब्दियो) के बाद समन का जहूर होगा। मैंने इस पर दो-तीन मज़ामीन अखबार 'वकील', अमृतसर में शाइअ ( प्रकाशित ) किए थे जिसका मकसूद यह साबित करना था कि 'समन' से मुराद रहबानियत ( संन्यास ) है जो वस्त एशिया ( मध्य एशिया ) की अकवाम मे मुसलमानो से पहले आम थी।

मेरा तो अकीदा है कि गल्व फी उज्जुहद ( तपस्या ) और मसला-इ-वहदत उलवजूद ( अद्वैत ) मुसलमानो मे जियादातर बुद्ध ( समनियत ) मजहब के असरात का नतीजा है।"

एक और पत्र मे वे 'सराजुद्दीन पाल' को लिखते है।

"इस्लाम अफलास ( निर्धनता एव सन्यास ) को बुरा कहता है तो हकीम सनाई अफलास को आला ( उत्तम ) दरजा की सआदत ( सौभाग्य ) करार देता है। इस्लाम जहाद फी सबील अल्लाह ( धर्म युद्ध ) को हयात के लिए ज़रूरी तसव्वर करता है तो शुअराए अजम ( ईरानी कवि ) इस शिआरि-इस्लाम मे कोई और माने तलाश करते है, मसलन—

गाजी ज़हे शाहादत दर तगो पोस्त, गाफिल कि शहीद-इ-इश्क फ़ाज़िल तरर ज़ोहत, दर रोज-इ-क्यामत ईं बाद के माँद, ईं कुश्ता-इ-दुश्मन अस्तं व आँ कुश्त-इ-दोस्त।" ( इकबाल नामा, पृ० ३६-३७ )

इसी प्रकार के विचार श्री रहमत अली ने अपने ग्रंथ Millat Islam and the Menace of Indianism मे दिए है ( पृ० ७ )। विस्तार के लिए देखिए—Reconstruction of Religious Thought in Islam : Iqbal.

महावीर को 'समण नाय पुत्ते' कहा गया है। और पीर शब्द का सम्बन्ध भी वीर के साथ जुडा हुआ प्रतीत होता है। महाभारत मे अध्यात्म शक्तियो के प्रतीक पञ्चपाण्डव को पञ्चवीर कहा गया है। स्कध-पुराण के केदार खण्ड मे पाँच वीरो का उल्लेख है। तान्त्रिको मे वीराचारी एक सप्रम्दाय रहा है। शैवो मे भी वीर शैव थे।

वीर7बीर7पीर। अत सुवीर7सुबीर7सुपीर7सूफी भी संभव है। प7फ यथा पीलै7फील, अश्वधाम7असफहाँ। नाट्यशास्त्र मे सिन्धु देश को 'सौवीर' देश नाम से लिखा गया है।

वृहदारण्यक उपनिषद् के ५।१२।१ वाक्य मे वीर से सम्बद्ध एक प्रसग आया है :—

'प्रावृद' ने अपने पिता से कहा—नही पिता जी, संसार में 'वीर' पुरुष हैं जो इन दोनो का समन्वय कर देते है। 'वीर' के 'वी' का अभिप्राय 'अन्न' है—अन्न मे ही तो सब प्राणी प्रविष्ट है, वीर के 'र' का अभिप्राय 'प्राण' है—प्राण मे ही सब प्राणी रमण करते है। जो इस रहस्य को जानता है उसमे सब प्राणी प्रविष्ट हो जाते है, सब उसमे रमण करते हैं—वह सब का आश्रय-स्थान बन जाता है।

गुरु नानक ने भी वीर को भक्तो की पंक्ति मे गिना है—

**गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे—२७, जप ।**

इस वीर शब्द मे जो गुह्य विचार उपनिषद् ने दिए सभवत 'पीर'[१] शब्द मे भी वही निहित रहे। इसीलिए कहा गया है—

Sufiism was very little more than upanishadic thought in a new garb Whatever the Archers of the west may say, most of the main philosophical ideas of later times had their seeds or indication in these old writings."—p. 140-141, The Culture of India . C C Dutt.

अल्फ्रेड गिल्लाम (Alfred Guillaume) ने अपनी पुस्तक 'इस्लाम' मे यह विचार प्रकट किया है कि हल्लाज के मृत्युदण्ड के पश्चात् सूफी अपने प्रवचनो मे सयमशील हो गए और उनकी अभिव्यक्ति की भाषा अधिक गूढ एव रहस्यात्मक हो गई। प्रेम और मधु-पान के प्रतीक बार-बार आए है ( पृ० १४६-१४७ )। वास्तव मे ये प्रतीक सिद्धो की वाणी, बल्कि वैदिक ऋचाओ मे भी उपलब्ध होते है। हल्लाज के बलिदान ने भय नही, अपितु, निर्भयता का प्रसार किया। अब, सईद अबुल्खैर ( निधन १०४६ ) आदि सूफी शरियत की स्पष्ट अवहेलना करने लगे। नृत्य एव सगीत ( रक्स व समाअ ) भी अधिक वेग से चल पडा। इस विद्रोही आदोलन से इस्लाम को बचाने के लिए अबुहमीद अलगजाली ( १०५९-११११ ई०) ने समन्वय का मार्ग निर्धारित किया। ईहया उलउलूम एव 'अश्शतुल अन्वार' नामक ग्रथो में ग़ज़ाली ने बहुत मूल्यवान विचार प्रकट किए है। एक बार तो इस महान् विचारक के प्रयत्न से इस्लाम की प्रतिष्ठा स्थापित हो गई किन्तु धीरे-धीरे अन्य सूफियो ने अपना विद्रोह कायम रखा। अब्दुल्कादिर जीलानी के भतीजे ने जो सम्प्रदाय 'रिफाइया' नाम से चलाया था उसमे तत्र-मंत्र एवं हठ-योग के अनेक चमत्कार प्रचलित हो गए थे। आग पर नगे-पॉव चलना, शीशा एव विष पी जाना, साँपो के साथ खेलना आदि अनेक क्रियाएँ उक्त संप्रदाय मे प्रचलित थी। एलफ्रेड ने पृष्ठ १५८ मे लिखा है—( भारत मे ) जैसा कि सन्देह किय जा सकता है, सूफी दरवेशो के सम्प्रदाय हिन्दूमत के प्रभावो से ओत-प्रोत हैं, यहाँ तक कि उनमे जाति-पाँति की प्रथा भी प्रचलित हो गई है।

## सिद्धों का प्रभाव

हिन्दू शाक्य ( Indian Scythian ) राजाओ के सिक्को पर जिन देवताओ की तसवीरें है उनको देखकर मज़द-मत ( जर्तुश्त मत ) का नया रूप कल्पना मे

---

[१]कबीर ने पीताम्बर को पीर का पर्याय भी प्रयुक्त किया है—

जहाँ बसहि पीताम्बर पीर। —राग आसा, गुरुग्रंथ

आता है क्योकि भारतीय विचारधारा के प्रभाव अकित है। पूर्वी ईरान पर बौद्धमत का अधिक प्रभाव पडा और मज़द-मत धीरे-धीरे उसी मे घुल-मिल गया। Stein, West और Christansen ने इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है।[१]

विन्दी दाद (विदेव दायित्व) पुस्तक मे इन्द्र, शिव (साउर्व) का उल्लेख है। Chapter I मे लिखा है—

"यूनानियो के राज्यकाल मे बुद्धमत ईरान के पूर्वी इलाको मे फैल गया। हिन्दुस्तान के राजा अशोक ने २६० ई० पू० मे बुद्धमत स्वीकार किया था। उसने कुछ प्रचारक गाधार (काबुल घाटी) और वाख़्तर (Bactria) मे भेजे। एक राजा अगाथोक्लिस नामक (Agathocles) ने जो अरगोज़िया एव द्र गियाना (Arachosia & Drangiana) मे (१८०—१६५ ई० पू०) राज्य करता था, कुछ सिक्के बनवाए जिन पर बुद्धमत के स्तूप का चित्र था

दूसरी शती ई० पू० के मध्यकाल मे उत्तर और दक्षिण के बौद्धो मे सघर्ष के कारण विभेद उत्पन्न हो गया। दक्षिणी शाखा वाले जो अपने सम्प्रदाय को हीनयान कहते थे बहुत सयम एव कठोरता के साथ अपने बौद्ध मत के प्रवर्तक की शिक्षा पर आरूढ रहे किन्तु उत्तरी शाखा ने जो अपने आपको महायान के नाम से प्रसिद्ध करती थी हिन्दुस्तान के अन्य सम्प्रदायो के सिद्धान्तो को अपना लिया और वह सदैव लोकप्रिय मान्यताओ के प्रभाव स्वीकार करने के लिए अधिक तत्पर रही। बौद्धमत का वह रूप जो मध्य एशिया मे प्रचलित हुआ, महायान शाखा वाला था। राजा कनिष्क ने इस शाखा के सिद्धान्त सस्कृत मे सकलित करने के लिए विराट सभा स्थापित की थी।

गाधार में बौद्ध मत वालो ने ईसा की आरभिक शताब्दियो मे बहुत से 'विहार' स्थापित किए थे जिनके खडहरो मे हमे पत्थर की मूर्तियो मे हिंद-ईरानी कला के नमूने मिलते है जिनमे बुद्ध के जीवन के दृश्य दिखाए गए हैं और बोधिसत्त्वो और भावी बुद्धो की मूर्तियाँ भी हैं। गाधार-कला चौथी शती मे अपनी चरम सीमा पर थी। बौद्ध मूर्तिकला के प्राचीनतम नमूने जो 'यूनानी-हिन्दी' शैली मे बनाए गए है तीसरी शती से सम्बद्ध है और वे हाल ही मे चीनी तुर्किस्तान मे कई स्थानो को खोदकर प्राप्त हुए है।

काबुल से पश्चिम की ओर बामियान मे बुद्ध की भव्य एव विशाल मूर्तियाँ प्राप्त हुई है जो पर्वत की चट्टानो को तराश कर बनाई गई है। महराबो मे कई तस्वीरे है 'जो हमे मध्य एशिया' की तस्वीरो की याद दिलाती हैं। कई विवरणो

[१] Dr. Christansen, Prof. Copenhagen University : L' Iran Sours Les Sassanicopes, 1936, Copenhagen, Denmark.

मे वे शाहपूर प्रथम के युग की सासानी मूर्तिकला की शैली से मेल खाती है ।

७वी शती तक सासानी ईरान मे बौद्ध विहारो के अस्तित्व की पुष्टि हुएनसाग के वक्तव्य से होती है । वह लिखता है कि ईरान में हिन्दुस्तान के और सम्प्रदायो के अनुयायी भी मौजूद है । यह अवश्य ईरान के पूर्वी प्रदेशो के सबध मे ठीक माना जा सकता है ।

**इस विषय पर प्रकाश डालने वाले हैं—**

1. Foucher : GreekoBuddhist Gandhar Art ( French ). Paris, 1905
2. Stein : Historical Remains under the Land of Khutan, London, 1904
   Ancient Khutan, Oxford, 1907
   Remains of the Desert Belt, London, 1912
3. Gunwedel : Buddhist Remains of Sino-Turkistan (German), Berlin, 1912.
   Von le Coq : Khocho, Berlin, 1913
4. Godard and Hackin · Ancient Buddhist Remains of Bamian ( French ) Paris, 1958
5. Hackin & Carl : Proceedings of the French Archeological Society in Afghanistan, Tokio (French). 1933
6. Beal : Buddhist Influences on Western World, London, 1906

मानी ( मृत्यु २७६ ई० ) एक क्रातिकारी सिद्ध पुरुष था । उसको बहराम प्रथम ने प्राण-दण्ड दिया था । उसके अनुयायी गुप्त रूप मे देर तक काम करते रहे । पाँचवी शती में (सुगद) मध्य एशिया मे उनकी साधना बौद्धमत से प्रभावित हुई । कई बौद्ध शब्द उन्होंने अपना लिए—'ससार' को आवागमन के अर्थों मे उन्होंने ग्रहण किया । पुनर्जन्म का सिद्धात भी उन्होंने अपना लिया था । यह भारत की देन थी ।

मानी स्वयं २४२ ई० से पहले गाधार एव सिंध के बौद्ध विहारो मे ज्ञान-प्राप्ति एवं गोष्ठी के लिए आया था ।

[ Schmidt—Polotsky p 47, Kaflaya Gnomon ( Journal ), Vol IX, p 349, Article by Schaeder. ]

सुगदी भाषा मे अनेक बौद्ध ग्रंथ प्राप्त हो चुके है ।

वसंत्र जातक
भाव विभाव सूत्र
मैत्रीय समिती
भन्द्र कल्पिक

Ganthıot : वसत्र जात ın snızdı ın Asia Journal (French), 1912
Rosenburg : Zafuıskı : Vol. 26, Bulletın of the Academy of Russıan Sciences. 1918, 1920 & 1931
Reichelt : Sogdıan Manuscrıpts ın London Museum, Vol. I & II ( German ) Hydleberg 1928, & 1931
Muller : Sogdıan Text. Vol. II, Proceedıngs of Persıan Academy, 1934
Tedesco : Iran and Indology, 1925 German Journal.

## भक्ति ही प्रेममार्ग है

वेद ने कहा 'रसो वै स:', वह रस रूप है, प्रेम स्वरूप है।

भग = ईश्वर, पूर्ण भाग
भगवान = भाग्यशाली, कासिम अज़ली, कुल, अंगी
भक्त = याचक, जुज्व, अपूर्ण अंग
भक्ति—अंशाशी भाव की साधना अथवा सेवा।
भजनम्—इस अगागी भाव का विचार।

श्री मधुसूदन सरस्वती कहते है—

**द्रवी भाव पूर्विका मनसो भगवदाकारतारूपा सविकल्पवृत्तिर्भक्तिः**

= प्रेमभाव मे द्रवित होकर भगवान के साथ चित्त के सविकल्प तदाकार भाव को भक्ति कहते है।

**भगवति मन स्थिरीकरणं भक्ति।**

चित्त की स्थिरता को भक्ति कहते है।

देव नारद कहते हैं—

**सात्वस्मिन् परम प्रेमारूपा अमृतस्वरूपा च।**

—नारद भक्तिसूत्र ।। २

= परमेश्वर के प्रति होने वाले परम प्रेम को ही भक्ति कहते है।

महर्षि शाण्डिल्य ने भी ऐसा ही लक्षण बताया है—

**सा परानुरक्तिरीश्वरे**—शाण्डिलय भक्तिसूत्र १।१।२

=ईश्वर के प्रति परमानुराग को ही भक्ति कहते है । 'भगवान कृष्ण गीता मे कहते है—

**भक्त्या मामाभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः १८।५५**

=भक्ति के द्वारा मनुष्य मुक्ति को जान सकता है कि मै क्या वस्तु हूँ, तथा मेरा सर्वव्यापी परिमाण क्या है ।

**अथर्ववेद** ६।७९।३ मे प्रर्थना है—

देवः सस्थान ! सहस्रापोषस्येशिषे । **तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि ।**

**तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ।**

हे निःश्रयसप्रदाता देव ! तू आध्यात्मिक असख्य पुष्टियो का स्वामी है । हमें उन पुष्टियो का भागी बना, हम भक्तिवान बने ।

प्रेमा भक्ति को ही सूफी लोग 'इश्क' कहते हैं । वैदिक सोम, अमृत और समाधि को सूफ़ी वज्द कहते है ।

सूफी साधिका राबिआ से बहुत पहले तमिल प्रात मे शैव साधिका कारैक्काल ने भगवान शिव का वर्णन भक्ति भाव से अनुरक्त होकर किया है । पाँचवी शताब्दी के तमिल शैव साधक मणिक्कवाचकर ने अपने प्रबध-काव्य 'तिरुक्कीवैचार' मे शिव तत्त्व को प्रेमिका के रूप मे वर्णन किया है ।

'इस पाँचवी—छठी शताब्दी की एक प्राचीन तमिल रचना के अतर्गत इस प्रकार जीवात्मा का प्रेमी रूप मे तथा परमात्मा का प्रेम पात्रीवत् प्रदर्शित किया जाना, निश्चय ही सूफी मत के प्रभाव का फल नही हो सकता ।'[1]

हिन्दी मे सूफ़ियो की प्रेमगाथाओ के सूत्रपात से बहुत पहले श्री ज्ञानदेव ने मराठी मे प्रेमपरक रहस्यगीत लिखे थे जिन पर सूफियो की रुबाइयो, गज़लो अथवा मसनवियो का कोई प्रभाव नही, किंतु उनमे तसव्वफ़ के सभी तत्त्व मिल जाते हैं—

१. जाग्रति मे कही चरणो की आहट सुनता हूँ ।
   लगता है—आँगन मे कौन बोला होगा ?
   देखने जाता हूँ, तो आँगन का होता है वृंदावन,
   और मनुष्य का होता है श्री कृष्ण ।
   स्वप्न मे उसी एक मूर्ति के चित्र हिलते हुए दीखते है ।
   समझ जाता हूँ कि चित्त मे अब और वस्तु की प्रीति रही नही ।
   नींद आती है तो इतनी गहरी कि सारी अनुभूति कृष्णमय हो गई ।
   हजार कीजिए, जागता ही नही ।

[1]श्री परशुराम चतुर्वेदी—भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ—पृ० ३

ज्ञानदेव, ज्ञानदेव, कह कर लोग पुकारते हैं।
लेकिन सुनता कौन है ?
इसलिए अन्त मे विट्ठल नाम की गर्जना करते है,
तब ज्ञानदेव जागता है।
ज्ञानदेव की हालत बतलाने जैसी नही।

पृ० ८५, गीत १०७, ज्ञानदेव चिंतनिका—संत विनोबा

२. वह आनद निधि, आनद समुद्र
आज परिपूर्ण रूप से मेरे वश हो गया है।
इसलिए, बजाए इसके कि मै उसकी ओर जाऊँ,
वही मेरी ओर आकर मुझे बुला रहा है।
मेरे लिए आज वास्तव मे दीवावली है।
प्रेम की कैसी नवीनता
कि प्रपच का रंग ही जिसे कभी लगा नही—
और प्रपच के बाहर जिसका संचार रहा,
वह आज मेरे घर आया है।
घर आकर सारा घर उसने व्याप लिया है।
और फिर भी, क्योकि जगह पूरी नही पडी,
मेरे हृदय को अतर्बाह्य, उसने भर दिया है।

—उक्त पुस्तक, गीत ११६

३. उसे मिलने गई तो वही मै हो गई।
सज्ञा खो गई।
फिर होश मे आकर देखती हूँ—
तो मूर्ति का दर्शन ही नही।
उसका तरीका कुछ समझ मे नही आता।
चितन की गति कुठित होती है।
लेकिन लगा हुआ वेध तो छूटता नही।
अनुभव से एक बात समझ मे आयी
कि उसके भी दर्शन की लालसा रखने से—
वह दूर हो जाता है।
विषयो की आसक्ति से ईश्वर-दर्शन का प्रश्न ही नही।
लेकिन ईश्वर-दर्शन की आसक्ति से भी वह दुराता है।
उलटे वह भी आसक्ति छोडकर,

स्वस्थ चित्तेन साधन आचरते जायँ
तो उसकी भेट शीघ्र से शीघ्र होती है।
इस लिए गुरु-चरणो में भाव रखकर सेवा करते रहे।
—यही ईश्वर-प्राप्ति का उपाय ज्ञानदेव समझा है।

—वही, गीत १३९

# भारतीय संस्कृति को बाबा फरीद की देन

. इस्लामी राज्य की स्थापना होने पर भारत मे कई प्रकार के परिवर्तन दृष्टि-गोचर होने लगे थे किंतु हमारे इतिहासकारो ने इस्लामी विमान एव तलवार का प्रभाव अथवा शासको के कार्य-कलाप का वृतात तो दिया है किंतु व्यक्तिनिष्ठ उपासना को अपेक्षा सामूहिक अनुष्ठान के इस्लामी प्रभाव का उल्लेख नही किया। उन्होने विजेता के विध्वसकारी काण्डो और भारत के शरीर पर पडे घावो और चिह्नो का विवशत वर्णन तो किया है परतु भारतीय सस्कृति की चेतना पर नव प्रकाश के चमत्कार और ऐक्य के उत्साह का मूल्याकन नही किया।

भारतीय सस्कृति सदैव शासनमुक्त समाज की खोज मे रही है, राजनीति के बहुत विरल प्रभाव ही उसने ग्रहण किए है। राजागण चाहे कितने महान योधा अथवा विजेता रहे हो उनकी प्राप्ति मे जनता का बहुत ही कम अधिकार रहा है। हमारी सस्कृति जनता की धीमी-धीमी चाल के साथ विकासवान हुई है, राजाओ के घात प्रतिघात से नही। इस व्यवस्था का एक भारी लाभ यह हुआ है कि राजाओ के पतन के समय भी भारतीय सस्कृति सशक्त और कर्मठ रही है। उत्तरी भारत में कुछ एक सहस्राब्दी के लम्बे काल तक मुसलमानो का राज्य रहा है किंतु इस्लाम पर भारतीय संस्कृति ने प्यार बरसा कर विजय प्राप्त की है।*

मध्यकालीन भारतीय सस्कृति धर्म शास्त्र की अपेक्षा लोक मानस की मान्यताओ को अधिक महत्व देती है। आल्वार्यों का प्रभाव क्षीण होता जा रहा था। दार्शनिक विचारो की छीछालेदर की अपेक्षा दार्शनिक जीवन अधिक महत्व-पूर्ण समझा जाता था। बहुत से सम्प्रदाय निर्ग्रंथ बनते जा रहे थे। इसीलिए गुरु-पीर का महत्व बढता जाता था। राज्य परिवार भी इन गुरु-पीरो के साथ संबद्ध होने की प्रवृत्ति रखते थे। आश्रमो एव खानकाहो के एकात जीवन की अपेक्षा पारि-

---

***व्याख्या के लिए देखिए**—Indian Islam . Smith, **एवं** Dr. Mohd. Iqbal . Madras Lectures. **वेदांत के प्रभाव से मुक्त होने के लिए इकबाल कह गए हैं—**

**बचा के दामन बुतों से अपना फ़खरे राहे हजाज हो जा।**

वारिक सुख-शांति के आदर्श अधिक लोकप्रिय बन गए थे। बल्बन की पुत्री हज़बरा का विवाह फरीद शकरगज के साथ हुआ था। इसी प्रकार अजमेर के चिश्ती परिवार के साथ बडे-बडे बादशाहो के घनिष्ठ सबध रहे थे।

उस युग मे मन की शुद्धि पर बल देना भारतीय सस्कृति का गुण विशेष था। गोरखनाथ, रामानुज तथा मध्वाचार्य ने हिंदू धर्म को अधविश्वास, सकीर्णता एव सकोच से दूर कर पवित्र प्रेम द्वारा सामाजिक निर्माण का उद्यम किया। मुईनुद्दीन चिश्ती, दाता गज बख्श एव बाबा फरीद ने इस्लाम के कट्टर पथ की अपेक्षा कल्याणकारी सूफीवाद प्रचलित किया था। इस प्रकार अनेकता मे से एकता का सुदर स्वरूप निखर आया।

मध्य काल के सूफी सत पुस्तक-ज्ञान के बौद्धिक चमत्कारो के स्थान पर स्वय सवेद्य ज्ञान द्वारा जन सेवा मे रत रहते थे और जनता का हृदय परिवर्तित कर देते थे। उनकी वाणी मे मानो जनता का हृदय ही धडकता सुनाई देता है। इस विचार की पुष्टि रवीद्रनाथ ठाकुर के इन शब्दो से भी होती है—'सच पूछो तो यह साधना प्राय निर्ग्रंथ रही और लोक वेद से निरकुश। इसका स्रोत लोगो के अन्तरतम हृदय मे है जहाँ मे यह फूट पडी है और विधि-निषेध को बाढ तोड कर निकली है—प्राक्कथन, भारत की मध्यकालीन रहस्य साधना, पृ० २२७, दिसम्बर, १९२६।

सूफी सत-साधना का इतिहास ही भारत का सच्चा एव पवित्र इतिहास है। इसमे हमे उपनिषद-ज्ञान के सजीव स्रोत भी दीखते है और इस्लामी एकेश्वर-वाद का वेग भी प्रतीत होता है। जन साधारण मे से उठने वाले प्रतिभावान सूफियो एव सतो के आँखो-देखे कौतुक भी इस साधना मार्ग पर अकित है। इसने राजनीति को भी प्रजा-पालन का धर्म सिखाने का प्रयत्न किया। समकालीन राजाओ के नशे मे खटाई डालने के लिए सच्चे बादशाह [ राम ] की अनत शक्ति एवं अथाह दया का वर्णन इस युग के साहित्य मे सर्वत्र मिलता है।

बाबा फरीद ( ११७३—१२६२ ई० ) ने इस विचार का विशेष प्रचार किया है कि स्वर्ग-द्वार वास्तव मे बहुत तग है। केवल नम्रता एव निरीहता वाले साधक ही इसमे से जा सकते है। दम्भी एव अहकारी मनुष्य स्वर्ग-द्वार तक नही पहुँच सकते। उपनिषदो ने भी उच्च साधना को 'क्षुरस्य धारा' कहा है और बाबा फरीद का कथन है—

**वाट हमारी खरी उड़ीणी।**
**खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी।**

उस ऊपरि है मारगु मेरा ।
सेख फरीदा पंथ सम्हारि सवेरा ॥४॥१॥ राग सूही

कुछ प्रगतिवादी आलोचक इस प्रकार की वाणी पढ कर कहते हैं कि फरीद केवल आध्यात्मिक महापुरुष है। वे धार्मिक शिक्षा तो देते हैं किन्तु सम्याचारिक विषयो पर कुछ नही कहते। उन्होने चासर, सग्रदी अथवा दाते की भाँति सासारिक सदेश देने के लिए वाणी नही कही। [ इस प्रकार के विचारो के लिए देखिए श्री संतसिंह सेखो का लेख : पजाबी कविता दा पितामा—शेख फरोद; पत्रिका 'साडा जगत', दिसम्बर १९५९ ]

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि फरीद की वाणी शरियत की व्याख्या है अथवा मानवी जीवन के शाश्वत विषयो की आलोचना ?

यह बात तो निर्विवाद है कि फ़रीद की वाणी शरियत की प्रचारिका नही। यह तो भावप्रधान काव्य है। दूसरी बात यह है कि इसमे जन्म-मरण, यौवन, वृद्धावस्था, दुःख-सुख, सदाचार, सतोष, खलक की सेवा, हक की कमाई, सहानुभूति, दरवेशी, वैराग्य, ससार की असारता, नम्रता एव सहनशीलता आदि गभीर विषय[1] भावुकता के साथ अकित है—

१. फरीदा पख पराहुणी, दुनी सुहावा बागु ।[2]
नउबति वजी सुबह सिउ चलण का करि साजु ॥७९
पख = पछियो का झुड

२. फरीदा मै जानिआ दुखु मुझकू दुखु सबाइऐ जगि।
ऊचे चड़ि कै देखिआ, तो घरि घरि एहा अगि ॥८१
अगि = अग्नि

३. सबर मंझ कमाण, ए सबरु का नीहाणो ।
सबर संदा बाणु, खालकु खता न करी ॥११५॥
यह सोरठा रूप है । नीहाण = चिल्ला चढाना,
खालक = करतार , खता न करी = अमोघ करेगा ।

---

[1]विस्तार के लिए देखिए सलोक, १७,४६,५८।

[2]बाग एवं बाज का फारसी लिपि में रूप एक सा हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि गुरबाणी के प्रथम लिपिक ने बाज को बाग पढ़ लिया और इसी में सुंदर अर्थ भी समझे, तुकांत का विचार नहीं किया। सलोक ९९ में 'केल करेंदे हंस तो अचिंते बाज पए' का विचार-साम्य भी बाज अथवा बाज़ को उचित ठहराता है। फारसी के ज्ञाता फ़रीद साज़ और बाज़ का तुकांत भी स्वाभाविक रूप में लाए होगे।

प्रगतिवादी आलोचको ने और प्रश्न भी उठाए है कि इस वाणी में जीवन से अनुरक्ति क्यो नही बताई गई ? आत्माभिमान, वर्गसघर्ष अथवा क्राति के विषय क्यो नही आए ? सामती एवं साम्राज्यवादी युग की त्रुटियो और सख्तियो के विरुद्ध लडने की अपेक्षा फरीद हमे दरवेश बन कर ससार से अलग हो जाने की शिक्षा क्यो देते है ? वे धार्मिक भावनाओ को एकातवास के लिए क्यो जगाते है, सामाजिक चेतना के लिए वे उद्यम क्यो नही करते ?

ये सभी प्रश्न एक विशेष दृष्टिकोण वाले मार्ग के विभिन्न पड़ाव है, मानवी जीवन भौतिकता के अधीन है, यह मार्क्सवादी विचार अर्थशास्त्र से खिसक कर नीति और काव्य मे भी आ धमका है। भारतीय दर्शन ने इस प्रश्न को अनेक शताब्दियो पहले ही हल कर दिया था कि मनुष्य की तृप्ति शाति मे है सघर्ष मे नही, निष्काम सेवा ( भक्ति ) मे है अधिकार-चेष्टा मे नही। गीता ने अर्जुन को कहा था—

**१—जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।**
**ते ब्रह्म तद्विदु कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥७।२९**

=जो मेरी शरण होकर जरा-मरण से छूटने का यत्न करते है, वे पुरुष उस ब्रह्म को तथा सम्पूर्ण अध्यात्म को और सम्पूर्ण कर्म को जानते है ।

**२—मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।**
**श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मत ॥२।१२**

=मुझ मे मन को एकाग्र करके निरतर मेरी भक्ति मे लगे श्रद्धा से मुझे जो भजते है, वे मुझको उत्तम योगी मान्य है ।

**३—सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।**
**अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥१८।६६**

=सभी धर्मो के आश्रय ( धर्म ) को त्याग कर केवल एक मुझ सच्चिदानन्द वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मै तुझ को सम्पूर्ण पापो से मुक्त कर दूँगा । तू शोक मत कर । गीता की इसी शैली मे फरीद का ९५वाँ सलोक है—

**आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ ।**
**फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ ॥९५॥**

अध्यात्म की भावधारा मध्यकाल के सूफी सन्तो की वाणी मे समान रूप से प्रचलित रही है। कही-कही तो अभिव्यक्ति का साम्य भी स्थापित हुआ है—

फरीद—

फरीद पाड़ि पटोला धज करी कंबलड़ी पहिरेउ ।
जिनी वेसी सहु मिलै सेई वेसु करेउ ॥१०३

गुरु रामदास—

काइ पटोला पाड़ती कंबलड़ी पहिरेइ ।
नानक घरही बैठिआ सहु मिलै जे नीअति रास करेइ ।१०४

कबीर—

पाडि पुटोला धज करौं कामलड़ी पहिराउं ।
जिहि जिहि भेषा हरि मिलै सोई भेष कराउं ॥
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० १२; दोहा ४२

यह बात भी विचारणीय है कि सिद्धो और जोगियो के काल से दोहा, सोरठा, चौपाई की जो शैली जनकल्याण के काव्य मे चली थी उसे सूफियो-सन्तों ने भी प्रश्रय दिया । जायसीकृत अखरावट के फारसी व्याख्याकार ने लिखा है कि इस भ्रम मे नही रहना चाहिए कि प्रभु के पहुँचे हुए सूफियो और वलियो ने अरबी भाषा के अतिरिक्त वाणी नही रची । बात यह है कि सभी वली अरब देश ही से विशेष सम्बद्ध नही थे । वे जिस देश मे रहे उसी की भाषा का प्रयोग करते रहे । यह भी अनुमान नही करना चाहिए कि किसी वली ने हिन्दी भाषा में वाणी नही कही क्योकि सबसे पहले तो खाजा मुईनुद्दीन ने इस भाषा मे काव्य रचा, इनके बाद खाजा गज शक्कर ने । खाजा गंज शक्कर ने हिन्दी और पंजाबी भाषा में कुछ अशआर ( पद ) रचे जो लोगो मे प्रसिद्ध है । उन्होने दोहरा, सोरठा .. आदि पद रचे ।

यह अनुवाद हैं । मूल फ़ारसी सन्दर्भ डा० मौलवी अब्दुल्हक की पुस्तक 'उर्दू की इब्तिदाई नश्वोनुमा मे सूफियाए कराम का हिस्सा' मे प्रकाशित है ।

सूफी सन्त-साहित्य ने संस्कृति की उस परम्परा को सजीव रखा जिस मे राजनीतिक विधान एव आर्थिक व्यवस्था की अपेक्षा अध्यात्म एवं नैतिक जीवन को अधिक महत्व दिया गया था । दान-पुण्य, परोपकार एवं अशरण-शरण के उदार भावो मे ही उन्हे जीवन की सार्थकता दीखती थी । हमारे देश में जब कभी राजनीति ने वैर, द्वेष, हेरा-फेरी और अत्याचार का मार्ग अपनाया, हमारे सूफी सन्तो ने अध्यात्म पर अधिक जोर दिया क्योकि अध्यात्म-ज्ञान के द्वारा जनता क्रूर शासक से भी निर्भीक रह सकती थी । सच्चे पातशाह के सामने सांसारिक पातशाह झूठे एव क्षणभंगुर प्रतीत होने लगते थे । वास्तव मे यही विचारधारा भारत की वर्तमान स्वतत्रता का सनातन शक्ति-स्रोत है । जैनुल आबिदीन एवं

अकबर की राजव्यवस्था मे उसी विचारधारा के साकार चित्र दिखाई देते है। सन्त तुलसीदास या महात्मा गाधी के रामराज्य मे भी उसी का आदर्श अकित है। रक्तपात, वैर और संघर्ष की अपेक्षा दया, अहिंसा और कल्याण का मार्ग ही मनुष्य को सतुष्ट, शात और सफल बना सकता है। बाबा फरीद तो कष्ट सहन करने और सर्वसेवा की उस सीमा तक जाने का उपदेश करते है जहाँ दूब को लोग मसलते और लताडते हैं किन्तु वह फिर भी हरी-भरी बन कर सेवा ही करती है। इसी स्वभाव से परम गति प्राप्त हो सकती है—

**फरीदा थीउ पवाही दभु। जे साई लोड़हि सभु।**
**इक छिजहि बिआ लताड़ीअहि। तां साईं दै दरिवाड़ीअहि ॥१६**

भारत मे आज के वैज्ञानिक युग से पहले एक प्रकार की प्रतीक भाषा प्रचलित थी। दुनियादारी अथवा माया-मोह का अर्थ उस समय वही था जिसे आजकल सरमायादारी कहते है। इसीलिए फरीद-वाणी मे वैराग्य एव उदासीनता के विषय आए है।

वे ससार-असारता द्वारा धनवानो को मौत याद करवा कर दयावान बनने का उपदेश देते है किन्तु निर्धनो को वृक्षो की सी जीरादि ( सहनशीलता ) धारण करके अपने पाँव पर खडे होने की प्रेरणा देते है—

**फरीदा साहिब की करि चाकरी दिल दी लाहि भरादि।**
**दरवेसां नो लोड़ीऐ रुखां दी जीरांदि ॥६०**

भरादि = भ्राति, जीरादि = धृति, धैर्य।

इस प्रकार समाज को सतुलन एव समता के धरातल पर लाने के लिए बाबा फरीद अहिंसा, दया एव प्रेम का उपदेश देते अघाते नही, उनकी वाणी मे महात्मा बुद्ध, भगवान ईसा एव महात्मा गाधी की सी गूँज सुनाई देती हैं—

**१—फरीदा बुरे दा भला करि गुस्सा मनि न हढाइ।**
**देही रोगु न लागई पल्लै सभु किछु पाइ ॥७८॥**
**२—फरीद जो तै मारणि मुकीआं तिन्हां न मारे घुमि।**
**आपनड़ै घरि जाईऐ, पैर तिन्हां दे चुमि ॥७**

= हे फरीद ! जो मनुष्य तुझे मुक्के ( घूँसे ) मारे, उनको तू मुड़ कर बदले मे न मार बल्कि उनके पाँव चूम कर अपने घर जा।

अपने समय के दुःखी जीवन से उन्होने बेशक बगावत नही की, व्यक्ति की बगावत अथवा चुनौती उस समय असभव भी थी, परन्तु दु.ख के यथार्थ चित्र देकर उन्होने सच्चे अर्थो मे मानवो विकास के लिए विवशता से मुक्ति पाने की तड़प अवश्य उत्पन्न कर दी और बगले भक्तो को अचिंत्य बाज ( मृत्यु ) के

आक्रमण की संभावना बताई है। उन्होने निर्दोषों के मारे जाने का इशारा भी किया है—

**फरीदा दर दरवाजे जाइकै किउँ डिठो घड़ीआल।**
**एहु निदोसा मारीऐ, हम दोसा दा किआ हाल ॥३९॥**

यहाँ वे दु खी जनता के नायक के रूप मे शातिमयी क्राति लाने का प्रयत्न करते दीखते है। उनके जीवन-सदेश को केवल एक निजी भाव नही समझना चाहिए क्योकि उनके सलोक एक साँझी जनसस्कृति के परिचायक हैं।

मेरे विचार मे सूफी संतो ने ईश्वर को प्राप्त करने की साधना भी सर्वसेवा के लिए ही चलाई थी। ईश्वर प्राय जनता-जनार्दन मे दरिद्र-नारायण के रूप में रहता है। इसीलिए धर्म-व्यवस्था पुरातन काल मे राजनीति का अंग थी। राजनीति महान शालीन नैतिकता का दूसरा नाम था इसीलिए रामराज्य मे प्रबल पवित्रता दीखती रहती है।

डा० मुहम्मद इकबाल चाहे यूरोपीय दार्शनिक विचारो से परिचित थे और दलित निर्धनो के प्रति उन्हे अथाह प्यार था। वह लादीनी और धर्म-विमुखता को बहुत हानिकारक समझते थे—

१. **जलाले पादशाही हो कि जमहूरी तमाशा हो।**
**जुदा हो दीं सियासत से तो रह जाती है चंगेजी ॥**

२. **मेरा तरीक अमीरी नहीं फ़कीरी है।**
**ख़ुदी न बेच ग़रीबी में नाम पैदा कर ॥**

गाधी धर्म को त्याग कर राजनीति मे एक पग भी चलना पाप समझते थे और उन्ही के महान भाष्यकार संत विनोबा भावे ने भी लिखा है—

'जैसे पंछी दो पखो के साथ उडता है, वैसे ही मनुष्य आत्मज्ञान एवं विज्ञान इन दो शक्तियो के साथ आगे बढ कर प्रसन्न होता है।'

बाबा फरीद कहते हैं—

**रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के।**
**विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भार थीए ॥**

फ़रीद किसी के मन को दुखाना, फीका बोलना और कडी बात कहना भी पाप समझते थे :—

**इकु फिका ना गालाइ सभना मैं सचा धणी।**
**हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे ॥१२९॥**

एक भी फीका वचन न बोल क्योकि सब मे सच्चा मालिक विद्यमान है। किसी का हृदय न ढाह। यह सारे जीव अमोल मोती हैं।

नानक ने भी लिखा है—

**१. जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु ।**
**फिका बोलि विगुचणा सुणि मूरख मन अजाण ॥पृ० १६।**
**१. नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ ।**
**फिका फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ॥पृ० ४७३।**

गीता ने सभी जन-गण-मन को मणिगण माना है और उनके बीचोबीच पिरोए हुए सूत्र को अतर्यामी की सत्ता के समान माना है—

**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।७।७**

नामदेव ने मानो इसी का अनुवाद किया है—

**सभु गोबिन्दु है सभु गोबिन्दु है गोबिन्द बिनु नहीं कोई ।**
**सूत एकु मणि सत सहंस जैसे ओति पोति प्रभु सोई ॥१।१।**

उसी विचार-परम्परा को सूफी कवि बाबा फरीद ने यो प्रकट किया—

**सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांवणा ।**
**जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे काही दा ॥१३०।**

=अरे सभी के मन माणिक्य के समान है । किसी के मन को ढा देना अच्छा नही । यदि तुझे प्रियतम के मिलन की जिज्ञासा है तो किसी का दिल न ढाना ।

भारतीय साहित्य के आदि काल मे बाबा फ़रीद एक प्रकाश-स्तभ के समान दीखते हैं । उन्होने सामाजिक क्राति के लिए राजनीति के स्थान पर अध्यात्म को अधिक महत्व दिया और नैतिकता को इतना स्निग्ध, विशाल एवं उदार बनाने का प्रयत्न किया कि उसमें हिन्दू-मुस्लिम द्वेष विलीन हो गए । भारतीय सस्कृति उस समय एक भारी सकट की परिस्थिति मे थी । बाबा फ़रीद जैसे सूफियो ने हिन्दू संतो को भी संकोच एवं संकीर्णता त्याग देने की प्रेरणा दी । इन्ही की पवित्र साधना ने सतो के सुधारवाद को प्रश्रय दिया । रामानद, रविदास एवं नानक की वाणी मे फरीद-वाणी की गूँज सी प्रतिध्वनित होती है । उन्होने भी साम्य, ऐक्य एवं शाति के पुनीत भाव अपनी वाणी मे अकित किए हैं । इनके विनयपद भी एक-सी करुणा एवं भक्ति के द्योतक है ।

शताब्दियो के दूरस्थ मार्ग अब टेढी-मेढी पगडडियो के से दीखते है । यह अनुमान लगाना कठिन है कि उस युग के हत्या-काण्डो और अग्नि-काण्डो के भयंकर वातावरण मे वे सूफी सत किस प्रकार अपने मन को शात और सौम्य बना सके ! हिन्दू-मुस्लिम जनता को सहिष्णु और उदार-चेता बनाने मे उन्होने आश्चर्य-जनक सफलता प्राप्त की । वह भारतीय संस्कृति जो अध पतन के कगार पर खड़ी थी उनकी पवित्र वाणी के प्रभाव से पुनः स्वस्थ और प्रसन्न दीखने लगो ।

बाबा फरीद एक महान जन-सेवक थे, उन्होने भारतीय संस्कृति को मानवता-वादी सस्कृति मे ढालने का प्रयत्न किया। उनके अनेक चमत्कार प्रसिद्ध है किन्तु उनका सब से बडा चमत्कार है क्रूर मानव को द्रवणशील बना देने का सामर्थ्य।

वैदिक भक्ति और उपनिषदो के रहस्यवाद के पश्चात् बौद्ध-जैन सिद्धो ने व्यक्तिगत रूप में साधना के नये प्रयोग किए किन्तु इन्ही के बाएँ हाथ वाममार्गी लोग भ्रष्टाचार फैलाते रहे। सतवाणी साकत ( शाक्त ) की निन्दा करने मे कही भी संकोच नही करती।

ब्राह्मण-वर्ग का प्रभुत्व क्षीण पड गया था और उनका रूढिग्रस्त कर्मकाण्ड लोक-मानस के अनुकूल नही रहा था। उन्होने अपने विचारो की नयी व्याख्याएँ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया किंतु उनके भाष्य प्राय सस्कृत-भाषा मे लिखे जाते थे और इस कुएँ के जल से वे लोग वचित रहते थे जिनके पास न रस्सी थी न लोटा। रामानुजाचार्य ( १०१७-११६७ ई० ), मध्वाचार्य ( १२१४-१२८४ ई० ) का सारा भक्ति-साहित्य सस्कृत मे लिखा गया था। दक्षिण के संत भक्ति के इन भावों को अपने क्रियात्मक जीवन के प्रभाव से उत्तरी भारत मे भली प्रकार फैला सके। यही प्रभावाकुर आगे चलकर एक विशाल सास्कृतिक चेतना का रूप धारण कर गए।

उत्तरी भारत मे शैव, जैन, शाक्त और जोगी भी संस्कृत एवं अपभ्र श मे ग्रंथ रचते थे, किंतु उनकी प्रवृत्ति जन-भाषा को प्रश्रय देने मे सबल थी। मुलतान के अब्दुर्रहमान ने 'सदेश रासक' ( सन्नेह रासय ) १०१० ई० मे लिखा था। इसकी भाषा पश्चिमी अपभ्रंश थी। कवि नल्ह के बीसल देव रासो ( ११५५ ई० ) मे और कवि चंद बरदाई के पृथ्वीराज रासो ( ११९३ ई० ) मे डिंगल अप-भ्रंश के साथ-साथ ब्रजभाषा एव खडी बोली का प्रयोग भी मिलता है। १३वी शती मे मुसलमान सूफी हिंदवी को अपने काव्य की भाषा बना रहे थे परतु बाबा फरीद ( ११७३-१२६५ ई० ) की वाणी मे पहली बार जनता की प्रचलित मुलतानी भाषा मे दार्शनिक सामाजिक विषयो पर सफलता के साथ काव्य-रचना हुई। उनकी बोली का ठेठ मुसलमानी लहजा भाषाविज्ञान के इतिहास की एक अमूल्य निधि है। बाबा फरीद ने अपनी वाणी को भारत के अन्य प्रदेशो की जनता के लिए उपयोगी बनाने के हेतु खडी बोलो एव ब्रजभाषा के प्रयोग भी किए है। प्रादेशिक एवं राष्ट्रभाषा के दोनो रूपों ने मानो साझी संस्कृति के बाल-पक्षी को दो प्रबल डैने लगाकर नये भाव-गगन में उडान लगाने के योग्य बनाया।

बाबा फरीद के हिंदी प्रयोग १३वी शती के भाषा-इतिहास के अध्ययन के

लिए महत्वपूर्ण हैं—

**१. फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेखु ।**
**आपनड़े गिरीवान महि, सिरु नीवां करि देखि ।।६।।**

अकल लतीफ = सूक्ष्म बुद्धि; आपनड़े = अपने

**२. देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु ।**
**सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु ।।१०।।**

थीआ = हुआ, इसी से [ था ] का रूप बना है । विस = विष । सकर = शक्कर ।

**३. फरीदा काली जिन्ही न राविआ धउली रावै कोइ ।**
**कर साँई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ ।।१२।।**

काली = जब केशो की रगत काली थी उस यौवन अवस्था से, धउला = जब केश धवल हो गए, पिरहडी = प्यार ।

**४. फरीदा जा लबु त नेहु किआ, लबु त कूड़ा नेहु ।**
**किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु ।।१८।।**

लब = लालच, किआ = क्या, कूडा = कूट, झूठा, किचरु = किन चिर, कब तक, कितनी देर तक, झति = झट, थोडा समय ।

यही भाव महात्मा बुद्ध ने धम्मपद मे यो दिया था ।—

**यथा अगारं दुच्छन्नं वुट्ठि समतिविज्झति ।**
**एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ।।१४।।**

—यमक वग्गो

जैसे कमजोर छत वाले आगार ( घर ) मे से वृष्टि का पानी चू पडता है, उसी तरह असयमग्रस्त व्यक्ति के हृदय मे से वासनाएँ चू पडती है ।

**५. फरीदा जंगलु जंगलु किया भवहि वणि कंडा मोड़ेहि ?**
**वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूँढेहि ।।१९।।**

भवहि = भ्रमता है, वण = वन, मोडेहि = लताडता है, वसी = बसता है; हिआलीए = हृदय मे ।

**६. फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ।**
**जिन्हा खाधी चोपड़ी घणे सहिनगे दुख ।।२८।।**

लावण = सालन, भुख = भूख, खाधी = खाई, सहिनगे = सहेगे; घणे = बहुत

**७. रूखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ ।**
**फरीदा देखि पराई चोपड़ी न तरसाए जीउ ।।२९।।**

**८. अजु न सुती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ ।**
**जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि विहाइ ।।३०।।**

अजु = आज, सुती = सोई, रैणि विहाइ = रात बीते ।

९ बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु ।
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाण मसाण ।३६।

इसी दोहे को कबीर ने तनिक परिवर्तन के साथ अपना लिया है—

बिरहा बिरहा मत कहो बिरहा है सुलतान ।
जा घट बिरह न संचरे सो घट जान मसान ॥
—कबीर वचनावली, दोहा १७२वा

१० फरीदा बारि पराइऐ बैसणा साई मुझै न देहि ।
जे तू एवें रखसी जीउ सरीरहु लेहि ॥४२॥

बार = द्वार, एवे = इसी तरह, बैसण = बैठना ।

११ उठ फरीदा उजू साजि सुबह निवाज गुजारि ।
जो सिरु साई न निवै सो सिर कपि उतारि ॥७१॥

कपि = काट कर ।

१२ कागा करग ढढोलिआ सगला खाइआ मासु ।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस ॥९१॥

आसा राग मे एक पद है जिसमे कई वाक्य हिंदी के है—

रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के....
विसरिआ जिन नाम ते भुइ भारु थीए ॥
. परवदगार अपार अगम बेअंत तू ।
जिन्हां पछाता सचु चुंमा पैर मूं ॥

आसा के दूसरे पद मे भी कई ऐसे वाक्य है—

• बोलीऐ सचु धरमु झूठ न बोलीऐ ।
जो गुरु दस्से वाट मुरीदा जोलीऐ ॥

राग सूही मे रचे इन के दोनो पद तो हिन्दी काव्य के उत्तम उदाहरण है ।

इस प्रकार हम देखते है कि बाबा फरीद जैसे सूफी संतों के उद्यम से एक सामान्य जन-भाषा साहित्य-सृजन के लिए विकास पाने लगी थी । इसी का प्रतिबिम्ब भक्ति-साहित्य एव गुरु-वाणी मे वर्तमान है । इस दिशा मे बाबा फरीद की देन महत्वपूर्ण है ।

वैमनस्य एव द्विविधा के धूम्राच्छन्न वातावरण मे फरीद ने अपनी वाणी द्वारा अमृत वर्षा की । सकोच, वैर, विरोध एव कठोरता को त्याग कर विश्व-बंधुत्व के दिव्य विचार अपनाने की प्रेरणा फरीद ने दी । भारतीय संस्कृति के उस काल का यह प्रयत्न चिरस्मरणीय रहेगा ।

# पंजाब के कुछ सूफी कवि

पंजाबी जीवन सदा ही समन्वय की भावना से भरपूर रहा है। वेदात के योगी, बौद्ध और जैन सिद्ध, गोरख-पंथी और मुसलमान सूफी, निर्गुणवादी सत और सिखो के गुरु इस महान भूमि मे एकता और उदारता, अहिंसा और त्याग, सेवा और भक्ति के ऊँचे आदर्शों का प्रचार करते रहे है। उनकी प्रेम-भरी अमृत वाणी पंजाब की ग्रामीण जनता की संस्कृति का अग बन चुकी है।

इस्लामी राज्य-काल मे जहाँ पजाब ने उच्च कोटि के उल्मा (विद्वान) उत्पन्न किये, वहाँ विशाल मानवता वाले सूफी भी उत्पन्न किये। बहुत से सूफी फारसी मे ही अपना साहित्य रचते रहे है किन्तु कई तो पजाबी मे सुन्दर एवं मार्मिक कविताएँ लिख गये है।[१]

समन्वय की भावना ने पजाबी सूफियो की भाषा को हिन्दी रूप की ओर झुकाए रखा, यही कारण है कि पुरातन हिन्दी (हिन्दवी) के अच्छे नमूने पजाबी सूफ़ियो के कलाम मे ही मिलते है। फरसी लिपि के कारण ये रचनाएँ हिन्दी साहित्य मे अपना स्थान नही पा सकी किन्तु इनका ऐतिहासिक महत्व है। पजाब को इस बात पर गर्व है कि यहाँ सूफी-काव्य की रचना राजनीतिक उथल-पुथल में भी धारावाहिक रूप मे चलती रही है।

मैंने इस लेख मे प्रयत्न किया है कि कुछ पजाबी सूफियो की हिन्दी रचनाओ की ओर हिन्दी प्रेमियो की जिज्ञासा उभार सकूँ। प्राचीन ग्रंथो मे कहीं-कही पाठ अस्पष्ट मिलता है। मैंने उस अस्पष्टता मे अपनी कल्पना के घोडे नही दौडाए और 'ज्यो की त्यो धर दीनी चदरिया' वाला सिद्धात अपनाया है। आशा है कि इस त्रुटि के लिए मुझे क्षमा किया जायगा।

पंजाबी सूफियों के हिन्दी काव्य मे पंजाबीपन की पुट स्वाभाविक ही थी, परतु प्रसंग को देख कर अर्थ समझने मे विशेष बाधा नही पडती। प्रेम की सच्ची भावना भाषा की बाधाओ को पार करके हृदय को द्रवित कर सकती है, इस संबंध मे मौलाना शिबली की यह उक्ति बडे काम की है—

---

१—इस विषय पर ये सुन्दर पुस्तकें हैं—

Punjabi Sufi Poets : Dr Lajwanti

सूफियाँ दा कलाम (गुरमुखी लिपि)—Dr. Mohan Singh.

सूफी कवि संग्रह—हरनाम सिंह शान।

तसव्वुफ का असली मादा-ए-खमीर इश्कि-हकीकी है जो सर-ता-पा जज़बा और जोश है। —शिअ्रुल अजम।

अर्थात् सूफी मत का मौलिक तत्व सच्चा प्रेम है जो नितात भावपूर्ण और वेगवान होता है।

**बाबा फरीद**—पूरा नाम फरीदुद्दीन। वे बाबा शकरगज के नाम से प्रसिद्ध थे। उनका जन्म ११७३ ई० मे हुआ। ये ख्वाजा कुतबुद्दीन बख्तियार काकी के मुरीद थे। स्वय भी बहुत पहुँचे हुए सूफी थे। सियरुल औलिया (१४वी सदी) मे इनकी वाणी का जो नमूना दिया हुआ है वह 'आदि ग्रन्थ' मे भी मौजूद है। इससे सिद्ध होता है कि फ़रीद की वाणी जो 'आदि ग्रन्थ' मे है, प्रक्षिप्त नही है।

बाबा फ़रीद ने तपस्या का जोवन बिताया था। उन्होने शरीअ्त तथा तरीकत के दोनों मार्ग अपनाये। वे निज़ामुद्दीन औलिया के पीर थे।

उन्होंने फारसी, मुलतानी तथा हिन्दवी मे काव्य-रचना की। १२६५ ई० मे उनका विसाल (देहात) हुआ। उनकी वाणी के कुछ नमूने देखिए—

सलोक (दोहे)—

(१) फ़रीद रोटी मेरी काठ की, लावण मेरी भुष।
जिन्हा खाधी चोपडी घणे सहिनगे दु ष ॥
फ़रीदा रती रतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ।
जो तनु रते रब सिउ तिन तन रतु न होइ ॥

(२) साहुरै पेईऐ कंत की कंत अगमु अथाह।
नानक सो सोहागणी जु भावै बेपरवाह ॥

(३) फ़रीदा मैं जानिऊ, दुखु तुझकू दुखु सनाइऐ जगि।
ऊचे चडि कै देखिआ, ता घरि घरि एहा अगि ॥

बाबा फ़रीद का पुरातन हिन्दी मे लिखा एक शब्द यो है—

रागू सूही—

(४) तपि तपि लुहि लुहि[१] हाथ मरोरउ[२]। बावलि होई सो सहु लोरउ[३] ॥
तै सहि[४] मन महि कीआ रोसु। मुझ अवगुन सह नाही दोसु ॥१॥

---

१—फ़रीद, मेरी रोटी काठ की भाँति रूखी-सूखी है, और मै भूख को ही सालन-भाजी समझता हूँ। जिन्होने चिकनी-चुपड़ी रोटी खाई वही बहुत दुःख सहेगे।

२—रते = राते, रतु = रक्त !

४—अर्थ संकेत—(१) लुहि के = तड़प कर, (२) हाथ मलती रह जाऊँ, पछताऊँ। (३) देखती भालती हूँ। (४) शाह ने।

तै साहिब की मै सार न जानी । जोबनु खोइ पाछै पछतानी ।।रहाउ।।
काली कोइल तू कित गुन कालो । अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली ।।
पिरहि बिहून कतहि सुख पाए । जा होइ कृपालु ता प्रभु मिलाए ।।२।।
विधरण[५] षूही मुध[६] इकेली । न को साथी न को बेली ।।
करि किरपा प्रभि साध सगि मेली । जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली ।।
वाट हमारी खरी उडीणी[७] । खनिग्रहु[८] तिषी बहुत पिईणी[९] ।।
उसु ऊपरि है मारग मेरा । सेख फरीदा पथु सम्हारि[१०] सवेरा ।।
—वाणी फरीद जी की, रागु सूही ।।४।१।। आदि ग्रन्थ ।।

**अमीर खुसरो**—जाति के तुरुक थे। जन्म १२५३ ई० मे पटियाली जिला एटा। निज़ामुद्दीन औलिया के मुरीद होने के कारण मुल्तान के सूफियो से भी इनका अच्छा सम्पर्क रहा। मुल्तान के कर्मचारी ख़िजर खा के साथ ये कई वर्ष तक मुल्तान मे रहे थे। मुल्तानी भाषा के प्रभाव के कारण उनकी हिंदवी रचनाओ मे कही-कही पजाबीपन भी आ गया है। अमीर खुसरो ने कोई पाच लाख अर्द्धालियाँ लिखी। ये फारसी के माने हुए कवि थे। उन्हे तूती-ए-हिंद कहा जाता था। इनकी मृत्यु १३२५ ई० मे देहली में हुई।[१]

निम्नलिखित दोहरो मे कई पजाबी रूप है—नदियो (नदी से), आपे, हम कु (को); गल (गला), देऊं (ढूँ), विहाजिया (खरीदा), सेज विछुत्ती (अकेली, सूनी), ओह (वह), सवी (सोई), नारी (नारियाँ), कता कूँ गल लाइ (कतो को गले लगाकर), आपने (अपने) आदि। पुरातन हिंदवी मे ऐसे शब्द रूप बहुत आते है—

वह गए बालम, वह गए निदियो किनार।
आपे पार उतर गए हम तो रहे उरवार ।।
चकवा चकवी दो जने इन कूँ मारो न कोई।
ओह मारे करतार के रैन बिछोडी होइ ।।
सेज बिछुत्ती देख के रोऊँ (हौं) दिन रैन।
पिया करती मै फिरूं, पल भर सुख न चैन ।।
सब नारी सौ सुख सवी, कता कू गल लाइ।
मै दुखियारी जन्म की, दूखी गई बिहाइ ।।

---

(५) भयानक, (६) स्त्री, (७) दुखदायक, (८) कृपाण से, (९) तेज धार, (१०) सँभाल।

१—इनकी सूफी परम्परा और भाषा शैली के कारण ही यहाँ इनको पंजाबी सूफियों में रखा गया है।

ताज़ी छूटा देस में, कसबे पडी पुकार ।
दरवाजे देते रह गए, निकल गए असवार ।।
गोरी सोए पलग पह मुख पर डारे केस ।
चल खुसरो घर आपने, साँझ पडी चौ देस ।।

**शेख़ अबू अली कलन्दर** (१२०७-१३३२ ई०)—इनका पूरा नाम शरफुद्दीन था। इनके पिता इराक से भारत मे आए और पानीपत (पुरातन नाम पाखी पथि) मे बस गए। यही अबू अली कलदर का जन्म हुआ। सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक शाह ने अपने लडके शाह मुबारक खाँ को इनके आश्रम मे भेजा था। इससे शेख़ को बहुत प्रेम था। एक बार जब यह लडका कही यात्रा पर जा रहा था तो शेख़ ने वह दोहा (फारसी अनुवाद के साथ) भेजा—

सजन सकारे जायेगे और नैन मरेगे रोइ ।
विधना ऐसी रैन को भोर कभी न होइ ।।

शेख ने हिन्दी दोहो मे निज़ामुद्दीन औलिया से भी कवि-सम्मेलन किये थे। उन रचनाओ की खोज ऐतिहासिक महत्व रखती है। सभव है कि कोई साहित्य-प्रेमी इन सूफ़ियो की हिन्दी रचनाओ का सग्रह तैयार कर दे।

शेख अबूअली का मज़ार पानीपत मे अब भी अनेक श्रद्धालुओ का तीर्थ-स्थान है।

**शेख़ जमाली**—ये हुमायू के समय के एक सूफी कवि थे। इनका एक रेखता प्रसिद्ध है जिसमे क्रिया-रूप पजाबी भाषा से समानता रखते है। शेख़ पजाब के ही वासी प्रतीत होते है। हज करने के पश्चात् ये दिल्ली मे ही रहने लगे थे, वही १५३५ ई० मे इनका देहात हुआ। फारसी मे भी इन्होने कई काव्य-ग्रंथ रचे। रचना का एक नमूना दिया जाता है—

ख़ार शुदम ज़ार शुदम लुट गया।
दर रहि इश्क तो कमर टुट्टा है।
गरचि बदम गुफ्त रकीबि कठन,
इसका कहा मत करौ यह झुट्टा है।
गाह नगुफ्ता कि जमाली तूं बैठ,
तुम करो क्या, अपना करम फुट्टा है।

**शेख़ अब्दुल क़द्दूस (अलखदास) गंगोही**—इनके पिता का नाम इस्माईल था। ये मुहम्मद चिश्ती साबिरी के मुरीद थे। इन्होने सूफी मत पर कई ग्रन्थ लिखे। हिन्दी काव्य मे अपना नाम अलखदास रखते थे। इनका सबंध पंजाब के

सूफियो से रहा है। इनके पोते शेख अब्दुल नबी का मजार नारनोल मे है।

अलखदास का देहात १५३७ ई० मे हुआ। इनके ग्रन्थो का सम्पादन मौलाना खिज्र जौनपुरी ने किया है।

दोहे—

(१) आप गँवाए पी मिले, पी खोए सभ जाए।
अकथ कथा है पिरम की, जे कोइ बूझे पाए॥

(२) रहसी के वठ नाचूं सखी, पी जी रग चढाय।
तन मन जीव एक रग देखा, तो मै आप गँवाय।

पूरबी राग—

धन करन पी आप सँवारा।
बिन धन सखी कत किन्हारा[१]॥
शह खेले धन माहीं इवा[२]।
बास फूल महिं आछे जिवा[३]॥
क्यो न खेलूं तज संग मीता।
मुझ कारन तै एता कीता॥
अलख दास आखे सुन सोई।
सोई पाक[४] आरथ फुनि सोई॥

**शाह हुसैन**—इनका जन्म लाहौर मे ( १५३९ ई० ) हुआ था। ये जुलाहा जाति के थे। इन्होने लड़कपन मे कुरान याद कर लिया था। ये चन्योट के सूफी बहलोल के मुरीद बने। २६ वर्ष की अवस्था तक आप शरीअत के पाबद रहे। इन्होने दाता गज बख्श की समाधि ( मजार ) पर तपस्या की। सूफी पुस्तको के अध्ययन और सूफियो के सपर्क से आपकी वाणी मे प्रेमकाव्य के सूक्ष्म तत्व भर गए। आपको विरह का कवि माना जाता है। आपने हिन्दू जोगियो के प्रतीको का उपयोग भी किया है। सलोक ( दोहे ) और काफियो मे ही इनके प्रेमगीत मिलते है। भाषा प्राय: पंजाबी है। इनकी मृत्यु १५९३ ई० मे हुई।

इनकी हिन्दी रचनाओ के उदाहरण नीचे दिये जाते है :—

---

१ धन्या (स्त्री) के लिए पति ने अपने आप को सँवारा है।
हे सखी ! स्त्री के बिना कंत कैसे ?

२. प्रियतम प्रिय के मन में ऐसे बसता है जैसे फूल में बास।

३. जीव जंतु।

४. पाक, पवित्र।

ज्यो भावे तिउँ राखि पिआरिया मै तेरे द्वारे परी
कहे हुसैन फकीर निमाणा अदलो फज़ल करी।

राग खट-काफी—

दिन चार चौगान मैं खेल पडी, देखा कौण जीते बाजी कौण हारै।
घोडा कौण का चाक चालाक चालै, देखा हाथ हिमत कर कौण डारै॥
इस जिउ पर बाजीआ आण पडी, देखा गोइ मैदान मै कौण मारै।
हाइ हाइ जहान पुकारता है, समझ खेल बाजी शाह हुसैन पिआरै॥

सलोक—

साजन तुअरे रोसड़े मोहि आदुर करै न कोइ।
दुर दुर करनि सहेलियाँ मैं तुर तुर ताकऊँ तोहि।
जहा देखो तहा कपट है कहूँ न पाइओ चैन।
दगाबाज़ संसार ते गोशा पकरि हुसैन॥
मन चाहे महबूब को तन चाहे सुख चैन।
दोइ राज की सीध मै कैसे बने हुसैन॥

जिस प्रकार सूफियो ने अवधी भाषा मे १६वी शताब्दी से प्रबन्ध काव्य रचने आरम्भ किए, पंजाबी और दखिनी उर्दू मे भी वही परम्परा १६वी शताब्दी तक जीवित रही। दामोदर की 'हीर' (१५५० ई०) से पहले भी कई प्रेम-काव्य रचे गये होगे, परन्तु आज उनका मिलना असभव हो गया। दामोदर की काव्य-शैली पर सूफी काव्य का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। एक स्थान पर तो दामोदर ने 'प्रियतम और प्रेमिका के एकात्म' वाली सूफी उक्ति के अनुसार कह दिया है—

उलटी हीर हीए विच राझा, हाल न जाणे कोई।
राझा रांझा कैनू आखा, मै आपै राझण होई॥

पीलू का 'मिरजा साहिबाँ', हाफिज बरखुरदार का 'मिरजा साहिबाँ', 'सस्सी पुन्नू', और 'यूसफ जुलेखा' मे भी सूफी प्रबन्ध-काव्य वाली शैली है। अहमद, मुकबल और वारिस शाह की 'हीर' मे उसी परम्परा को जीवित रखा गया है।[१]

जायसी ने पद्मावत की कथा को सूफी-मत का रूपक दिया था—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सूआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥

---

१. इस सम्बन्ध में इन प्रेम काव्यों का उल्लेख भी आवश्यक है—सोहनी महींवाल (फजल शाह) शाह रजा और गमनाक सस्सी पुन्नूं (हाशम), फजल शाह॥ यूसफ जुलेखां (अब्दुल हकीम)।

इसी प्रकार वारिस शाह ने अपनी 'हीर' के अत मे इस कथा के रूपक की ओर संकेत किया है—

हीर रूह राझा कलबूत जानो, बालनाथ एह पीर बनाया ए।
पज पीर हवास एह पज तेरे जिन्हा थापना तुझ नूं लाया ए।। आदि

**मुहम्मद अफ़ज़ल**—रियाजुल शुअरा के लेखक अली कुली खान ने बताया है कि मुहम्मद अफज़ल पानीपत के प्रसिद्ध सूफी कवि हुए है। इन्होने किसी हिन्दू स्त्री के लिए ब्राह्मण का रूप धारण करके मथुरा के एक मन्दिर मे अध्यक्ष बनने की सच्ची साधना की। उन दिनो मौलाना का नाम गोपाल था। प्रेम की अनुभूति से ओत-प्रोत उन्होने अपनी 'बिकट कहानी' लिखी जो एक तरह से बारह मासा है। इसकी शैली हिन्दी के ठेठ प्रबन्धो जैसी है।

विरहिणी स्त्री अपने प्रियतम का वियोग अपनी सखियो से बडे मार्मिक शब्दो मे वर्णन करती है। भाषा हिन्दी-पजाबी मिश्रित है और फारसी वाक्याश भी कहो आ गए है।

मुहम्मद अफजल का देहात १६२६ ई० मे हुआ। 'बिकट कहानी' मे से कुछ प्रसंग—

सुनो सखियो बिकट मेरी कहानी। भई हूँ इश्क के गम सो निमानी।
न मुझ को सूख दिन न नीद राता। बिरहो की आग सो तन-मन जराता।
तमामी लोग मुझ बौरी कहे री। खिरद गुम करदा व मजनूँ कहे री।
अरी जिस शख्स कू यह देव लागा। सियानो देख उस कूं दूर भागा।
अरी यह नाग जिस कू डग लावे। न पावेगा दारू ज्यूरा गवावे।
अरी यह इश्क है या क्या बला है। कि जिस की आग मे सब जग जला है।
कि जिस के बीच यह आतश परी रे। वुही दिन रात सुलगत है सरीरे।
वुही जाने कि जिसके तन लगी है। बिरहो की आग तन मन मे दगी है।
प्याला हुस्न की मै का पिलाया। किया बेखुद मुझे मुझ सो भुलाया।
बिकट किस्सा, निपट मुश्किल कहानी। दिवानी की सुनो सखियो कहानी।
मिलन पाछे बिछडना भी कठिन है। कहो अब जिंदगी का क्या जतन है।

**बाबा लाल**—इनका जन्म कसूर (जिला लाहौर) के पुरी खत्री कुल मे सवत् १६४७ मे हुआ। १० वर्ष की अवस्था से ही वैराग्य हो गया था। शाहदरा के बाबा चेतन के शिष्य रहे। बहुत समय भ्रमण और ज्ञान-गोष्ठी मे लगाया। दाराशिकोह से इनकी गोष्ठी सं० १७०६ मे हुई (असरारि मारफत)। इन्होंने वेदान्त और सूफ़ी मत का समन्वय करते हुए दोहे, चौपाइयाँ और फुटकल गीत रचे थे।

चौपाई—

जाके अंतर ब्रह्म प्रतीत । धरे मौन गावे गीत ।।
निसि दिन उन्मन रहित खुमार । शब्द सुरत जुड एको तार ।।
न गृह गहे न बन को जाय । लाल दयालु सुख आतम पाय ।।

साखी—

आशा विषय विकार की बाध्या जग ससार ।
लख चौरासी फेर मे, भरमत बारबार ।।
जिहँ की आशा कछु नही, आतम राखे सुन्य ।
तिहँ की नहिं कछु भर्मणा, लागै पाप न पुन्य ।।
देहा भीतर श्वास है, श्वासा भीतर जीव ।
जीवे भीतर बासना, किस बिध पाइये पीव ।।
जाके अंतर बासना, बाहर धारे ध्यान ।
तिहँ को गोविद ना मिलै अंत होत है हान ।।[1]

**शेख शरफ़**—ये बटाला के रहने वाले थे। इनके पूर्वज पुरी ( खत्री ) थे। अपनी स्त्री के द्वारा भौजाई पर आसक्त होने का दोष लगने पर इन्होने फकीरी जीवन बिताने का प्रण कर लिया। लाहौर मे शेख मुहम्मद फ़ाजिल कादरी के मुरीद बने और थोडे समय मे ही उच्च कोटि के सूफी समझे जाने लगे। इन्होने अपनी वाणी पजाबी और हिन्दी दोनो भाषाओ मे रची है। इनकी मृत्यु लाहौर मे १७२४ ई० मे हुई। इनका एक गीत है—राग धनासरी

मै पुछा पडत जोइसी। पीअ कबहु मिलावा होइसी।
मिल दरद विछोडा खोइसी। तप रहीअस माए जी मै कंत न देखिआ दुइ नैन भरे। रहाउ ।।

नित काग उडारउ बन रहउ। निस तारे गिनती न सवउ।
जिउं लवै बबीहा तिउ लवउं। मै पी बिन पल न विहावै।
जिउं जल बिन मछली तडफड़ावै। जिउ बिछरी कूज कुरलावै।
शेख शरफ़ न थीउ उतावला। इक चोट न थीवन चावला।
किआ दरसन भूला बावला ।।

**बूल्हा शाह**—इनका जन्म १६८० ई० पडोकी जिला लाहौर मे हुआ था। ये जाति के सैयद थे। लडकपन और जवानी मे शाह इनायत कादरी की शिष्य-परम्परा मे रहे और उस समय शरीअत को भी जरूरी समझते थे। फिर इन्होने साधु दर्शनीनाथ के संपर्क मे आकर हिन्दू-साधना का अनुभव भी किया। दसम

[1]. संत काव्य, पृष्ठ ३६६ से उद्धृत

द्वार, अनहद नाद, कँवल, मुरली आदि कई हिन्दू प्रतीक इनके गीतो मे मिलते है। इसके उपरात इन्होने हाल और फाल की मस्ती प्राप्त की और इश्क को शरीअत से उत्तम माना[१]। इसके कलाम मे बारह मासा, काफियाँ, अठवारे, सीहरफियाँ आदि कई पजाबी काव्यरूप मिलते है परन्तु इनकी काफियाँ ( प्रेम-गीत ) बहुत प्रसिद्ध है। उर्दू अक्षरो मे इनकी वाणी का एक सग्रह 'कानूने इश्क' के नाम से छपा मिलता है। इनका विसाल ( देहात ) १७५८ ई० मे हुआ।

अद्वैतवाद—

न हम खाकी ना हम आतश। न पाणी न पौण।
कुप्पी दे विच रोड खडकदा। मूरख आखण बोले कौण॥
बुलहा साईं घट घट रमिआ जिउं आटे विच लौण।
मै विच मै नही रहीआ काई।
जब की तुम सग प्रीत लगाई॥
जद वसल वसाल बणाइएगा।
ता गुगे का गुड खाइएगा॥
सिर पैर न अपणा पाइएगा॥
इह मै होर न किसे बणाई।
मै विच मै नही रहीआ काई॥

विरहानुभूति—

अब लगन लगी किआ करिए।
नाह जी सकिए नाए मरिए॥
तुम सुणो हमारे बैना।
मोहि रात दिने नही चैना॥
हुण पीआ बिना पलक न सरिए।
अब लगन लगी किआ करीए॥

प्रेम की उत्सुकता—

मुरली बाज उठी अन घाता।
सुण-सुण भूल गईआ सभ बाता॥

**शेख बहाउद्दीन**—१७वी सदी के एक सूफी हुए है। ये अज्ञात-वास को पसंद करते थे इसी लिए सरहिंद, लाहौर, पाकपटन, हासी, हिसार, रोहतक,

[१] **बुलहा धरमसाला विच्च धड़वाई रहंदे, ठाकरद्वारे ठग।**
**मसीतां विच्च कुसत्ती रहँदे आशक़ रहण अलग॥**

पानीपत मे कई वर्ष रहे और गुजरात, दक्षिण, बिहार आदि प्रातो मे भी भ्रमण कर आए थे। दास घनूँ बैरागो इनके मित्र थे। इन्होने रोहतक के मुल्ला अनवर और पानीपत के शेख अल्लाह दाद से विद्या प्राप्त की थी। ये सगीत विद्या में भी निपुण थे। इनकी हिंदी रचनाएँ प्राय राग माला के आधार पर है। उदाहरणार्थ—

इन नयनन का यही बिशेष।
हौ तुझ देखो तूँ मुझ देख॥
अब मन मान्यो रे बदरा नीकी भाँति जुर-जुर आयो।
नीको मै घटा ल्या तू नीकी हिं गरज सुनायो॥
नीकी हिं नीकहि तै सौ रहस-रहस झड लायो॥

दायम हयात काइम करामात मुलाकात निअमत पाऊँ हम
नदी तीर विरम भारी भीर फिरत मरहत होतिया तयारी रम परम।
रहम कीजै किरपा थी दीजै काखो जावरो सम।
तुम खाजा खिज्र वे मिहतर इलियास रह दूर पास या जगत अगम।

**शेख नसीरुल हक**—ये शेख फाजिलुद्दीन बटालवी ( देहात १७३७ ई० ) के मुरीद थे। इन्होने फारसी, पजाबी और हिंदी मे कविताएँ रची। गज़ल शैली मे उनकी एक कविता देखिए—

या गौस सैयद मुहीउद्दीन लेते खबर इस ज़ार की।
कर कर तसद्दक पाइयो काइ झाकी देहो दीदार की॥
हीयडे पडी बिरहो अगन जलना पडा मुझ रैन दिन।
मुझको बता दो वह सजन देवे खबर दीदार की॥
राकस बिरहो जब आइया इस मास सभ चुन खाइया।
अब हाड खावन धाइया जो खब है इस खुखार की॥
देखे बिना प्यारे सजन क्योंकर कटूँ मै रैन-दिन।
ल्याओ मुझे देओ कफ़न, होवे कम्हा जंजाल की॥
देवो दिखाई ए पिया तुम बिन सकूँ कैसे जिया।
बिरहो मुझे बेकल किया, ताकत नही इस भार की॥
निसिदिन मुझे है रोवना, रो-रो मुझे जी खोवना।
इह मुख लहू से धोवना नश्तर लगी है सार की॥

**करमअली शाह**—ये पजाब के रहने वाले थे। इन्होने बटाला और मालियर कोटला का उल्लेख अपनी रचना मे किया है। इन्होने अपने पीर का नाम

हुसैन दिया है। इनको सगीत विद्या की अच्छी जानकारी थी। इनका जीवनकाल १८वीं शताब्दी माना जा सकता है। नीचे इनकी रचना का एक नमूना दिया जाता है :—

ठुमरी—

नैनन की झिड़क न दे, रसिया।
हम तो तुमरे, दरस के प्यासे,
जो चाहे सो ले, रसिया।

पकड़ कटरिया हाथ से अपने।
मेरे घर दे आन गले, रसिया।

पीर हुसैन के, करम अली तूँ,
धर सीस को कदम तले, रसिया।

**मूसा**—ये १८वी शताब्दी के एक सूफ़ी कवि हुए है। पीर 'गौस' की स्तुति मे उनकी एक कविता लिखी मिलती है। इसकी भाषा मे उर्दू-हिंदी का मिश्रित रूप मिलता है। इस कविता की कुछ पक्तियाँ दी जाती हैं—

तुझ नेह की कथा सीता हूँ। कट सीस कपट ले भीता हूँ॥
तुझ याद की भिखिया कीता हूँ। और खून जिगर का पीता हूँ॥
तुझ नाम लिये से जीता हूँ। मै नेक अमल सी रीता हूँ॥
तुझ दर की माटी लीता हूँ। मुख पर यह खाक रमीता हूँ॥
कर दिल कूँ बद मुनीर मेरे। या गौसुल आज़म पीर मेरे॥

**शाह मुराद**—ये भी १८वी सदी के एक सूफ़ी कवि थे। नौरंग शाह के उत्तराधिकारी थे। मज़ार लारेदा गाँव ( डेरा इस्लाइल खान में ) है। उर्दू की ग़ज़ल शैली उन दिनो निखरने लगी थी, पर अभी हिन्दी प्रेमकाव्य का प्रभाव बना हुआ था। इनके कलाम की बानगी यह है—

अब क्या करे कोई रे जिया आँखो से पिया दूर होया।
तन लकडी हो जल राख भया, यह सीना गर्म तनूर होया॥
वह नूर सजन को जिसने दिया, यह चाँद चौदस का हक ने दिया।
यह सूरज है वह आप पिया, पुर नूर होया मशहूर होया॥
दिन रात पिया बिन सोती हूँ, दो नयनन हझू भर रोती हूँ।
मुख लाल शराब सो धोती हूँ, नित रोना मुझ दस्तूर होया॥
तेरे दरसन की मदमाती हूँ, तेरे काज सो नित बर लाती हूँ।
तेरे गुन की माला गाती हूँ, रग तारा तन तंबूर होया॥

दिन रात जो तेरी चाह मुझे, यह आग बिरह की नाह मुझे।
नित जलने हियरे माहि मुझे, जल सुर्मा तन कोहि तूर होया ॥
इह शिग्रर ग्रजब उस्ताद सो है, इह दिलबर हुसनाबाद सो है।
इह रखता शाह मुराद सो है, मकबूल होया मन्जूर होया ॥

**गुलाम जीलानी रोहतकी**—ये बचपन मे ग्रपने मामू के पास पूरब मे रहे। उन्ही की देख-रेख मे ये जवान होकर फ़ौजी सरदार बन गए, किंतु सूफी साधना का ग्रभ्यास भी करते रहे। फिर नौकरी छोड कर फ़कीर हो गए ग्रौर ग्रपना ग्राहार केवल ११ तोला कर लिया। तपस्या के कारण इन्हें उच्च सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। दो बार करबला की यात्रा की, हज भी कर ग्राए थे। १८वी सदी ई० के ग्रत मे इनका देहात हुग्रा। इनकी रची हुई चौपाइयाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

देखा देखी करतब करै। बिन कहिने किछ ध्यान न धरै।
इसी करनी का मत कर गिग्रान। ग्रधी चूही थोथी धान ॥
हर के ध्यान छाड कर, मन की बतियाँ लै।
सगरी माया छाड दे, झूठे जग में लै ॥
फिर हर की कर साधना, सारी मत मत खो।
बातडियाँ घर उजडे, चुल्लहे दालद हो ॥

इसी युग मे पजाबी सूफी उर्दू भाषा को भी ग्रपना रहे थे। गुलाम कादर ने 'रमजुल इश्क', फ़कीर ग्रल्लाह ने 'दुरि मकनून' ग्रौर मियाँ नूर मुहम्मद ने 'फ़ुत-हुल रमज़' मसनवियाँ लिखी।

**मीराँ शाह जालंधरी**—इनके पिता का नाम वली मुहम्मद था, जिनका मज़ार जालधर मे है। इनका सबंध चिश्ती साबरी सूफ़ी सम्प्रदाय से रहा। मीराँ शाह २०वी सदी के प्रथम चरण मे साहित्यिक महत्ता प्राप्त कर चुके थे। इन्होने मसतन शाह देहलवी की प्रशसा ग्रपने काव्यग्रन्थ 'गुलदस्ता मीराँ शाह' मे की है। इस ग्रन्थ मे उर्दू ग्रौर हिन्दी की कई कविताएँ भी मौजूद है। इनकी काव्यशैली बुल्हा शाह जैसी है।

बिशन-पद—

प्रेम नगरिया धूप पडी, मन मोहन रूप दिखायो री।
सगल ग्रँधेरा मिट गया साधो, किशन मुरारी ग्रायो री ॥
मुख चदन पर मुकट बिराजे, जगमग जोत भई तिरलोकी।
दया करत जब मद का प्याला, मो को ग्रान पिलायो री ॥

तोरी दया पर तन मन वारूँ, ए सतिगुर गिरधारी जी।
सुषमन साथ अनद कियो जब, आप से आप मिलायो री ॥
वहम दुई का मिट गयो मन से, एकोकार के साधन से।
जप अर जाप गए मिट दोनो, जब गुर ग्यान बतायो री ॥
मीराँ शाह तब चैन पड़ी जब, महाँ मूरत का मेल हुआ।
सोवत जागत एक हुआ जब, मन मे एक समायो री ॥

## मध्य काल में पंजाब के सूफी केन्द्र

पेशावर, सियाला कोट, मुलतान, उच्च ( झंग ), चनियोट, लाहौर, कसूर, पाकपटन, बटाला, कलानोर ( गुरदासपुर ), दीपालपुर, समाना, सुनाम, सरहिंद, जालंधर, पानीप्रत।

इराक़ी ने मुलतान के बहाउद्दीन जकरिया से शिक्षा प्राप्त की थी।

पंजाब ही ऐसा प्रदेश है जिसमे हिंदू सूफी भी विद्यमान रहे है। दारा शिकोह के ज़माने मे बाबा लाल, चंद्रभान ब्राह्मन, वली राम, भाई नद लाल गोया आदि अनेक हिंदू सूफी थे। मुसलमान गुरु नानक देव को हिंदू समझ कर नानक शाह कहते आए हैं। भूपतराम बेगम बैरागी ( निधन १७२० ) बहुत उच्च कोटि के सूफ़ी थे। उनकी मसनवी मौलाना रूम की मसनवी के समकक्ष हैं—

दर आइना कम निगर कि ख़ुद बीं न शवी।
ख़ुद आइना शो ता हमगी-ए-ऊ बीनी ॥

दर्पण मे न देखो, कही दभी न बन जाओ। स्वयं दर्पण बन जाओ कि उसकी सर्वता को देख सको।

# हिंदी गद्य के सूत्रपात में सूफ़ियों का योग

हिंदी गद्य का इतिहास अभी तक सुचारु ढग से सम्पन्न नही हुआ। ले देकर कुछ वैष्णव वारताएँ मिलती है जिनकी भाषा अपरिमार्जित ब्रज है।[१] वास्तव में यह विषय हिंदवी उर्दू के विकास के साथ घनिष्ठ सबंध रखता है। दुर्भाग्य से हिंदी के आलोचक फारसी-उर्दू के पुरातन ग्रथो का अध्ययन नही कर सके। इस लिए तथ्यो का सकलन सुचारु रूप मे उपलब्ध नही हुआ।

केल्लाग ने अपना हिन्दी-व्याकरण १८७५ मे लिखा था। उस समय तक हिन्दी गद्य की खोज कुछ भी नही हुई थी और यह विचार प्रचलित था कि हिन्दी गद्य का निर्माण ईसाई मिशनरियो ने किया है।

Indeed, prose in Hindi until recently has been quite exceptional, and almost owes its existence to the stimulus of a foreign government, or the labours of missionaries, who, as might be expected, are for the most part unable to write a foreign language except in prose. Native writers, left to themselves, have almost without exception written in verse, and their labours have resulted in a system of versification which for inexhaustible variety, as well as for its intrinsic beauty, is probably unsurpassed Rev. S H Kellogg : —A Grammar of the Hindi Language, p. 546, Chapter XIII, edn. 1955.

किन्तु सूफियो के पुरातन ग्रथो में गद्य के इतिहास की सामग्री बिखरी पडी है। सबसे पहले मुईन उल्हक (चिश्ती) ने हिन्दी ज़बान मे प्रवचन दिए, उनके बाद खाजा गजि शक्कर ने। इन्होने हिन्दी और पंजाबी में कुछ काव्य-रचनाएँ की और वे लोगो मे प्रसिद्ध हैं—अशआर, दोहरा और सूरत आदि। सभी इस ज़बान मे बातचीत करते थे। (अखरावट के फारसी भाष्यकार का हिन्दी अनुवाद।)

—बाबा फ़रीद (निधन १२६५ ई०) के शिष्य जमालुद्दीन हासी मे रहते थे। उनकी एक सेविका बहुत साधवी थी। बाबा फ़रीद उसको मादरि-मोमना

[१]उदाहरणों के लिए देखिए हिंदी साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल, गद्य खण्ड, पृ० ४०३—७।

कह कर पुकारते थे।

एक बार उन्होने अपना आसन बुरहानुद्दीन ( सपुत्र जमालुद्दीन ) को दिया। इस पर मादरि-मोमना ने कहा—"खाजा बाला है।"

बाबा फरीद ने कहा, 'पूनो का चाँद भी बाला है'। ये पुराने वाक्य—'सियर उल औलिया' मे सुरक्षित है—पृ० १८२।

—पानीपत के बूअली कलंदर ( निधन १३२३ ई० ) का गीत सुनकर जब अमीर खुसरो द्रवित होकर सजल हो उठे तो उन्होने पूछा—

'तू काका कुछ समझदा है?'

यह वाक्य भी पुरातन फारसी इतिहासो मे सुरक्षित है।

—खाजा **नसीरुद्दीन चिराग** देहलवी ( १४वी शती ) ने अपने शिष्य सिराजुद्दीन को अलाउद्दीन तल के पास बगाल जाने का आदेश देते हुए कहा—'तुम ऊपर वह तल।'

—**बीबी आइशा** ( बाबा फरीद की बेटी ) ने बुरहानुद्दीन को दौलताबाद मे कहा था[१]—

"ऐ बुरहानुद्दीन! साडी धीअ को किहा हसदा है?"

—**बुरहानुद्दीन** ( निधन १४४६ ) अपने बेटे शाह महमूद के यहाँ ( बटवा, अहमदाबाद ) मे शाहराजू के जन्म पर कहने लगे—

"भाई महमूद खुश हो, असा थी वड्डा, तुसा थी वडा, आसाडे घर जलाल जहानिया आया।"

—तुहफ़हतुल अकराम, पृ० १८

—निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य, अर्थात् बाबा फरीद के प्रशिष्य **बंदा निवाज गेसूदराज** ( १३२७-१४२१ ई० ) देहली से आकर गुलबर्गा ( दक्षिण ) मे रहने लगे थे। इनकी गद्य पुस्तिका मअराजुलआशिकीन मे पजाबी मिश्रित हिन्दवी लिखी है—

**१. भूखों मोए सो खुदा कुछ अपड़ीता है। खुदा कूं अपड़ने की इस्तअदाद होर है।**

**२. वाजब की आँख सो गैर न देखना सु। हिर्स के कान सो गैर न सुनना सू। हसद की नक्क सों बदबूई न लेना सू। बुग़ज की जबान सू बदगोई न करना सू। कीना की शहवत कूं गैर जागह खर्चना सू।**

---

[१]उर्दू की नश्वो नुमा में सूफियाए कराम का हिस्सा, पृ० १४।

३ आपे मिअराज किया निशानियां मै तुझे देता हूँ इतिया मेरिया बातां खूब सुन कर तेरी उम्मत कूं मै बंदियाँ कूँ खबर देता हूँ।. ..

ऐ मुहम्मद, तेरी मुहब्बत मानियाँ, सो मेरी ताइत। यो नवद हज़ार बाता अल्लाह किया होर मुहम्मद किया होइयाँ होर तीस सिपारे मे कुरान के जुमला किया।

—सैयद मुहम्मद राजू कत्ताल की माता जन्नत खातून ( १४३० ई० ) ने कहा था मुलतानी भाषा मे—

तुसा राजे असा खाजे।

—**शाह मुहम्मद गौस** गवालियारी ( निधन १५६२ ई० )—भेखी बच्चा खुदा को न मेले।

=बाह्य वेश मे आस्था रखने वाला ईश्वर से मिला नही सकता।

शब्द [ मेले ] पजाबी रूप मे है।

—शेख **वजीहुद्दीन**, जन्म १५०४ ई०, निधन १५८६ ई० अहमदाबाद मे। आपका प्रवचन ग्रन्थ ( मलफूजात ) 'बहरुलहकाइक' है। इस मे आपके कई मौलिक विचार उनकी अपनी भाषा मे है—

१. 'क्या हुआ जो भूखो मुआ, भूखो मोए थी क्या खुदा कू अपड़िया, खुदा को अपडने की इस्तअदाद होर है।'

२. **मै कहा या किधा रियाजत कीती।**

३. **जैसी तजल्ला ( ज्योति ) पकड़े तैसा इरादा देवे।**
**अगर अब्द की तजल्ला पकड़े अब्दियत इरादा देवे॥**

४. **आरिफ उसे कहवेंजो खुदा सो भरिया होवे।**

—**शाह मीरांजी शम्सुल उश्शाक**—यद्यपि बहुत देर दक्षिण मे रहे किन्तु उनका सम्बन्ध मुलतान और उच्च के सूफियो से काफी रहा। फिर वे बाबा फरीद के शिष्य निजामुद्दीन औलिया के प्रशिष्य बदा निवाज की शिष्य-परम्परा मे थे इसलिए उनकी बोली मे पंजाबी का लहजा कायम रहा। मर्गूब-उल्कलूवा मे उन्होने कुरान एव हदीस का भाष्य हिंदवी मे लिखा है—

१. पैगम्बर कहे—जे कुछ काम करेगा कोई, खुदा का नाउँ न लेकर, तो ओह काम पाइमाल होएगा।

२. होर इस आलम मे खूबियाँ देवेगा, कहिया है, आपस कूं पछाने लोगा कूँ होर परहेजगाराँ कूँ। पैगम्बर अलेह अस्सलाम कहे—खुदा की आशनाई जिसे कोई बूझता है, उनो कीआ तू रह कर उनो थे बूझ, उनो थे तूं सुन होर चुप न को अच।

इह चार बाताँ का पंद है। यो शरियत मे पहले पाँओ रख कर तरीकत शरियत मुंज है।

—**शाह बुरहानुद्दीन जानम** ( मीराजी के सपुत्र ) ने १५८२ ई० से पहले अपने गद्य ग्रथ कल्यतुलहकाइक मे लिखा है—

सवाल—"यह तन अलाधा दिसता, वलेकिन जेता बिकार टूटने नही बल्कि सुतत्र बिकार रूप दिसता है। टुक तिल करार नही, ज्यो मर्कट रूप।"

जवाब—ऐ आरिफ जाहिर तन के फिअल सों गुजरिया। बातन कर्तब दिसते। इसका नाउ सो मुमकिनुल्वजूद। दूसरा तन सो भी कि इसका इन्द्रियन का विकार व चेष्टा करनहारा सो वही तन, नही यो खाक व सुख-दुख भोगन हारा। जेता बिकार रूप वही दूसरा तन, तो तू नजर कर देख। यह तन फहम सो गुजरिया तो गुन इसका क्यो रहे।

—**सैयद मीरां हुसैनी शाह**, हैदराबाद दखिन मे रहते थे, निधन-काल १०७४ हि० ( १६६४ ई० ) अपनी गद्य रचना किताबि-शरह तुमहीद हमदानी मे लिखते है—

ऐ अजीजाँ ! ए बात नही सुनिया, बादशाहाँ घोडे मुस्तअद किए बाज नही सवार होते। होर घोडे मे कुछ खोड अच्छे तो भी नही कबूल करते। यअनी पीर के इश्क मे पुख्ता हुए बाज खुदा के इश्क मे न आ सकती होर देख न सकती। अगर इश्कि खालिक नदारी बारे इश्कि मख्लूक मुहैया कुन। इसका मअना खुदा की पछानत काबिल नही तो अव्वल अपनी पछानत कर।

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि हिंदवी एवं हिन्दी की प्रारम्भिक रचना शैली को सूफियो ने ही विकसित किया और उस गद्य की भाषा को सशक्त बनाने मे पजाबी बोली ने विशेष योग प्रदान किया।

—**दाराशिकोह** ( निधन १६५८ ई० ) के साथ पजाबी सूफी **बाबा लालदास** का सवाद ( गोष्ठी ) हुआ था। दाराशिकोह के प्रश्न फारसी में थे, बाबा लाल के साध भाषा मे, जिसकी बानगी यह है—

१—आपणे मुख ते आपणी इस्तुति करनी ( फकीर की रूसियाही है )।

२—फकीर के निरबाह मात्र, पर अघोरजताई जोग नही [ गदागरी ] परालब्ध के पहुँचावणेहार ईशर है।

३—परमेशर अर परमेशर के लोका नाल [ मुहबत वाजिब है ] मायाधारिया नाल प्रीत विप्रीत दोनो भली नही।

# सूरदास के काव्य में लोकतत्त्व

मध्य-युगीन भारत मे कचन-कामिनी की निंदा और जगत मिथ्या के विचारो ने गार्हस्थ्य-जीवन को प्राय. निराश, उदास और निरालम्ब बना दिया था, किन्तु सूरदास ने सगुन-लीला-गान द्वारा आशा, आस्था और आनद का सदेश दिया। वे जानते थे कि लोक-मानस को उद्वेलित करने के लिए, वशी की सी मधुर तान कारगर हो सकती है, ज्ञान की तीखी कृपाण-धार नही। उन्होने ज्ञान की सशक्त और जागरूक आँखो मे, भक्ति की मस्ती भर, असीम को ससीम से मिला देने का प्रयत्न किया। कृष्ण की रहस्यात्मक दिव्य अनुकम्पा को, राधा की सहज स्वाभाविक प्रेम-भावना के साथ मिला दिया। लौकिक और अलौकिक तत्त्वो सहित सुन्दर अभिव्यक्ति को ही उत्कृष्ट साहित्य माना जाता है।

'सूर सागर' मे माखन-चोर और चित्त-चोर कृष्ण को पाप-पुण्य-निर्लिप्त दिखा कर लोक-रजन और लोक-रक्षण की पावन भावनाओ की पुष्टि की गई है। उन्होने प्रेम की अमोघ शक्ति द्वारा निर्भीकता और शाति का मधुर संगीत प्रसारित किया है—ऐसा सगीत जिसकी प्रतिध्वनि आज भी भारत के कोने-कोने मे सुनाई देती है।

हकीकत को मजाज, अथवा परम तत्व को मानवी रूप देने मे उस युग तक बहुत कम कवि सफल हुए थे। नेति-नेति की चाबुक मानो उन्हे त्रसित कर देती थी, किन्तु सूरदास की प्रबल प्रतिभा और कुशल लाक्षणिकता ने महाभारत के राजनीतिज्ञ और भागवत के परम ब्रह्म कृष्ण को मानवी हाव-भाव के साथ नटखट, चंचल एव मोहक रूप मे साकार कर दिया।

पनघट, होली, हिंडोल, बसंत, रास, दधि-दान, राधा-मान और गोपी-चीर-हरण की लीलाओ मे लोक-मानस के सामूहिक उल्लास-चित्र जो सूर की पवित्र वाणी ने अकित किए है, उनकी आभा सदैव परिनिष्ठ काव्य-गगन के सूर्य का परिचय देती रहेगी।

कृष्ण की बाल-माधुरी के अमृत-तर्पण से सूर ने लोक और परलोक की शंकाओं, बाधाओ और विषमताओ को सदा के लिए शात कर देने का प्रयत्न किया है। उनकी शुद्ध भक्ति-भावना से हमारा यही क्षणभगुर ससार स्वर्ग की होड़ करता दिखाई देता है।

चोटी के बढ़ने, परछाइं को माखन खिलाने, चाँद को पकडने और दही मे

चीटी निकालने के मुग्धकारी प्रसगो के साथ, बालकृष्ण का लोक-रक्षक रूप भी दर्शनीय है। यथा—

**मय्या ! मोहि बढ़ौ करि लै री !**
**होऊँ बेगि मै सबल सबनि मै सदा रहूँ निर्भै री।**
**सूरदास स्वामी की लीला, मथुरा राखौं जै री ।।**

सत्य, शील और सौन्दर्य के अवतार कृष्ण के लोकरक्षक चरित्र को सूर ने कुशल चित्रकार की भाँति गोपनीय रखा है, वरन् उनका अटल विश्वास था—

(i) **सूर स्याम कौ रूप महारस,**
**जा कें बल काहू न डरै।**

एव, (ii) **तुव प्रताप बल बदत न काहू,**
**निडर भए घर-चेरे !**

ऐसी सत्यनिष्ठा और शील भावना के कारण ही विरहिणी राधा कहती है—

**सखी री हरि को दोष जिनि देहु,**
**ताते मन इतनो दुख पावत,**
**मेरोइ कपट सनेहु।**

व्यक्तिगत सम्पत्ति का समाजीकरण साम्यवाद है, किन्तु व्यक्तिगत प्रेम और सुख सम्पदा का सामाजिक अथवा सार्वजनीन विकास ही भक्ति और सर्वोदय है। सूरदास ने रासलीला, दानलीला आदि प्रसगो मे आत्म-समर्पण और सामूहिक उल्लास के भव्य प्रतीक खडे किए है। राधा की मान-लीला मे कृष्ण के अपराधी प्रतीत होने का कारण व्यक्तिगत आसक्ति और गर्व ही है जिसके विपरीत, द्वारका-गमन के समय, कृष्ण को वीतराग दिखाया है और इसी मे सूर के करुण काव्य का उत्कर्ष निहित है।

व्यष्टि का अहकार और स्वार्थ पिघल कर समष्टि के कल्याण मे विलीन होता दिखाई देता है। आत्मीयता और सवेदना मे ही साम्य-योग के दर्शन करवाए गए है, क्योकि समष्टि-कर्म पूजामय, रासमय अथवा सगीत-मय हो जाता है। कालिया-दमन, इंद्र-कोप-हरण, वरुणालय से बाबा नद की मुक्ति, विदुर के घर साग खाना, कुरूप कुब्जा का स्वागत स्वीकार करना, अनेक असुरों का सहार करना और अर्जुन का सारथी बनना—ये सभी लोक-हितकारी काम क्रातिकारी भक्त-वत्सल भगवान कृष्ण ने किए।

सूर सागर के गहन अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ काव्य-कला और भक्ति-भावना मे लोक-तत्व की दार्शनिकता लुप्तप्राय हो गई है जैसे गगा

और यमुना के बीच सरस्वती अंतर्धान हो गई है। वैसे भी कृष्ण की योगमाया और नाम रूपा मुरली को सुनकर सहृदय व्यक्तियो पर टोना सा हो जाता है—

**चित आकरष्यो नन्द के मुरली मधुर बजाइ।**
**जिहि लज्जा जग लाज्यौ सो लज्जा गई लजाइ॥**

लोक-सग्रह की भावना ने भी भेद-बुद्धि नष्ट करने का उपक्रम किया है। गोपकुमारियाँ, कृष्ण के अतिरिक्त सूर्य, शिव और गौरी को पूजती है। स्वय कवि ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को एकरूप माना हैं। तथा—

**लोक रचै, राखै अरु मारै। सो ग्वालनि संग लीला धारै॥**

और उनका विश्वास है कि—

(१) **जाति पाँति कोई पूछत नाहीं श्रीपति के दरबार।**

(२) **बैठत सबै सभा हरिजू की, कौन बड़ौ को छोटु॥**

ऐसे सबल लोक-तत्वों के आधार पर ही सूरदास कहते हैं—

**गोविंद गाढ़े दिन के मीत, स्याम गरीबनिहू के गाहक।**

[एव] **तुम हरि सांकरे के साथी।**

सूरदास इन्ही गुणो को लोक-मानस मे घटाना चाहते है, संबोधन चाहे वे कृष्ण को करें अथवा अपने आपको। जैसे—

**जन के उपजत दुख किन काटत।**
**जैसे प्रथम अषाढ़ आंजु तृन, खेतिहर निरख उपाटत।**

और—**नन्द नन्दन पद कमल छाँड़िकै, माया हाथ बिकानौ।**
**सूरदास आपहि समझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ॥**

काव्य-रचना के प्रथम चरण मे सूर ने वैराग्य-भाव से जगत को मृग-तृष्णा, सेमर, चौपरि, सपना, छिलछिलौ नीर और जलद की छाही माना था। द्वितीय चरण मे वे ललित लीलाओ के वर्णन मे मग्न हो गए थे। सभवत ऐसे पदो के आधार पर एक आलोचक महोदय मान बैठे है कि 'सूरदास अपने क्षेत्र मे सागर है, परन्तु लोक-हित के स्वादु जल का उसमे प्रायः अभाव है।'

इस धारणा के उत्तर मे सूरदास पुकार उठते है—

**का न कियौ जन-हित जदुराई।**
**तुम बिन और न कोउ कृपानिधि पावै पीर पराई।**

सूर-काव्य मे ऐसे लोक-तत्त्व भी मिलते है जिन्हे आज के संसार ने विशेष महत्त्व दिया है—

१. पंचायत का निर्णय शिरोधार्य मानते हुए, कहा है—

**मैं मेरी, कबहू नहि कीजे, कीजै पंच सुहाती।**

२. घूस खाना और कपट करना बहुत बुरा है, सूर के शब्दो मे—

**अहकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही।**
**लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही ॥**

३ दु ख का अँधेरा मिटाने के लिए सक्रिय सहयोग आवश्यक है, यथा—

**तेल तूल पावक पुट भरि धरि, बनै न बिना प्रकासत।**
**कहत बनाय दीप की बतियाँ, कैसे धौं तम नासत ?**

४. धन की अधी पूजा मे सतोष नही। यह भाव देखिए—

**सिर पर धरि न चलैगौ कोऊ, जो जतननि करि माया जोरी।**
**राज-पाट सिंहासन बैठौ, नील पदुमहु सौ कहै थोरी ॥**

५. लोक-सेवा के बिना जीवन निष्फल है। यथा—

**निठुर रहत जैसे जल मीनै, तैसिय दसा हमारी।**
**सूरदास धिक-धिक है तिन्ह कौ, जिन्है न पीर परारी ॥**

सूरसागर के परिनिष्ठ काव्य मे लोक-रुचि और लोक-हित को इतना महत्त्वपूर्ण समझा गया है कि अनेक पदो की शैली लोकगीतो की-सी हो गई है। एक बानगी है—

**कन्हैया बलि हालरू रे!**
**गढ़ि गढ़ि ल्यायौ बढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरू रे।**
**इक लख माँगे बढ़ई, दुइ लख नंद जु देहिं बलि हालरू रे ॥**
**रतन जटित वर पालनौ, रे रेसम लागी डोर बलि हालरू रे ॥**

ग्रामीण सरलता, उदारता एव प्रेमनिष्ठा के वातावरण मे ही उनकी कल्पना उन्मुक्त उडाने लगा सकी है। मथुरा के शहरी एव राजसी वैभव के चित्रण मे उनकी सात्विक प्रतिभा खुल नही सकी। गोप-गोपाओ की भोली-भाली बात-चीत मे जो आनद उन्हे प्राप्त था, वह असुरो की मार-काट और राजनीति की भूल-भुलैयो मे असभव था। पराक्रम, कठोरता और दण्डनीति मे उनका वात्सल्य और सखा-भाव क्योकर सुरक्षित रह सकता था ?

उन्हे लीलामय कृष्ण का मुरली-धर रूप जितना मधुर लगता था, उतना चक्रधारी रूप नही। फिर भी, यह कहना अनुचित है कि उन्होने लोक-रक्षा की ओर ध्यान नही दिया। सच तो यह है कि जन-जीवन मे दृढ़ आस्था और निर्मल अनुराग भर कर उन्होने लोक-मानस को स्वस्थ और समृद्ध बनाने की चेष्टा की है। उन्होने कबीर की भाँति, समाज पर व्यग्य-बाण नही चलाए; न तुलसी-दास की भाँति, कर्मकाण्डो और मर्यादाओ की बाढ लगाई, बल्कि उन्होने पावन प्रेम-भाव जागृत करके जन-जन को भक्ति-रस प्राप्त करने का अवसर दिया।

अत उपेक्षित शूद्र और स्त्री-वर्ग को भी नवीन आशा और नवीन शक्ति का वरदान मिला।

सूर-काव्य के साधारण अध्ययन से भी यह विचार स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की सौंदर्य-भावना न तो दयनीय है और न उपेक्षणीय। कृष्ण की लीलाओ द्वारा इस भावना को सुघड और सबल बनाने का सफल प्रयत्न सूरदास ने किया। उन्होने अपनी कविता एव सगीत-प्रतिभा जनता-जनार्दन की सेवा मे अर्पित कर दी, और स्वय एकरस रहने की साधना की—

**गयें सोच आयें नहिं आनद, एसौ मारग गहियै।**
**कोमल वचन, दीनता सब सौं, सदा आनदित रहियै॥**

# तुलसीदास जी की उपदेशात्मक कविता

सिद्ध और जैन कवियो ने हिन्दी के आदि काल मे ही दोहा-शैली मे साधारण जनता को व्यवहार की बाते सिखाने का प्रयत्न किया था। एक ओर तो वे गिरे-पडे लोगो मे आत्मगौरव भर देना चाहते थे दूसरी ओर तामसिक एव राजसी वृत्ति वाले लोगो को सात्विक वृत्ति की ओर लाना चाहते थे। उनके उपदेशो का अध्ययन उसी युग के सूफी-काव्य के साथ-साथ किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग सामाजिक विषमता को मिटा देना जरूरी समझते थे। क्रूरता, दभ, विलास आदि दुर्गुणो के त्याग की शिक्षा उन्होने शासक और सामत वर्ग को लक्ष्य करके दी थी।

**गोरखनाथ**—बनखड जाऊ तो बिरछ न फलना।
नगरी जाऊ तो भिषिया न मिलना ॥
बोल्या गोरखनाथ मछिन्द्र का पूता।
छाडिने माया भया अवधूता ॥

**जैन आचार्य देवसेन**—भोगह करहि पमाणु जिया इदिय म करि सदप्प।
हतु ण भल्ला पासिया दुद्धे काला सप्प ॥

**फरीद**—रुक्खो सुक्को खाइ कै ठडा पाणो पा।
न वेख पराइया चोपडोया न तरसाएँ जो ॥

**साअदी**—बदस्त आह् कि तफ्ता करदन खमीर।
बिह् अज़ दस्त बर सीना पेशि अमीर ॥

( गर्म-गर्म चूना अपने हाथो से गूँध-गूँध कर रोजी कमाना बिहतर है, किन्तु किसी अमीर वजीर के सामने हाथ बाँधे खडे रहना अच्छा नही। )

**अमीर खुसरो**—कूसि शह खाली व बागि गुल गुलश दर्दि सर अस्त।
हर कि कानिय शुद ब ख़ुश्कोतर शहि बह्रोबर अस्त ॥

( शाही नक्कारा अन्दर से खोखला और पोच होता है और उसकी तेज़ आवाज़ सिर-दर्द का कारण होती है। इस भाव-सागर मे सन्तुष्ट व्यक्ति ही जल-थल का राजा है। )

अमीर खुसरो का हिन्दी दीवान ( काव्य-सग्रह ) लुप्त हो चुका है किन्तु उनकी फ़ारसी रचनाओ, विशेषकर मसनवी 'मतलअ अल अनवार' से उनकी उपदेशात्मक कविता की रूप-रेखा स्पष्ट देखी जा सकती है। यह विचारधारा फैजी

की 'मर्कजि-अद्वार' तक सजीव दीखती है। इन दोनो के बीच मे भक्तिकाल का विस्तृत काव्य है।

भक्तिकाल मे अनेक सूफी सत-कवियों ने सूक्ति-पद्धति पर रचनाएँ की, किन्तु जिस काव्य-कौशल और मार्मिकता के साथ उपदेशात्मक कविता को उच्च साहित्य की कोटि में तुलसीदास जी ले गए थे, न उनसे पहिले कोई ले जा सका और न बाद मे। उनका उपदेश सत्य और शिव के आलोक मे चलता है इसीलिए उसमे अपार सौन्दर्य भी है।

उपदेशात्मक रचना उद्बोधन और शिक्षा के रूप मे हुआ करती है। साहित्यिक आलोचना मे इसका अभिप्राय वह काव्य है जिसमे सदाचार, नीति और धर्म का पुट हो।[१] स्पष्टता, सादगी, भावमाधुरी और नीति-चातुरी इस काव्य के गुण-विशेष गिने जा सकते हैं।

प० रामचद्र शुक्ल ने सूक्ति को उत्तम काव्य नही माना, परन्तु रसात्मक वाक्य को सच्चा काव्य मानने मे उन्हे कोई सकोच नही था। इन दोनो बातो को निकट से देखने पर स्पष्ट हो जायगा कि शुक्ल जी को सूक्ति के बौद्धिक और कृत्रिम उपकरणो (अलकारो) पर आक्षेप रहा। अलौकिक आनद को लम्बाई-चौडाई के हिसाब से नही मापा जा सकता। एक मर्मस्पर्शी दोहे का भी उतना ही महत्व हो सकता है जितना किसी महाकाव्य का। सुन्दर अभिव्यक्ति ही काव्य-कला का आधार है। जितनी सुन्दर, पावन और मगलकारी भाव-प्रतिमाएँ तुलसीदास अपनी दिव्य वाणी मे सहज रूप मे दे गए है, हिन्दी के किसी और कवि मे पाना कठिन है।

तुलसीदास जी के समय तक हिन्दू विद्वान् अपना उच्च साहित्य देववाणी (सस्कृत) मे रचते आए थे। रामचरित को लोक-भाषा मे लिखना एक प्रकार का दोष माना जाता था। तुलसीदास ने लोक-मंगल के लिए लोक-भाषा को ही महत्व दिया और उच्च विचारधारा तथा ज्ञान-विज्ञान का वह मदिर जो अछूता था सभी के लिए खोल दिया। सत लोग इस दिशा मे बहुत कुछ कर चुके थे किंतु विद्वन्मंडली अपनी पुरानी धारणा पर स्थिर थी। तुलसीदास ने वेद, शास्त्र आदि

[१]—Didactic—instructive, having the manner of a teacher. Applied in literary criticism particularly to poetry having a moral or religious tone, a type of work which was especially popular in the 18th century.

—The Concise Oxford Dictionary of English Literature, 1651, P. 132.

सस्कृत ग्रंथो का ज्ञान लोक-भाषा मे देने का कार्य आरम्भ कर दिया। उनका विश्वास था कि प्रेम के आलोक मे आकर गिरी-पडी भाषाएँ भी बलवान हो सकती है—

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच।

एक और दोहे मे इसी विचार को प्रकट करने के लिए कहा है कि उत्तम अनाज को चाहे मिट्टी की हाँडो मे चाहे सोने के पात्र मे पकाएँ वह स्वादिष्ट ही होता है, इसी प्रकार हरिहर का यश सुकविगण सुर-गिरा (सस्कृत) अथवा नर-गिरा (भाषा) मे वर्णन करते है।

हरि हर जस सुर नर गिरहुँ, वरनहिं सुकवि समाज।
हाँडी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज॥

तुलसीदास का युग शासक-वर्ग के लिए विलास और उल्लास का युग था। जनता के दुःख-दर्द को लिखने वाला कोई इतिहासकार न था। यह काम तुलसी-दास जी ने परोक्ष रूप मे किया। मुगलो का शासन ऊपर से बहुत सुन्दर और न्यायशील दीखता था, किन्तु इसकी प्रेरणाशक्ति दूषित थी। मुगल-काल के सबसे बडे इतिहासकार प्रो० जदुनाथ सरकार ने मुगल-कालीन न्यायिक व्यवस्था पर विचार करते हुए लिखा है—"किन्तु सच्ची बात यह है कि उस (मुगल बादशाह) के तख्त तक कुछ इने-गिने फरयादी ही पहुँच पाते थे और वे अपीले जो उसके हाथ मे दी जाती थी उनमे से बहुत कम पर वह निर्णय करने का अवकाश पाता था, यद्यपि कई मुगल बादशाहो ने, विशेष कर जहाँगीर ने, कर्तव्य-पालन के प्रदर्शनार्थ सोने की जंजीरि-अदालत अपने शाही महल के बालाखाना से लेकर आगरा के किले के बाहर वाली जमीन तक लटकवा रखी थी।"[१]

प्रो० सरकार ने यह भी निर्धारित किया है कि मुगल शासको का शहरीपन

[१], "But, from the nature of things, only a few plaintiffs could reach his throne and he could spare for adjudicating only a small portion of the appeals that were handed to him, though several of the Mugal Emperors, notably Jahangir, made a parade of their devotion to duty by hanging a golden chain from their palace-balcony to the ground outside Agra Fort.
—Mugal Administration P. 107

**इसी बात की पुष्टि लेन-पूल** (Stanley Lane-poole) **करते हैं** "But it in not on record that anybody was hardy enough to pull the bell." (Mediaeval India, page 299)—**अर्थात्, यह बात अभिलेखो द्वारा सिद्ध नहीं हो सकी कि कोई आदमी इस जंजीरि-अदालत को खींचने का साहस भी कर सकता था।**

ग्रामीण जनता पर बोझ था ।

मुगल शासन प्रातीय राजधानी मे ही केन्द्रित था। यह शहरी ढग का शासन था, यूनानी परिभाषा मे तो नही, किन्तु यह ऐसी सरकार थी जो शहरो मे रह कर काम चलाती थी। इसका सम्बन्ध प्रधान रूप मे शहरो और निकटवर्ती कस्बो मे रहने वाले लोगो से हुआ करता था। उन मुगलो के शाही शिकार, शाही निशात बाग और शाही सैर-सपाटे के शौक को ध्यान मे रख कर यही कहना होगा कि मुगल जाति भारत मे परले दर्जे की शहरी जाति थी। उन मुगलो के दरबारी कर्मचारी और प्राय यहाँ की मुसलमानी आबादी के मध्यम श्रेणी के बडे लोग उन्ही के अनुरूप थे। गाँव की ओर अरुचि और घृणा भाव से देखा जाता था। वे लोग ग्रामीण जीवन को अभिशाप समझ कर उससे दूर भागते थे।[१]

इन तथ्यो के प्रकाश मे अब तुलसीदास जी की कविता का अध्ययन किया जाय तो भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि उनकी वाणी युग-वाणी थी, उनका साहित्य अपने समय का प्रतिबिम्ब था और उनके दिव्य मानस का आदर्श भी—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचड।
सेनापति कामादि भट दभ कपट पाषड[२] ॥२६३॥
हृदय कपट बर वेष धरि वचन कहहिं गढि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यो क्यो मिलिए मन खोलि ॥३३२॥

---

१. The (Mughal) Administration was concentrated to the provincial capital It was a city government, not in the Greek sense of the term, but rather as a government living and working in cities and mainly concerning itself with the inhabitants of the cities and their immediate neighourhood The Mughals—after due allowance has been made for their love of hunting 'and laying pleasure-gardens and their frequent marches—were essentially an urban people in India and so were their courtiers, officials and, generally speaking, the upper middle classes of the Muhammadan population here The villages were neglected and despised, and village life was dreaded by them as a punishment. (J N. Sarkar : Mughal Administration; P. 55)

२तुलनां के लिए सूरदास जी की यह रचना भी देखिए—

यौवन मद जन मद मादक मद धन मद विषमद भारी।
काम-विवस नर नारि फिरत दुइ पंचसरहिं फिरि मारी ॥

बलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव ।
मुए मार सुविचार हत स्वारथ साधन एव ॥३४९॥
बडे बिबुध दरबार तें भूमि भूप दरबार ।
जापक पूजक पेखिअत सहत निरादर भार ॥३९३॥
सुर सदननि तीरथ पुरिन निपट कुचालि कुसाज ।
मनहुँ मवासे मारि कलि राजत सहित समाज ॥५५९॥
साखी सबदी दोहरा कहि किहनी उपखान ।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान ॥५५४॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि दिखावहि डाटि॥५५३॥[१]

तुलसीदास की कविता लोक-मंगल के लिए थी । उन्होने जनता की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक दुर्दशा को सुधारने का भरसक प्रयत्न किया ।[२] उन्होने अकबर-काल मे देखा था कि अकबर की मनोकामना बुरी नही थी किन्तु उसके राज्याधिकारी अच्छे न थे । अत जनता से बेगार ली जाती थी, फालतू कर लिए जाते और उनपर कई प्रकार के अत्याचार होते थे ।[३] उनकी मूक वेदना को वाणी देने वाले तुलसीदास ही थे । उन्होने सुझाया "साहब ते सेवक बडो जो निज धरम सुजान (५२८) ।" और भी स्पष्ट रूप मे कहा है —

प्रभु ते प्रभुगन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ ।
कर ते होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ ॥५०१॥
जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग ।
कहिअ कुवास सुवास तिमि काल महीस प्रसग ॥५०५॥

आदर्श राजा को तुलसीदास ने सूर्य के समान अकर्म अवस्था को पहुँचा हुआ

[१] इस सम्बन्ध मे ये दोहे भी उल्लेखनीय हैं—नं० ३४६, ४०३, ४०४, ४१२, ४९९, ५००, ५३७, ५४८, ५५७, ५६४.

—गोस्वामी तुलसीदास जी रचित 'दोहावली'—गीता प्रेस गोरखपुर ।

[२] पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस विषय मे कहा है—"भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कहा जा सकता है तो इन्हीं महानुभाव (तुलसी दास) को ।"—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १३८ ।

"तुलसीदास ने जो लिखा, सो आपके लिए लिखा, मेरे लिए लिखा ।" गांधी—दिल्ली—डायरी, पृ० २८० !

[३] विस्तृत विवरण के लिए देखिए Religious Policy of the Mughals : S. R. Sharma.

माना है। उसके हाथो उपकार अनजाने ही होते रहें। वह जनता से कर इतना ही प्राप्त करें जो जनता खुशी-खुशी दे सके, फिर सूर्य की भाँति अमित, विषमता-रहित दान करे—

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोई।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होई ॥५०८॥
रैअत राज-समाज घर तन धन धरम सुबाहु।
सात सु सचिवन सौपि सुख बिलसइ नित नर नाहु ॥५२१॥

तुलसीदास एक निर्भीक उपदेशक थे। उन्होने शासक-वर्ग की त्रुटियाँ स्पष्ट रूप मे दिखा दी है। कही-कही तो उन्हे डाँट-डपट भी बतला दी है—

राज करत बिनु काज ही करहि कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकध ज्यो जइहै सहित समाज ॥४१६॥
राज करत बिनु काज ही ठटहि जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरु राज ज्यो जइहै बारह बाट ॥४१७॥
गोड गँवार नृपाल महि जमन महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दड कराल ॥५५६॥

तुलसीदास जी यथायोग उपदेश को अधिक महत्त्व देते थे। उन्हें मर्यादा का सदा ध्यान रहता था—

कै जुझिबो कै बूझिबो दान कि काय-कलेस।
चारि चारु परलोक पथ जथा जोग उपदेस ॥४५१॥

किन्तु उन्होने दूसरो की भलाई को उत्तम माना है—

अनहित भय परहित किए पर अनहित हित हानि।
तुलसी चारु विचारु भल करिअ काज सुनि जानि ॥४६७॥

एक दोहे मे उन्होने लोगों की स्वार्थ-वृत्ति पर खेद प्रकट किया है और यही सिद्ध किया है कि रामचरित्र ही कलिकाल मे लोगो को बचा सकता है—

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कुचालि पर प्रीति ॥५४५॥

गुरु जी के प्रश्नो के जो उत्तर रामचरित मानस मे लिखे है, वे उपदेशात्मक काव्य के उत्तम उदाहरण बन गए हैं—

नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही ॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान विराग भगति सुभ देनी ॥

नहि दरिद्र सम दुख जग माही। सत मिलन सम सुख जग नाहीं।

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ।।

परम धर्म श्रुति विदित अहिसा । पर निदा सम अघ न गरीसा ।।

सती-प्रथा को तुलसीदास जी ने अपनी आँखो देखा था । बहुत सी स्त्रियाँ तो केवल प्रथा-पालन को ही आवश्यक समझती थी, मन मे इसे अनुचित मानती थी। तुलसीदास ने अपने स्वामी की वियोगाग्नि मे सदा जलते रहने और घर ही बैठो सती कहलाने वाली को उत्तम माना है—

परमारथ पहिचान मति लसति विषय लपटानि ।
निकसि चिता ते अध जरति मानहुँ सती परानि ।।२५३।।
सीस उघारन किन कहेउ बरजि रहे प्रिय लोग ।।
घरही सती कहावती जरती नाह वियोग ।।२५४।।

ससार-त्याग की भावना का अन्तिम छोर निराशा ही है । अत. कई व्यक्ति यह कहते है कि इस प्रकार के उपदेश से मनुष्य कर्महीन हो जायेगे—

तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम ।
सेये सोक समर्पई विमुख भए अभिराम ।।२५८।।

वास्तव मे यहाँ निराशावादी होने का उपदेश नही है, अपितु विलासी लोगो को वासनाभरी इच्छाओ से बचने की युक्ति बताई गई है । इसी प्रकार नम्रता, दया, क्षमा, त्यागवृत्ति, दानवीरता, सहनशीलता, सन्तोष आदि उदार गुण लोक कवि अपने सामतो और शासको मे देखना चाहते थे । शेख सम्रदी ने अपना 'बोस्ता' मे लिखा है—नम्रता तो बडे लोगो को ही शोभा देती है, भिखारी यदि नम्रता करे तो यह उसकी आदत मानी जायगी, शोभा नही ।[१]

मध्यकालीन फारसी कवियो की उपदेशात्मक कविता पर विचार करते हुए मौलाना शिबली[२] भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि शाही दरबारो मे कई ऐसे षड्यंत्र और जोड-तोड के काम हुआ करते थे जिनसे जनता को दु ख पहुँचता था । खुशामद, विलास और क्रूरता के इस वातावरण मे त्यागवृत्ति को बढावा देना लोक-कवियो ने उचित समझा । हुकूमत के नशे मे जगत की नश्वरता की खटाई डालना ज़रूरी हो गया था । जनता के कुशल-क्षेम को बनाये रखने मे इन कवियो की वाणी ने उत्तम योग प्रदान किया ।

[१]तवाजुअ ज़ि गर्दन फ़रोज़ां निकूस्त ।
गदागर तवाजुअ कुनद खुए ऊस्त ।।
[२]शिअरुल अजम, भाग ५, पृ० १६७-६८ ।

सत्सग से किस प्रकार बुरे लोग सुधर जाते है इस विषय पर भी तुलसीदास जी ने बहुत कुछ कहा है, किन्तु यह भी स्पष्ट कर दिया है कि जडबुद्धि और पापात्मा पर कुछ प्रभाव नही पड़ता।

तुलसी भलो सुसग तें पोच कुसगति सोइ।
नाउ किनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ ॥३५८॥
सत संगति मुद मगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई ॥
नीच निचाई नहिं तजइ सज्जनहू के सग।
तुलसी चदन विटप बसि विष नहि तजत भुजग ॥३३७॥

सफलता का एक क्षण ही होता है, फिर पछताए कुछ नही होता—

अवसर कौडी जो चुकै बहुरि दिए का लाख।
दुइज न चदा देखिए उदौ कहा भरि पाख ॥३४४॥
तुलसी मीठी अमी तें मॉगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिनु कालकूट ते नीच ॥४४६॥

चापलूसी क्रूर से क्रूर व्यक्ति को अच्छी लगती है किन्तु यह विनाश का कारण है। सँपेरा साँप की प्रशसा के कई-कई मन्त्र पढता है और बीन बजाता है। साँप उसे अपना सिर सौप बैठता है—

बिबि रसना तनु स्याम है बंक चलनि विष खानि,
तुलसी जस श्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ॥३१३॥

तुलसीदास ने नारी को दो रूपो मे देखा है। एक रूप तो सीता जी का है जो प्रकृति का प्रतीक तो है किन्तु ब्रह्म ( राम ) के ससर्ग से अति पावन है। दूसरा रूप उन्होंने उस माया-रूपी नारी का दिया है जिसमे ब्रह्म से विमुखता है, यथा शूर्पणखा, केकयी आदि का। तुलसीदास जी ने केवल माया-रूपी नारी की निंदा की है, नारी-जाति की नही।

(१) काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥२६६॥
(२) लोभ के इच्छा दभ बल काम के केवल नारि ॥२६५॥
(३) मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥२६२॥

'रामचरित मानस' मे नारी-धर्म का उपदेश यो दिया है—

वृद्ध रोगबस जड धनहीना। अध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किअ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥

विषय-वासना मे लीन रहना पशुता है और विषय-त्याग ही उत्तम जीवन है—यह भाव तुलसीदास जी ने अनेक बार अनेक रूपों मे व्यक्त किया है—

विषया परनारि निसा-तरुनाई सो पाइ पर्‌यो अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख, रोग, वियोग, बिलोकतहू न बिरागहि रे॥
ममता बस तै सब भूलि गयो भयो भोरु, महा भय, भागहि रे।
जरठाइ-निसा रबिकाल, उग्यो, अजहूँ अघ जीव ! न जागहि रे॥३१॥
—कवितावली

माता सुमित्रा ने लक्ष्मण को इस प्रकार सीख दी—

गुरु पितु मातु बधु सुर साई। सेईअहि सकल प्रान की नाई॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते॥

*

राग, रोष, इरिषा, मद, मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार विकार बिहाई। मन क्रम वचन करहु सेवकाई॥

इसी प्रकार लक्ष्मण जी का निषादराज को उपदेश आदि प्रसग उल्लेखनीय है।

तुलसीदास अहकार को बुरा समझते है। उनके लिए बड का वृक्ष इसीलिए श्रेष्ठ है कि वह बिना (फूले) अभिमान किए सब को सुख देता है। मनुष्य का भी यही आदर्श होना चाहिए।

तुलसी भल बर तरु बढत निज मूलहिं अनुकूल।
सबहिं भॉति सब कह सुखद दलनि फलनि बिन फूल॥५२६॥

तुलसीदास डाह को अच्छा नही समझते—

पर सुख सपति देख सुनि जरहिं जे जड बिनु आगि।
तुलसी तिन के भाग ते चलै भलाई भागि॥३८८॥

तुलसी के अनुसार बडो के उपदेश का सहज रूप से पालन करके ही हम अपना जीवन सफल बना सकते है—

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहि सुभाय।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनम जग जाय॥५४०॥

सच्ची मित्रता मे छल-कपट बाधक होता है—'मान्य मीत सो सुख चहे सो न छुए छल छाँह'।३२४।

उन्होंने नेम से प्रेम को बडा माना है—

बड़ि प्रतीति गठिबध ते बडो जोग ते छेम ।
बडो सुसेवक साइ ते बडो नेम तें प्रेम ॥४७३॥
जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि विलोकत पातक भारी ।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्र के दुख रज मेरु समाना ॥

सेवक सठ, नृप कृपन, कुनारी । कपटी मित्र, सूल सम चारी ॥

तुलसीदास समन्वयवादी थे । उन्होने कई जगह एक ही साँस मे शिव, सूर्य, राम, कृष्ण, सगुण, निर्गुण सभी की स्तुति की है । उन्होने सहनशीलता और दया को धर्म का मूल कहा है । गाधी जी को उनकी यह विचारधारा बहुत प्यारी लगती थी । उन्होने इसकी व्याख्या बडे सुन्दर शब्दो मे की है—"मेरी कल्पना का हिन्दू-धर्म मेरे लिए अपने आप मे पूर्ण है । बेशक उसमे वेद शामिल है, मगर उसमे और भी बहुत कुछ शामिल है । यह कहने मे मुझे कोई नामुनासिब बात नही मालूम होती कि हिन्दू-धर्म की महत्ता को किसी भी तरह कम किए बगैर मैं मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी धर्म मे जो महत्ता है उसके प्रति हिन्दू धर्म के बराबर ही श्रद्धा जाहिर कर सकता हूँ । ऐसा हिन्दू धर्म तब तक जिन्दा रहेगा, जब तक आकाश मे सूरज चमकता है ।

इसी बात को तुलसीदास ने एक दोहे मे यो कहा है—

दया धरम को मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छाँडिए, जब लगि घट में प्राण ॥

क्रोध के स्थान पर ही प्रेम उत्तम है—

बोल न मोटे मारिए मोटी रोटी मारु ।
जीति सहस सम हारिबो जीते हारि निहारु ॥४२६॥
जा मधु मरै न मारिये माहुर देइ सो काउ ।
जग जिति हारे परसुधर हार जिते रघुराउ ॥४३३॥
रोष न रसना खोलिए बरु खोलिअ तरवारि ।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिअ बचन बिचारि ॥४३५॥

इटली के पुराने कवि प्रापर्टियस ( Sextus Propertius ) ने कहा था कि प्रेम करने वाला अन्धा होता है । अंग्रेजी की कहावत है love is blind । तुलसी दास ने वैर को भी अधा माना है और बडे सुन्दर शब्दो में कहा है—

तुलसी वैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि ।
सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुरसरि बारि ॥३२६॥

जूझे ते भल बूझिबो भली जीति ते हार।
डहके ते डहकाइबो भलो जो करिअ बिचार ॥४३१॥

समर्थ पापी से वैर करना अपनी मौत आप खरीदना ही है—

धाह लगै लोहा ललकि खैचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी सो बयर जानि बिसाही मीचु ॥४७६॥

आचार्य रामचद्र शुक्ल के अनुसार 'अलकारो की योजना उन्होने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावो या तथ्यो की व्यजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं, अपनी अलग चमक-दमक दिखाते हुए नही।' ( हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १४५।) निम्नलिखित उपदेशात्मक दोहो मे शब्द और अर्थ अलंकार अपने आप ही आ गए है, केवल अलंकारो की सजावट के लिए इन्हे नही रचा गया—

बस कुसग चह सुजनता ताको आस निरास।
तीरथहू को नाम भो गया मगह के पास ॥२६२॥
घर छाँडे घर होत है घर कोन्हे घर जाइ।
तुलसी घर बन बीचही राम प्रेम पुर छाइ ॥२५६॥
मिथ्या माहुर सज्जनहिं खलहि गरल सम साँच।
तुलसी छुवत पराइ ज्यो पारद पावक आँच ॥३३६॥
बुध किसान सर वेद निज मते खेत सब सीच।
तुलसी कृषि लखि जानिबो उत्तम मध्यम नीच ॥४३५॥
जहाँ राम तहँ काम नहि जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहि रवि रजनी इक ठाम ॥

तुलसीदास जी के काव्य की एक बडी विशेषता 'शब्द-लाघव' है। थोडे मे बहुत कुछ सरसता भर देने मे वे सिद्धहस्त है।

मक्खी बिना कारण हानि करने वाली है, कौवा परनिदा रूपी मल खाता है, उल्लू सूर्य भगवान् से आँखे मूँद लेता है, बगला ऊपर से भक्त बन छल-कपट से मछलियाँ खाने वाला है। तोता देखने मे अच्छा है किन्तु प्रेम तोड कर भाग जाता है। कोयल मीठा बोलती है किन्तु स्वार्थ और कपट से अपने अण्डे कौवो के यहाँ छोड़ आती है। मोर सुन्दर शरीर वाला है, किन्तु हृदय का कठोर है, साँप को भी खा जाता है,—इसी प्रकार बहुत से लोग भी अवगुणो वाले होते हैं। तुलसीदास इन सब बातों को संक्षेप और व्यग्य से कह गए है—

माखी काक उलूक बक दादूर से भए लोग।
भले ते सुक पिक मोर से कोउ न प्रेमपथ योग ॥ ३३१ ॥

उत्तम प्रकृति के मनुष्य का प्रेम पत्थर की लीक के समान दृढ़ होता है, मध्यम मनुष्य का प्रेम बालू की लीक के समान हवा के झोको अर्थात् समय के फेर से मिट जाने वाला होता है और नीच का प्रेम तो पानी की लीक के समान क्षणिक होता है। उत्तम प्रकृति के मनुष्य का वैर क्षणिक, मध्यम का कुछ समय रहने वाला और नीच का वैर तो चिरस्थायी होता है। इन सब बातो को दो पंक्तियो मे भर दिया है—

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुन की बैर बितिक्रम जानि ॥३५२॥

सूक्ति की विशेष शैली मे कहे गए कुछ दोहे—

लोकरीति फूटी सहहिं आजी सहइ न कोइ।
तुलसी जो आजी सहइ सो आँधरो न होइ ॥४२३॥
सचिव बैद गुर तीनि जौ प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तिन तीनि कर होइ बेगही नास ॥५२४॥

आध्यात्मिक, उपदेशात्मक, कथात्मक आदि कई प्रकार की शैलियो और काव्यरूपो मे तुलसी जी ने रचनाएँ लिखी है किन्तु उन्होने अपने 'सियाराम' को सदा ही अपने साथ रखा है। राम (सच्चिदानद) ही उनके काव्य का केन्द्र है। उनकी उपदेशात्मक कविता का हृदय भी रामभक्ति के स्पदन से धडकता है—

राम नाम अवलब बिनु परमारथ की आस।
बरषत बारिद बूंद गहि चाहत चढन अकास ॥२०॥
सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति ॥८७॥
बारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धात अपेल ॥१२६॥

# हीर वारिस में सांस्कृतिक चेतना

सयम, शुद्धि और विवेक की साधना द्वारा मानसिक और व्यावहारिक विकारो को सहज सौन्दर्य और स्वाभाविक रस मे परिणत करना ही सस्कृति का लक्ष्य है। हमारा न्याय और धर्म जब तक हमारे जीवन मे सदाचार, सेवा और त्याग का वातावरण उत्पन्न नही कर देता, सस्कृति का रूप प्रत्यक्ष नही होता। अतः सस्कृति सिद्धान्त-निरूपण नही, यह तो अनुभव की चेतन नकदी है। मानवी अनुभव का कलात्मक लेखा-जोखा साहित्य मे ही सुरक्षित रहता है। इसलिए सस्कृति और साहित्य का गूढ सम्बन्ध है।

जब हम वारिस शाह ( १७३५—१८३८ ई० ) की हीर पढ कर रस-मग्न हो जाते है, वास्तव मे हम एक विशेष सस्कृति की प्रशसा कर रहे होते है। वारिस शाह हमारी सस्कृति की धडकन को अपनी कुशल लेखनी से अमरत्व प्रदान कर गए है। पजाबी जीवन का यथार्थ और आदर्श, दीन-धर्म और रीति-नीति, रहन-सहन और खेल-तमाशे, आचार-विचार और सुख-दु ख, सब का व्यापक चित्र हीर वारिस मे अकित है।

जिस प्रकार मीठी चाशनी मे नीबू का खट्टा रस संशोधन और निखार लाता है उसी तरह इस्लामी सूफीवाद ने भारतीय सस्कृति के मौलिक गुणो को चमका दिया।

हीर-राझा की प्रेम-गाथा मे त्याग, तपस्या, अहिसा एव प्रेम का उच्च आदर्श स्थापित किया गया है। विषमताओ को मिटा कर नर-नारी की समता का क्राति-कारी विचार और हिन्दू-मुस्लिम भाव एव भाषा की एकता इस कला-कृति का गुण-विशेष है।

घूँस खाने वाले मुल्लाओ और काजियो, पाखडी फकीरो और जोगियो, मसखरे जाटो और निर्दय शासको, बेवफा नारियो और चुगलखोर पुरुषो पर कवि ने व्यग्य-बाण चलाए है। जहाँ खुदा के खौफ और प्रकोप के वर्णन से काम नही चला, वहाँ वे अश्रुधारा बहाते हुए चनाब नदी के समान बन गए है।

सामाजिक क्राति के लिए उन्होने करुणा का सहारा लिया क्योकि यही वह शक्ति है जो मानव-हृदय को बदल सकती है। वे निराशावादी भौतिकता को नही मानते थे, वे आशावादी शान्त आदर्श मे श्रद्धा रखते थे—

**सेवन बुलबुलां बूटियां सुक्कियां नूं ,**
**फिर फुल्ल लगन नाल डाल दे जी ।**

दुनियादारी की जीत मे उनको हिसा एवं अहकार की जीत प्रतीत होती थी । इसलिए उन्होने प्रेम-गाथा से अपने आध्यात्मिक अर्थ निकाले । अतिम भाग में उन्होने सारा वृत्तात आध्यात्मिक रूप मे परिवर्तित कर दिया है—

**'हीर रूह ते रांझा कलबूत जाणो' ।**

उत्तम आदर्श की स्थापना के लिए वीरता का गुण आवश्यक है । वीरभूमि पंजाब के लिए ऐसी वीरता ही उचित थी जो हीर-राझा ने प्रदर्शित की । प्रो० पूर्ण सिंह ने इसीलिए कहा है—

**आ वीर रांझा !**
**आ भैणे हीरे !!**
**सानू छोड़ न जावो**
**बिन तुसां असी सखणे !!**

वारिस शाह की सास्कृतिक चेतना गार्हस्थ्य-जीवन को मानवता की शिक्षा का केन्द्र बनाती है । वह भाग्य को नही मनुष्य को भगवान की शक्ति का स्रोत मानती है । मानवी प्रेम को उन्होने शाश्वत आनन्द का कारण समझा, वैर-द्वेष को कुकुरमुत्ता की भाँति नश्वर माना—

**बुनियाद पर जुलम दी खुंबदी है ।**

सूफियो की ख़ानकाहो मे और सन्तो की धर्मशालाओ मे जाति-पाँति एवं गरीबी-अमीरी की भेद-बुद्धि त्याग कर सम्मिलित लगर चलते थे । पजाब में विशाल आदर्शो का सूत्रपात हो रहा था किन्तु अभी समाज तो घर का महत्व मानता था वर का नही । विचारशील व्यक्ति मे यह चेतना आ गई थी कि वह सोचे—मानवता से पैसा क्यो बडा समझा जाए, नारी को बेज़बान गाय के समान क्यो बंधन मे जकड़ा जाए, कूजो को कौवो के हवाले क्यो किया जाए !

वारिस शाह नारी को ईश्वर का करुणा-पात्र ( खवानि रहमत ) मानते थे और उन्होने स्पष्ट कहा है—

**वली गौस सभ रन्न तो होए पैदा**
**हव्वा समझ लैं आदमों नाल दी ए ।**
**हठ रन्न दे जेड न मरद करदा,**
**वारिस शाह नूं खबर इस हाल दी ए ॥**

भारतीय सस्कृति मे आदर्श स्त्री को मूक दीपशिखा की भाँति तपस्या-पुंज माना गया था, वारिस ने राझा को ही नम्रता, तपस्या एव प्रेम का आदर्श बना

दिया है। उसका प्रभाव निर्दय भाभियों पर दिखाया है—

**'रांझे लाल बाझों असी ख्वार होईयां**
**कूंजां डार थी जिवें विछुन्निया हां।'**

हीर ने कैदो, सैदो, काजी, मलकी सभी का विरोध सहन किया किन्तु उसको अपनी इच्छानुसार वर स्वीकार करने की अनुमति सामती समाज ने न दी। अन्त मे पाँच पीरो और बालनाथ ने उस की सहायता की। वारिस शाह इस प्रसंग मे मज़हब और अक्ल से इश्क और सिद्क ( सात्विकता ) का दर्जा ऊँचा बताते हुए कथानक को और भी गभीर बना देते है। 'सहती' समेत सारी नारी-जाति हीर की पुष्टि करती है, फिर भी रूढिग्रस्त सामाजिक बाधाएँ नर्म नहीं होती। हीर दीपशिखा की भाँति अपनी प्रेम-साधना मे स्थिर रहती है—

**वहण पए दरिया नहीं कदे मुड़दे,**
**वडे ला रहे ज़ोर ते ज़ारियां वे!!**

सावित्री एव दमयन्ती की भाँति हीर की प्रणयाकाक्षा राझा के प्रति असीम रूप धारण करती है, किन्तु वह स्थित-प्रज्ञ कर्मयोगी की तरह मृत्यु का भी सामना करती है। वह अन्याय के साथ समझौता नही करती। वारिस शाह ने हीर के प्रेम मे काम-वासना की तृष्णा नही दिखाई अपितु सहनशीलता और शालीन तपस्या का तेज दिखाया है। उसके जीवन के अतिम मार्मिक प्रसंगो द्वारा वारिस शाह ने अमर करुणा को साकार कर दिया है। इस करुणा का अश्रुपात उस समय तक बचा रहेगा जब तक नारी जाति को अपना पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त नही होता।

यह दुःखात प्रेम-गाथा भय अथवा विवशता का वातावरण नही बनाती बल्कि शातिमय वैराग्य के दशन कराती है। राझा आदर्शवादी सस्कृति का प्रतीक है। वह हिसा, चोरी, नारीहरण, कपट, छल आदि ओछे हथियारो से काम नही लेता—

**हीरे! इश्क न कदी सुआद देंदा।**
**नाल चोरिया अते उधालिया दे॥**

राझा के सच्चे प्रेम की तपस्या ने उसके अस्तित्व को ईश्वर का उज्ज्वल मन्दिर बना दिया था। उसे प्रेम की वेदना प्यारी थी, सिद्धि का उल्लास नही। उसकी बझली (बाँसुरी) नफसि-नातिका अर्थात् अंत करण का प्रतीक थी। वारिस शाह बताना चाहते थे कि उच्च सस्कृति मे सगति और सरसता आवश्यक है, अनुशासनहीनता नही। सयम और संतुलन ही सुन्दरता एव आकर्षण का कारण है।

पाखडी फकीरो ने समाज मे आतक उत्पन्न कर दिया था। इसका उल्लेख भी वारिस ने किया है—

(१) **दिने बरणन अवधूत गुरदेव जोगी,**
**करन रात नूं बहुत ख्वारियां नी।**

(२) **मग खावरणा कम्म न काज करना,**
**ना कुझ चारना ते ना ही चोवरणा जे।**

किन्तु सच्चे संतो और फकीरो की प्रशसा वारिस ने की है—

(१) **फकर मारदे रेख विच मेख मियां।**

(२) **बादशाह सच्चा रब्ब प्रिथवी दा,**
**फकर उस दे हैन वजीर साईं॥**

(३) **भंग खाइके सदा इह देस त्यागरण,**
**तंबू वैर दे ना इह तारणदे नी।**

जोगी-रूप राझा के मुँह से वैराग्य-भावना के जो मीठे वचन वारिस ने कहलवाए है, वे भारत की पुरानी सास्कृतिक वृत्ति के द्योतक है—

**ख्वाब रात दी जग दीग्रां सभ गल्लां,**
**धन माल नूं मूल न भूरिए जी।**
**पंज भूत विकार ते उदर पापी,**
**नाल सबर सतोख दे पूरिए जी।**
**उस नूं सीत, सुख-दुख समान जापे,**
**जेही शाल मशरू ते ही भूरिए जी।**
**भोग आत्मा दस रस किस त्यागे,**
**ऐवें गुरु नू काहे विदूरिए जी॥**

यह बात याद रखनी चाहिए कि राझा को चाहे पीर जलाल बुखारी ने अपनी रक्षा के लिए कृपाण दी थी किन्तु उसने इसका प्रयोग कही नही किया। उसे अनुभव हो चुका था कि कृपाण से भी अधिक शक्ति सिद्क और सतोष मे है—

**सबर दिलां दे मार जहान पट्टन।**
**उच्ची काहे नू असां बुलीवरणाई॥**

ग्रियरसन जैसे विद्वान हीर वारिस की भाषाशैली की मुक्तकठ से प्रशसा करते है। वास्तव मे पजाबी जीवन के सुन्दर चित्रण की वे श्लाघा करते है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता का भाव उनकी शब्द-योजना में भी द्रष्टव्य है—

किबर-हंकार, सबर-सतोख; दरस-दीदार; प्रेम-हकीकतां, समझ-गुमराह आदि।

कला-पक्ष से हीर वारिस का अध्ययन सास्कृतिक चेतना को और भी स्पष्ट कर देता है। वारिस के कथानक का वर्णन पुरातन भारतीय प्रेम-गाथाओ—दुष्यन्त-शकुन्तला, नल-दमयन्ती, सावित्री-सत्यवान एव कृष्ण-राधा से साम्य रखता है। पुरातन कथाओ मे प्रेमी को प्रेमिका से कम शालीन दिखाया गया है। विवाह का रूप भी प्राय: गधर्वो वाला ही था। समकालीन समाज के साथ विरोध भी किया जाता था किंतु मर्यादा-पालन का आदर्श भी अक्षुण्ण रहता था।

अपभ्र श-काल की प्रेम-गाथाओ के पात्र प्राय जमीदार, किसान अथवा व्यापारी वर्ग मे से लिए गए है और लोक-कथाओ के भण्डार से भी लाभ उठाया गया है। जैन-कवियो ने लोक-साहित्य की प्रेम-गाथाओ द्वारा साधना और कर्म-वाद का प्रचार भी किया था। सम्भवत: ईरान से सूफी कवियो ने श्रमणो और भिक्षुओ से बौद्ध एव जैन कथाओ की यह शैली सीख कर अपनी तमसीली मसनवी शैली का विकास किया हो। हीर-राझा की सीधी-सादी लौकिक कहानी को अलौकिक रूप का अथवा तमसील बनाने का कारण भी यही शैली थी जो सूफी प्रेम-मार्गी नूर मुहम्मद के समय ( १३०० ई० ) से भारत मे प्रचलित रही थी। इसीलिए वारिस ने अपने काव्य के अत मे कहा है—

**हीर रूह, राझा कलबूत जाणो,**
**बाल नाथ इह पीर बणाइआ ए।**
**पज पीर हवास इह पज तेरे**
**जिन्हां थापड़ा तूझनूं लाइआ ए॥**

पुरातन महाकाव्य मे वस्तु-परिगणन, जलक्रीडा, शगन मनाना आदि प्रसग होते थे। हीर वारिस की काव्यकला पर भारतीय सस्कृति की अमिट छाप अकित है।

वारिस का काव्य सूक्ष्म रूप मे जीता-जागता, साझा, खुला, सरल और प्रगतिशील पजाब है। जिस सस्कृति को उन्होने अपने शब्दो मे चित्रित किया, वह हमे सिखाती है कि कला, साहित्य और सुन्दरता जीवन के वरदान है। सासारिक उपभोग सीमित और तुच्छ है। हमारा चेतन ज्ञान और समदर्शी अध्यात्म ही नित्य महान् है।

वारिस के पजाब मे आधुनिक काल से बढकर विभिन्नता और अनेकता थी, किंतु उन्होने काव्य द्वारा इस अनेकता मे एकता के दर्शन कराए है। उन्होने लोक-परलोक, मजाज-हकीकत, शरियत-तरीकत और यथार्थ-आदर्श का सुन्दर समन्वय किया है। समन्वयनिष्ठ भारतीय सस्कृति की इस विशेषता को वारिस ने मूर्धन्य स्थान दिया है। वे नाथ के मुख से बोल उठते है—

माला मणकियाँ विच जिवें इक धागा,
तिवें सरब दे विच समाइया ई।
जिवे रकत सरीर विच सुआस अंदर,
तिवे जोत मे जोत मिलाइआ ई।

वारिस शाह ने न केवल तत्कालीन पजाब की सास्कृतिक झाँकियाँ दिखलाई है बल्कि मानवता के लिए आदर्श सस्कृति की कल्पना भी की है। तुलसी के रामराज्य से तुलना करने योग्य वर्णन है—

शाह सोई जो काल विच औख कटे,
गल बात दा जो निगाहबान होवे।
कुआरी सोई जो करे हया बहुता,
नीवी नज़र ते बाझ जबान होवे।
बिना चोर ते जंग दे देस वसे,
जट सोई बिन अन्न दी पाण होवे।
वारिस शाह फकीर बिन हिरस गफलत,
याद रब दी विच मस्तान होवे।

वारिस शाह चाहे सूफी मत मे भले ही विशेष रुचि रखते थे, पर उन्होंने जिस सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर अपना काव्य रचा, वह समवेत रूप मे भारतीय है, मानवतावादी है। सच्चे मानव मे हीर और राँझा बसते है—

वारिस शाह उह सदा ही जिउदे ने।
जिन्हां कीतियाँ नेक कमाईयाँ नी॥

वारिस शाह ने मजाज़ के भेस मे हकीकत के भेद खोले है, भौतिकता के द्वारा अलौकिक रस बाँटा है। उनकी रचना मे लोगो की गूढ भावनाएँ, आकांचाएँ और समस्याएँ यथार्थ रूप मे अकित है। अत मे यही कहना होगा कि वारिस शाह की हीर हमारी सास्कृतिक चेतना की एक प्रेम-प्रवण चित्रावलि और हमारे पंजाबी जीवन की बिम्बावलि है।

# रानी केतकी की कहानी पर फ़ारसी प्रभाव

सैयद इन्शा अल्लाह खाँ देहली के प्रतिभाशाली साहित्यकार थे। वे परपरा-पालन के स्थान पर नवनिर्माण मे अधिक रुचि रखते थे। मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने अपने ग्रंथ 'आबि-हयात' मे लिखा है—"ऐसा तब्बाअ ( प्रतिभाशाली ) और आली दिमाग आदमी ( कुशाग्रबुद्धि ) हिन्दुस्तान मे कम पैदा हुआ होगा। वोह अगर उलूम ( विद्याओ ) मे से किसी एक की तरफ़ मुतवज्जिह होते तो सदहा ( सैकडो ) साल तक वहीदि-अस्र ( अद्वितीय ) गिने जाते। तबियत एक हयूला थी कि हर किसम की सूरत पकड लेती थी। ( अर्थात् उनकी प्रकृति मे ऐसे सूक्ष्म तत्त्व थे जो हर प्रकार का रूप धारण कर सकते थे )। बावजूद इसके शोखी इस कदर कि सीमाब ( पारे ) की तरह एक जा करार न था। चुनान्चि कुलियात ( रचनाओ का सकलन ) इन सब मरातिब ( कोटियो ) के लिये मज़हरि-शहादत ( साक्षी ) है।"

जिस प्रकार नजीर अकबराबादी को अपने जनतावादी काव्य ने अपने युग मे पूरा-पूरा महत्त्व न दिया, उसी प्रकार विनोद-प्रिय सैयद इन्शा की नयी रचना-पनीरी अपने युग के साहित्यिक क्षेत्र मे ठीक न बैठ सकी। "दर हकीकत उनकी तेज़ी-ए-तबअ ने आलमि-वजूद मे जाने के लिये भी तेज़ी दिखाई। अगर वोह सौ बरस बाद पैदा होते तो हमारी ज़बान का फ़ैशन निहायत खूबसूरती से बदलते।"[१]

किन्तु यह भी सच है कि यदि वे एक-दो सदी पहले जन्म लेते तो हमारे साहित्य का वातावरण और भी सुन्दर बन सकता, विशेष कर हिन्दी-गद्य की रूपरेखा अधिक निखर आती। हिन्दी के सभी आलोचको ने 'रानी केतकी की कहानी' को भारतेदु-युग से पहले की गद्य-रचनाओ मे से सर्वश्रेष्ठ माना है।

१८वी शती मे हिन्दुस्तान के प्राय सभी प्रातो की राज्यभाषा फारसी थी।[२] भारत और ईरान के सम्बन्धों मे अंग्रेज़ो ने अभी तनाव पैदा नही किया

---

[१]आबि-हयात—पृ० २८१

[२]The Discovery of India : Jawahar Lal Nehru, page 126.
विशेष प्रकरण देखिए
Indo-Aryan and Hindi : S. K. Chatterji, page 118.

था। खडी बोली साधारण बोलचाल की भाषा तो थी किन्तु उसका साहित्यिक रूप स्थिर नही हुआ था। सूफियो की उक्तियो और सतो की साखियो के अतिरिक्त गद्य मे कोई मौलिक रचना देखने मे न आती थी। सैयद इन्शा ने फ़ारसी, अरबी और सस्कृत तत्सम शब्दावली से बच-बच कर जनता की सहज भाषा को अपनी कहानी के लिये अपनाया। वे स्वय अपने सकल्प का वर्णन करते है—

एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दी छुट किसी बोली का पुट न मिले, तब जा के मेरा जी फूल की कली के रूप खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न ठूस जाए। बस जैसे भले लोग अच्छो से अच्छे, आपस में बोलते-चालते है, ज्यो का त्यो वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न पडे।[1]

सैयद इन्शा ने अपने लखनऊ-वास के समय 'रानी केतकी की कहानी' लिखी थी। सभवत १८०० ई० से १८१० ई० के बीच मे ठेठ हिंदवी की यह रचना सम्पन्न हुई थी।

डॉ० श्यामसुन्दर दास जी का विचार है कि "हिंदवीपन से सैयद साहब का तात्पर्य यही था कि हिन्दी के शब्दों का ही प्रयोग हो। फ़ारसी और अरबी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दो की मिलावट न हो।"[2]

यदि हिन्दवी मे बाहर की बोली लाने की प्रथा न होती तो वे हिन्दवी के अतिरिक्त फिर बाहर की बोली न लाने का प्रतिबध क्यो लगाते? डॉ० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दवी को पुरानी खड़ी बोली समझते है। "हिन्दवी के प्रारम्भिक कवि मुसलमान सूफी फ़कीर थे।"[3]

डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने अपनी पुस्तक 'आर्याई ज़बानें' मे लिखा है—

"अगरचिह हिंदवी ज़बान, पजाबी से मुख्तलिफ़ है ताहम हिंदवी पर पंजाबी का असर मालूम होता है"—(पृ० १३)। "हिन्दवी या हिन्दोई मग़रबी अपभ्र श की एक शाख ही थी जो पजाबी की पुरानी सूरत है।"

यह कथन काफी ठीक प्रतीत होता है क्योकि दखिनी हिन्दी और इन्शा की

---

[1]इस लेख में सभी उद्धरण अंजुमनि-तरक्की-ए-उर्दू की प्रकाशित 'दास्तान रानी केतकी और कुँवर उदैभान' से लिए गए।

[2]भूमिका रानी केतकी की कहानी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १२, सं० २००४ वि०।

[3]पृ० ७६, हिन्दी भाषा का इतिहास।

हिन्दी से "आतियाँ जातियाँ नाचने वालियाँ" आदि पद-रचना पंजाबी से मेल खाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भाखापन से उनका अभिप्राय ब्रजभाषा का व्याकरण और संस्कृत तत्सम शब्दसमूह था। बाहर की बोली अरबी-फारसी ही थी*।

सैयद इन्शा भारत की कई भाषाओ, पूरबी, पंजाबी, हिन्दवी, मारवाडी, मराठी, काश्मीरी आदि का ज्ञान रखते थे और बाहर की भाषाओ अरबी, फ़ारसी, तुर्की एव पशतो पर भी उनका अधिकार था। उनकी कुतूहलवृत्ति, विद्वत्ता और काव्य-कुशलता ने उनका सहयोग दिया और उन्होने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कई उपाय ढूंढ निकाले—

( क ) प्रचलित फारसी-अरबी शब्दो को हटाने के लिये प्रातीय ग्रामीण बोलियो की शब्दावली का सहारा लिया, जैसे—

इस घराने के छुट ( के सिवाए, के अतिरिक्त )—पृ० ४
निपट ( बिल्कुल )—पृ० ४
अँगूठियाँ हेर फेर लो ( बदल लो )—पृ० ६
रंडी ( औरत )—पृ० ११
किसी ढब—पृ० ११
किसी डौल से ( किसी तरह )—पृ० १७
भग्गू ( एलची, हरकारा )—पृ० ५
लटका ( नुस्खा ) पृ० २२
असवारी बस्तर ( रेशमी कपड़े )—पृ० ११
पखेरू ( परिंदा )—पृ० ३७
अनीदपन ( बेख़ाबी )—पृ० ४४
सूहे बागे बिन ( सुर्ख बाग बगैर )—पृ० ३२
अच्छापन ( ख़ूबसूरती, ख़ूबी, )—पृष्ठ ३

सैयद इन्शा की उर्दू गज़लों मे स्थान-स्थान पर फ़ारसी वाक्य दीखते है, जैसे—

'बसानि नक़्श-पाए राहरवां कूए तमन्ना मे।
नहीं उठने की ताकत क्या करे लाचार बैठे है॥'[१]

किन्तु उन्होने अपनी कहानी मे फारसी शब्द न लाने का प्रण कर लिया। उनकी अपनी हस्तलिखित पुस्तक की प्रति अब कही मिलती नही। उनकी मृत्यु

*और उदाहरणों के लिए देखिए 'कुतबाति-इन्शा'।

के ३८ वर्ष उपरात १८५५ ई० मे रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ने किसी पुरानी प्रति की नक्ल छापी थी। पता नही इस नक्ल-दर-नक्ल ने कितने फारसी शब्दों के स्थान पर हिन्दी के शब्द रख दिए।

(ख) कही-कही फ़ारसी-अरबी शब्दो के स्थान पर उन्होने मनगढत शब्द भी लिख दिए, यथा—

अटखेल-पन (शोखी) पृ० ५, सरधरी (सरदार) पृ० ६; हिचर मिचर (हर्ज मर्ज) पृ० ९, अच्छन पच्छन (खूबी, हुस्न) पृ० ४५, मुख-बात (ज़बानी बात) पृ० ११, छुपाव (राज) पृ० १८, तडावा (नुमाइश) पृ० ४७, आदि।

यदि 'अच्छो से अच्छे' लोगो से उनका तात्पर्य उत्तर भारत के सूफी संत वर्ग से था तो उनकी रचना-शैली किसी सीमा तक सफल ही है क्योकि सूफियों की उक्तियो और सतो एव गुरुओ की साखियो में ऐसे कई वाक्य मिल जाते हैं जैसे 'रानी केतकी की कहानी' मे आए है—

'महारानियाँ दोनो समधिने आपस मे मिलियाँ जुलियाँ और देखने दिखाने को कोठो पर चदन के किवाडो के रडतलो में आ बैठियाँ।' (पृ० ४६)

'नावें सौ सौ लचकें खातियाँ, अतियाँ, जातियाँ, लहरातियाँ पडी फिरतियाँ थी।' (पृ० ४२)

'फूल इतने बहुत सारे खिड जाएँ जो नदियाँ जैसी सचमुच फूल की बहत्तियाँ है यह समझा जाए।' (पृ० ३७)

'तब मदन बान ने वह सब बातें खोलियाँ।' (पृ० २६)

'दोनो जनियाँ एक टीले पर अच्छी सी छाँह ताड के आ बैठियाँ।' (पृ० २७)

इसी प्रकार की वाक्य-रचना १४वी शती की पुस्तिका 'मिअराजुलआशिकीन' मे मिलती है, जैसे—मिजराज कीआ निशानियाँ मैं तुझको देता हूँ। एतियाँ मेरियाँ बातां खूब सुन।

### फ़ारसी-अरबी शब्द

प्रत्येक भाषा बहती नदी के समान होती है। जिसे छोटे-छोटे कई सोते सीचते और प्रवाहमयी बनाते है। यदि हम अपनी सकुचित दृष्टि से अपनी भाषा को बाहर के मेल-जोल से वचित रखे अथवा उसके वेग को रोक दे तो वह अपनी मौत आप मर जाएगी। संस्कृत को परिवर्तन और विकार से बचाने वाले वैयाकरणो के कठोर साधन ही उसके रूढ और अशक्त होने के कारण बने। आजकल साप्रदायिकता की सनक ने हमारे साहित्यकारो के हाथो में संस्कृत तत्समो के प्रयोग और फारसी-अरबी शब्दो के बहिष्कार की दोधारी कृपाण दे दी है, फिर हिन्दी को जनभाषा का रूप कैसे दिया जा सकता है?

संसार की कोई भाषा विदेशी प्रभाव से नितात बच नही सकी। संस्कृत जो सबसे पुरानी भाषा मानी जाती है वह भी 'सोलह आने' स्वदेशी नही। संस्कृत मे निम्नलिखित शब्द द्रविड भाषाओ से आए है—

मुख∠मुक, सठि∠सूल, प्रफुल्ल∠पुलु, नीर∠नीरव; कोकिल∠कुकिल, गर्दभ ∠कुलदाई, घोटा∠गुड्डा, आदि !

पुरानी फारसी से भी कई शब्द सस्कृत मे आए—

लिपि∠दिपी, ∠दिवीरः ∠दिवीर, दबीर, पुस्तक < पोस्तक; बहादुर ∠ बहादुर, आदि।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, डॉ० श्यामसुन्दरदास और डॉ० अब्दुलहक ने एक स्वर से कहा है कि 'इस कहानी मे अरबी-फारसी का एक शब्द भी प्रयुक्त नहीं हुआ। बहुत ध्यान से देखे तो इसमे कुछ बाहर की बोली की पुट भी दीख पड़ेगी—

बेंसिरी, पृ० ३, कपडा लत्ता∠लत्ता (तुर्की) पृ० ७, शर्माऊँ∠शर्म (फारसी) पृ० ११; तबला, तबल (अरबी) पृ० ३८, चग (फारसी), पृ० ३८, बागे बिन∠ बाग, ३२, रगा के∠ रग, पृ० ३१ ; यक न।यक∠यक, पृ० ६।

सन्त गोकुलचन्द्र की पुस्तक 'प्राचीन गद्य' मे यह शब्द 'हक न चक' लिखा है जो सभव है, हक नाहक होगा।

बाहर की एक और बोली अँग्रेज़ी का भी एक शब्द लालटेन (Lantern) इस कहानी मे आया है (पृ० ३२,३८)। 'ईमन' राग फारसी सगीत से सम्बन्ध रखता है, इसका उल्लेख भी पृ० ४४ पर हुआ है।

१२वी शती से लेकर १८वी शती तक हिन्दू-मुसलमानो ने अपने मेलजोल से एक साझी सस्कृति को विकसित किया था।[१] ताजमहल की निर्माण-कला में हिन्दू-मुस्लिम सस्कृति सजीव दीखती है। दक्षिण की अनेक मस्जिदें हिन्दू-धर्म के प्रतीक कँवल को सैकडो वर्षों से उठाए खडी है। भारतीय सगीत मे ख्याल, कव्वाली आदि मुसलमानो के सुन्दर प्रभाव के प्रतीक है। साईसी, जिल्द-बदो, हिकमत-यूनानी, इस्लामी रीति-रिवाज, सेना, दरबार, जलसे, जलूस सम्बन्धी अनेक फ़ारसी-अरबी शब्द भारतीय भाषाओं में मिल सकते है, यहाँ तक कि हमारा धार्मिक साहित्य भी फ़ारसी प्रभाव से बच नही सका। ग्रथ साहिब, कबीर ग्रंथावली, सूर सागर, रामचरित मानस आदि मे अनेक फारसी-अरबी शब्द मिल जाते हैं। मुसलमानो के विरोधी पृथ्वीराज-सम्बन्धी काव्य 'पृथ्वीराज रासो' मे १०

[१] इस विषय के लिए देखिए पुस्तक—Influence of Islam on Indian Culture : Dr. Tara Chand.

प्रतिशत फारसी शब्द है। शिवाजी ने फारसी शब्दो को बहिष्कृत कर दिया था, फिर भी उनके मराठी आदेशो मे कई फारसी शब्द आ गए है।[1]

**फारसी शैली**

इस लघु उपन्यास पर फारसी रचना-शैली का प्रभाव भी प्रत्यक्ष दीख पडता है। कई जगह फारसी मुहावरो के हिंदवी रूपान्तर दिये गए है और कई जगह फ़ारसी वाक्याश प्रयुक्त हुए हैं—

बे-डौल, बे-ढब, बे-सुरी, बे-ठिकाने, बे-ठौर, इनमे 'बे' प्रत्यय फारसी भाषा से आया है।

'कि' सम्बन्धक जानबूझ कर छोड़ दिया गया है, जैसे—इनको कह दो, जहाँ जी चाहे पड रहे। झुँझलाकर कहा, मै कोई ऐसा अनोखा बोला नही।

किन्तु पृ० २ पर यह फ़ारसी सम्बन्धक ज्यो का त्यो मौजूद है।

'.. .... यह बात अपने ध्यान मे चढ आई कि कोई कहानी ऐसी कहिए . .. . ..।[2]

सम्बोधन-वाची शब्द 'ऐ' भी फ़ारसी भाषा का है। उर्दू मे भी इसका काफी प्रयोग होता है। इस कहानी मे भी यह शब्द आया है—

'चाह के डूबे हुए ऐ मेरे दाता सब तिरे।' ( नागरी सस्करण, पृ० ३८ )

फारसी मुहावरो के हिन्दवी रूपातर—

नए सिरे से—अज़ सरि नौ, पृष्ठ २६, चित चाही बात—हर्फि दिल-ख्वाह, पृ० ६, मलूला खा के—गम खुर्दन, पृ० ६, सोने के पानी से लिखते है—ब आबि ज़र नविश्तन, पृ० ११, चिट्ठी की पीठ पर अपने मुँह की पीक से लिखा—बर पुश्ति-खत, पृ० १३, मेरे जी का गाहक—खरीदारि-दिलम, पृ० १३, सौ टुकड़े हुआ है कलेजा—दिलि सद पारा, पृ० २०, ओसे आँसू की छा रही है—गिरियाए-शब्नम, पृ० २१, मै निगोडी लाज से कट गिरती हूँ—शर्म ज़दह, पृ० २३, गठ-जोड—उक्दे निकाह, पृ० ६, इस बात पर माटी डाल—ज़ेरि खाक कर्दन, खाक कर्दन, खाक अदाखतन, पृ० २४, हथ-फूल—गुलदस्ता, पृ० ३८; मुँह दिखाई—रूनुमाई, पृ० ४६, आरसी धाम—आइना खाना, पृ० ४७, आदि।

कहानी के प्रसगो के शीर्षक प्राय. फारसी-अरबी वाक्य-रचना के अनुसार है—

१—आना जोगी महिंदर-गिर का कैलास पहाड से और हिरन हिरनी कर

---

[1]विस्तार के लिए देखिए पारसी-मराठी कोष की भूमिका, एवं मराठी जबान पर फ़ारसी का असर—अब्दुल हक, पृ० ७८, ८८।

[2]नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण में 'कि' के स्थान पर सर्वत्र 'जो' मिलता है।

डालना कँवर उदैभान और उसके माँ-बाप का (पृ० १४)।

२—भभूत माँगना रानी केतकी का अपनी माँ रानी कामलता से आँख-मचोली खेलने के लिये ( पृ० २१ )।

३—जाना महाराज और महारानी और गोसाई महिदर गिर का रानी केतकी के लेने के लिये ( पृ० ३० )।

ये शीर्षक निज़ामी गजवी की मसनवियो का स्मरण कराते है, किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नही कि ये शीर्षक स्वयं सैयद इन्शा ने लगाये थे या बाद मे किसी ने लगाए। उसी युग के पजाबी किस्सो ( प्रेम-कथाओ ) मे इस प्रकार के शीर्षक देने की प्रथा प्रचलित थी।

कहानी की वाक्य-रचना भी फारसी से प्रभावित प्रतीत होती है। कही-कही तो ऐसा भासित होता है कि सैयद इन्शा सोच तो फारसी मे रहे है और लिखते हिंदवी है। डॉ हजारी प्रसाद ने 'हिंदी साहित्य' के पृ० ३७४ मे लिखा है—"उनकी वाक्य-रचना शैली मे उर्दू-फारसी शैली का प्रभाव है।" प० अयोध्या-सिह उपाध्याय ने भी अपने ग्रथ 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' मे लिखा—"कई जगह क्रिया को कर्त्ता से पहले लिखा गया है। यह फारसी का व्याकरण रूप है। हिन्दी मे कर्ता क्रिया से पहले आता है।" (पृ० ६४२ )
कुछ उदाहरण देखिए—

१—सिर झुका कर नाक रगडता हूँ उस बनाने वाले के सामने जिसने हम सबको बनाया और बात की बात में वह सब कर दिखाया जिसका भेद किसी ने नही पाया। ( पृ० १ )

२—इस सिर झुकाने के साथ दिन रात जपता हूँ उस दाता के पहुँचे हुए प्यारे को।[१] ( पृ० २ )

३—जीते मरते आसरा उन्ही सभो का और उनके घराने का रखता हूँ तीसों घडी। ( पृ० २ )

४—आगे सुनो रानी केतकी की बात। (पृ० १७)

५—रानी केतकी ने यह खाइयाँ मदन बान की सुन कर हँस के टाल दिया। ( पृ० २५ )

---

[१]यहाँ 'जपना' की विचार-प्रतिमा हिंदू-भावना को उजागर करती है। लेखक वास्तव में 'विर्द' कहना चाहता था किन्तु बाहर की बोली समझ कर इसे टाल दिया। इसी प्रकार 'किताब' के स्थान पर इन्शा ने 'पोथी' शब्द का प्रयोग किया है—"एक चुहल थी जो कहिए तो करोड़ों पोथियों में ज्यों की त्यों न आ सके।"

कुछ अरबी-फारसी ध्वनियाँ भी इस कहानी के गद्य मे आ गई हैं :—

(ख) जैसे 'पटाखो' (पृ० ३८)

(त) त उर्दू तोए जैसे 'तबला' (पृ० ३८)

पौदो, होटो आदि में ध, ठ जैसी महाप्राण ध्वनियो को अल्पप्राण बनाने की प्रवृत्ति भी फारसी लिपि के कारण चली ।

इसी कहानी के प्रसगो का क्रम भी निज़ामी गजवी और अमीर खुसरो की फ़ारसी मसनवियो से बहुत कुछ मेल खाता है। हम्दो-सना (ईश्वर-उपासना) के उपरान्त पैगम्बर मुहम्मद को स्तुति, पुस्तक रचना का कारण, किस्से का प्रारम्भ, प्रेमी और प्रेमिका का प्रथम मिलन, विरह, पत्र-लेखन, अलौकिक चमत्कार, पुर्नमिलन एव विवाह—यही रूप-रेखा इस कहानी की है ।

गद्य मे पद्य की छटा दिखाने की जो शैली गुलिस्तान-इ-सअ्दी, बहारिस्तानि जामी, अनवारि सुहेली आदि मे प्रचलित रही थी सैयद इन्शा ने उसका रग अपने गद्य मे दिखाया है। विषय की समाप्ति पर या विशेष मर्मस्थल पर पद्य का प्रयोग सैयद इन्शा ने किया है—

१—तू कौन ? तू कौन ? की चिघाड सी पड गई, उन सभो मे से एक के साथ उसकी आँख लड गई ।

दोहा[१]

कोई कहती थी यह उचक्का है ।

कोई कहती थी एक पक्का है । ( पृ० ५ )

२—एक डेरे पर बैठ कर दोनो की मुठभेड हुई। गले मिलके ऐसी रोइयाँ जो पहाडो मे कूक सी पड गई । दोहा अपनी बोली का—छा गई ठडी सास भाडों मे, पड गई कूक सी पहाडो मे ।। (पृ० २७)

३—जब मदन बान यह सब कह चुकी तो फिर हँसने लगी ।

रानी केतकी यह दोहा लगी पढने—

हम नहीं हँसने को रुकते, जिसका जी चाहे हँसे।
है वही अपनी कहावत, आ फँसे जो आ फँसे ।।
अब तो अपने पीछे सारा झगड़ा झाँटा लग गया।
पाँव का क्या ढूँढना है, जी में काँटा लग गया ।।

( पृ० २७-२८ )

---

[१]यह 'दोहा छंद' नहीं, 'बैत' या 'शिअर' शब्द के स्थान पर इसे प्रयुक्त किया गया है, कृत्रिम रूप से ।

वह व्यक्ति जिसका मानस फ़ारसी के गुलाब-जल से सिचा हो वह अकस्मात् फ़ारसी के रग-रूप और सुगध को कैसे भुला सकता है। सैयद इन्शा ने फारसी काव्य का गभीर अध्ययन किया था। फ़ारसी उपमाओ, रूपको और मुहावरो की प्रतिछाया उनकी रचना मे स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है।

अस्पि-खयाल—आपके ध्यान का घोड़ा जो बिजली से भी चचल है। (पृ० ३)

गुचए-लब—इन फूल की पखडी जैसे होंठो से किस-किस रूप से फूल उगलता हूँ। (पृ० ४)

गिरिया-ए शबनम—जब देखिए डुबडुबा रही है। ओसें आसू की आ रही है। (पृ० २१)

गुचए-उमीद—आसके जो फूल कुम्हलाए हुए थे फिर खिले। (पृ० ४८)

दिलरा बदिल राह अस्त—जी को जी से मिलाप है। (पृ०६)

इस कहानी के निम्नलिखित वाक्य अरबी आयतो और हदीसो के अनुवाद ही है—

१—जो तू न होता तो मै कुछ न बनाता।

२—उस बनाने वाले ने हम सब को बनाया और बात की बात मे वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया।

३—सच है, जो बनाया हुआ हो, सो अपने बनाने वाले को क्या सराहे और क्या कहे।

४—सिर के लगा पाँव तक जितने रोगटे है, जो सब के सब बोल उठे और सराहा करें और उतने बरसो उसी ध्यान मे रहे जितनी सारी नदियो मे रेत, तो भी कुछ न हो सके, कराहा करे।

## फ़ारसी छंद

सैयद इन्शा ने अपने व्याकरण 'दरयाये-लताफत' मे फ़ारसी काव्य-रूपो के नए नाम रखे थे, जैसे—तिकडा = मुसल्लस, चौकडा = मुरब्बा, आदि। रानी केतकी की कहानी मे भी वे बैत और शिअर के स्थान पर 'दोहा' लिखते है, चाहे इनके दोहे का छद हिन्दी के दोहे से प्राय भिन्न है।

इस कहानी मे ४१ पद्य है जिनमे एक कवित्त है जिसकी भाषा हिदवी नही ब्रजभाषा है (पृ० ४१)। शेष ३९ पद्य फारसी छदाबन्दी से अधिक सम्बन्ध रखते है। काव्य-शैली भी पुरातन उर्दू-फारसी काव्य जैसी है।

१—आतियाँ जातियाँ जो साँसें है।
उसके बिन ध्यान सब ये फाँसे है। (पृ० १)

यह फारसी छंद है 'बहर मुसद्दम महजूफ़' अर्थात् फाइलातन, मुफाइलन,

फिअलुन। इसी बहर में और पद्य भी है—

कोई कहती थी यह उचक्का है।
कोई कहती थी एक पक्का है॥ (पृ० ५)
छा गई ठंडी साँस झाड़ो में।
पड़ गई कूक सी पहाड़ों मे॥ (पृ० २७)

पृ० ४ पर एक चौकडा है जिसका छद फारसी है—हज्ज मुसम्मन अखरब, मकफूफ, महजूफ।, अर्थात् मफअल, मफाईल, मफाईल, फऊलन—

टुक घोड़े पर अपने चढ के आता हूँ मै।
कर्तब जो है सब कर दिखाता हूँ मैं।
उस चाहने वाले ने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ कर दिखाता हूँ मै॥

इस कहानी के उर्दू सस्करण पृ० ३१ मे एक चौतुक्का पद्य रूप मे प्रकाशित हुआ है। वास्तव मे यह भी रुबाई ही है—

पौदो ने रंगा के सूहे जोड़े पहने।
सो पाँव डालियो ने तोड़े पहने॥
बूटी बूटी ने फूल फल के गहने।
जो बहुत न थे तो थोड़े पहने॥

सैयद इन्शा ने फारसी जबान मे मसनवी शोरबिरज, मसनवी बे-नुक्त, मसनवी माइत आमिल आदि लिखी। वे इस काव्य-रूप मे बहुत प्रवाह से पद्यरचना कर सकते थे। पृष्ठ १८-२१ मे १६ शिअर की एक छोटी सी मसनवी लिखी है जिसमे भाव-चित्रण की सुन्दर कला दिखाई है। इसका फारसी छंद हज्ज मुसद्दस है अर्थात् मफ़ाईलन, मफाईलन, फ़ऊलन।

रानी को बहुत सी बेकली थी।
कब सोचती वह बुरी भली थी॥
चुपके चुपके कराहती थी।
जीना अपना न चाहती थी॥.... ...
क्यों कर इन्हें भूलूँ क्या करूँ मै।
माँ बाप से कब तलक डरूँ मैं॥. ...
फूलों को उठा के यहाँ से ले जा।
सौ टुकडे हुआ मेरा कलेजा॥ इत्यादि

शेष पद्य अधिकतर 'बहर रमल मुसम्मन, महजूफ' मे है अर्थात् फाइलातन, फ़ाइलातन, फ़ाइलातन, फाइलन—

यो तो देखो वा छड़े जी वाछेड़े।
हम से अब आने लगे है आप यो मुहरे कड़े। पृ० ४३
अब उदैभान और रानी केतकी दोनो मिलें।
आस के जो फूल कुम्हलाए हुए थे फिर खिले ।। पृ० ४८ आदि।

**फारसी रीति-रिवाज**

भारतीय सभ्यता और सस्कृति पर ईरानी रीति-रिवाज का प्रभाव बहुत पुराने समय से पडता आया है। चद्रगुप्त मौर्य के दरबार और महल को पादशाह दारा के समय की प्रतिलिपि समझा गया है। डॉ० स्पूनर ने अपनी पुस्तक 'Zoroastrian Period of Indian History' मे यह सिद्ध किया है कि चद्रगुप्त एक ईरानी राजकुमार ही था। मौर्य शब्द भी उन्होंने 'मर्व' नगर से सबद्ध किया है।

कनिष्क और अशोक के शासन-काल मे भारतीय और ईरानी जातियो मे मेलजोल के साधन बहुत बढ गए थे। ईरान भी भारतीय दर्शन और सस्कृति से बहुत प्रभावित हुआ। मुहम्मद बिन कासिम के समय से लेकर कुतुबुद्दीन ऐबक के समय तक उत्तर-पश्चिम भारत पर फारसी प्रभाव काफी गभीर हो गया था। शेष भारत मे मुगल-शासन ने फारसी सस्कृति का प्रचार किया। फारसी सूफी मत का प्रभाव भी लगातार एक हजार वर्ष तक पडता रहा है। ईरानी और भारतीय सस्कृति के उपकरण इतने घुलमिल गए है कि इनको अलग-अलग करना बहुत कठिन हो गया है।

इस कहानी के सभी पात्र हिन्दू है और सैयद इन्शा ने चेष्टा की है कि सारा वातावरण इस्लामी शासन से पूर्व का हो। फिर भी वे जाने-अनजाने कई इस्लामी और ईरानी रस्म-रिवाज इस कहानी मे वर्णित कर गए है—

१. 'यह हम तुम दोनो के जी का गठ-जोडा चाहिए। इसमे मदन बान बोल उठी। सो तो हुआ अब अपनी-अपनी अँगूठियाँ हेर-फेर लो और आपस मे लिखौटी भी लिख दो, फिर कुछ हिचर मिचर न रहे। कँवर उदैभान ने अपनी अँगूठी रानी केतकी की उँगली मे डाल दी।' (पृ० ६)

२ कँवर उदैभान अपने पिता को सूचित करता है—'कोई रानी केतकी महाराजा जगत प्रकास की बेटो है। उन्होने यह अँगूठी अपनी मुझे दी और मेरी अगूठी अपनी उन्होने ली और लिखावट भी लिख दी। सो यह अँगूठी उनकी लिखावट समेत मेरे लिखे हुए के साथ पहुँचती है।' (पृ० ११)

हिन्दुओ की 'सस्कार विधि' मे अगूठियो के अदलने-बदलने और निकाह-नामा लिखने की कोई रस्म मौजूद नही। यह इस्लामी या ईरानी रिवाज है।

३ 'बीचो बीच इन सब घरो के एक आरसी धाम बनाया था जिसकी छत और किवाड और आँगन मे आरसी छुट लकड़ी, ईट, पत्थर की पुट एक उँगली के पोटे भर न थी ।[१] जाली का जोडा पहने हुए चौदहवी रात जब घडी छ: एक रह गई तब रानी केतकी सी दुल्हन को इस आरसी भवन मे बिठा कर दुल्हा को बुला भेजा ।' (पृ० ४७)

यह आरसी-धाम या 'आईना-खाना' भी ईरानी राज्य-परिवार के महलो का विभाग है। हिन्दुओ के विवाह की रीतियाँ एक मण्डप मे हवन जला कर की जाती है । प्रत्यक्ष है कि 'आईना-खाना' मे हवन जलाना अनुचित है, किन्तु सैयद इन्शा के मन मे इस्लामी निकाह की कल्पना थी जिसमे आरसी मुसहिफ भी एक रस्म है ।

४ 'राजा इन्द्र ने दुल्हिन की 'मुँह दिखाई' मे एक हीरे का इकडाल छपर-खट और एक पीढी पुखराज की दी ।' (पृ० ४६)

हिन्दुओ मे घूँघट और पर्दे की प्रथा मुसलमानो के प्रभाव से प्रचलित हुई । दक्षिण भारत मे जहाँ हिन्दू ७० या ८० प्रतिशत है, वहाँ मुँह छिपाने का रिवाज बिल्कुल नही । मुँह दिखाई या 'रूनुमाई' की रीति हिन्दुओ से कैसे सबद्ध की जा सकती है ?

५. 'महाराज यह सुनते ही अपने राज की गद्दी पर आ बैठे और उसी घडी कह दिया—'सारे छतो को और कोठो को गोटे से मढ लो और सोने रूपे के रूपहले सुनहरे सेहरे झाड और पहाडो पर बाँध दो और पेडो मे मोती की लडियाँ गूँधो ।' (पृ० ३०)

६ 'गाँव-गाँव मे आमने सामने त्रिपोलिये बना-बना के सूहे कपड़े इन पर लगा दो और गोटे धनक की और गोखरू रूपहले सुनहरे लगा कर किरनें और डाँक टॉक टॉक रक्खो और जितने बड पीपल के पुराने पेड जहाँ-जहाँ हो इन पर गोटो के फूलो के सेहरे हरे भरे ऐसे जिसमे सिर से लगा जड तक इनकी ढलक और झलक पहुँचे बाँध दो ।' (पृ० ३१)

इस बात से इनकार नही हो सकता कि पुराने हिन्दू राजा अपने राजकुमारों के विवाह या राजकीय समारोहो पर बहुत ठाठ-बाठ दिखाते थे और राजधानी मे कई प्रकार की सजावटें होती थी, किन्तु जिस सजावट का वर्णन सैयद इन्शा ने किया है यह ईरानी सस्कृति की उपज है । फारसी मे इस सजावट को 'आईन करदन' कहते है ।

'बादशाहि हुस्न आमद सहर रा आई कुनेद'—(मुल्ला ताहर) ।

---

[१] नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करण पृष्ठ ३८ मे 'पत्थर की पुट एक उँगली के पोरे बराबर न लगी थी'—पाठ है । 'बराबर' फ़ारसी शब्द है ।

७ 'सारे बनो मे और पहाडियो मे लालटैनो की[१] झमझमाहट रातो को दिखाई देने लगी और जितनी झीले थी इन सब मे कुसुम और टेसू और हार सिगार तैर गया और केसरी भी थोडी थोडी घूमने मे आ गई और फुनग से लगा जड तक जितने झाड झकाडो मे पत्ते और पत्ती बँधी थी, उन पर रूपहली सुनहरी डाँक गोद लगा कर चिपका दिए।' (पृ० ३२)

दीपावली मनाना, घी के दिए जलाना और आरती उतारना हिंदुओ का पुराना रिवाज है। पारसियो ने ईरान में इसे कुछ अधिक महत्त्व दिया था। चरागा का आकर्षण ऐसा था कि मुसलमान बादशाहो ने भी इसको अपना लिया। पेड़-पौधों, नदी-नालो और झीलो-तालो पर भी चरागा (दीपावली) करना ईरानी रिवाज है।

८. 'इन क्यारियो के बीच मे हीरे, पुखराज, अनबिधे मोतियो के झाड और लालटैनो की भीडभाड की झमझमाहट दिखाई दे और इन्ही लालटैनो मे से हथफूल, फुलझडियाँ, जाही, जुहिया, कदम, गेदा, चमेली इस ढब से छूटें कि देखतो की छातियाँ के किवाड खुल जाएँ और पटाखे जो उछल उछल कर फूटें इनमे से हँसती सुपारी और बोलते पखेरू ढल ढल पडे।' (पृ० ३८)

बारूद का प्रयोग भारत से पहले ईरान मे हुआ था चाहे बारूद के उपकरण भारत के पुराने वैज्ञानिको को पता थे। आतशबाज़ी की विभिन्न वस्तुएँ ईरानियो ने बनाई थी। मुगल-काल मे इस प्रकार के खेल-तमाशे अधिक प्रचलित थे।

९. 'चालीस दिन रात तक जिस घर मे नाच आठ पहर न रहेगा, उस घर वाले से मै रूठ रहूँगा; और यह जानूँगा यह मेरे दुख का साथी नही।' (पृ० ३१)

'जो लोग उनके ब्याह मे जागे है उनके घरो मे चालीस दिन, चालीस रात सोने की नदियो के रूप मे मनि बरसे।' (पृ० ४६)

इन उद्धरणो मे ईरानी सस्कृति के 'चिहलम' मनाने का सकेत है। भारत मे प्रायः सात, तेरह अथवा पद्रह दिन (पक्ष) मनाने का रिवाज रहा है। ईरान मे ४० दिन की तपस्या, व्रत वा समारोह शुभ गिना जाता है।

## उपसंहार

इस लेख का तात्पर्य यही नही कि सैयद इन्शा पर आक्षेप किया जाय कि 'हिदवी छुट और किसी बोली की पुट' क्यो है। अपितु मतव्य यह दिखाना था कि कोई भाषा पूर्ण रूप से अमिश्रित स्वर्ण नही होती। सैयद इन्शा ने अपने ऊपर कठोर प्रतिबध लगाया था फिर भी वे कई अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी एवं

[१]नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करणों में लालटैनों के स्थान पर सर्वत्र 'लालपटो' लिखा है।

पजाबी के शब्द प्रयुक्त कर गए है। हमारे साहित्यकारो को सुडौल और मधुर विदेशी शब्द अपनाने मे सकोच न करना चाहिए और अपनी भाषा मे शताब्दियो से प्रचलित विदेशी शब्दो को अछूत या शूद्र नही समझना चाहिए।

सैयद इन्शा की 'रानी केतकी को कहानी' न केवल ऐतिहासिक रूप मे महत्त्वपूर्ण है अपितु साहित्य, कला और भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी यह एक मूल्यवान् वस्तु है।

# यशपाल के निबन्धों में व्यंग्य-छटा

परिस्थितियो को अपनी सुविधा के अनुकूल बनाने की शक्ति पशु मे नही है, मनुष्य मे है। इस सुविधा को व्यष्टि के स्वार्थ से निकाल कर समष्टि के कल्याण मे लगाया जाता है तो हमारा सामाजिक चौखटा सुन्दर और मजबूत बन जाता है। इस चौखटे मे जो वस्तु ठीक नही बैठती, हास्यास्पद बन जाती है, क्योकि उसमे आकस्मिक और अप्रत्याशित असमानता की झलक फूट पडती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए वह हास-परिहास-प्रिय भी है। उसकी हास्यप्रियता जहाँ उसे अपने जीवन के पुराने मूल्यवान तथ्यो और मान्यताओ पर डटे रहने की शक्ति देती है वहाँ नवीन असगतियो से बचने मे भी सहायता देती है।

हास-परिहास को समझने के लिए तर्क-बुद्धि की आवश्यकता है। यह दूसरी बात है कि हम कभी-कभी अकारण ही दूसरो की देखा-देखी हँस पडते है। ऐसे अवसर की याद हमारे विनोद के बजाय आत्मग्लानि का कारण ही हुआ करती है। श्री यशपाल इसे खूब जानते है। उनके अपने शब्दो मे "मनुष्य मे हँसने की—अपने आपको भूल जाने की—इच्छा उसकी मनुष्यता का एक खास अंग है।" आत्मविस्मृति के साथ अज्ञान को जोड दिया जाए तो वही विनाशकारी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जो बिल्ली के सामने आँखे बद कर लेने से कबूतर की हो जाती है। किन्तु शोषित प्राणी अपनी दरिद्रता, विवशता और हीनता को भुला देने की चेष्टा करता है तो वह अपनी मुक्ति की ओर दो-चार कदम आगे बढ जाता है। यही हास-परिहास का सदुपयोग है।

कृत्रिम आत्मविस्मृति को ही अपना ध्येय मानने वाले नशेबाज लोग और पाखण्डपूर्ण नैतिकतावादी अपने समाज की तबाही का कारण बनते है। उन्हे सचेत करने के लिए अर्थात् मानवता के चौखटे मे वापस लाने के लिए विशेष उपचार की आवश्यकता हुआ करती है। इस उपचार का नाम है—व्यग्य! व्यग्यकार को कुशल शल्यविशारद की भाँति तेज नश्तर से भी काम लेना पड़ता है। वह अपनी कठोरता को छिपाने के लिये हास-विनोद का नमक भी छिडक देता है।

अरबी भाषा की एक लोकोक्ति का भाव है 'भाषण मे हास्य उतना ही हो जितना खाने मे नमक।' यशपाल जी की रचनाओ मे भी हास्य का पुट आटे मे नमक के बराबर है। वे भली प्रकार जानते है कि व्यग्य-विनोद द्वारा मानवी त्रुटियो,

विषमताओ, असंगतियो और पाखडपूर्ण वासनाओ पर हँसने-हँसाने के अतिरिक्त एक विशेष प्रकार का उत्साह भी मिल सकता है, जिससे विषम जीवन को साम्य की ओर लाया जा सकता है। विधायक प्रतिभा, सजीव कल्पना और सशक्त भाषा के सभी सुन्दर उपकरण उनकी कृतियो मे मिलते हैं, किंतु वे अपने मनोवेगो के विस्तार-साम्य के प्रचार को सच्चे साहित्य का प्रमुख आधार मानते हैं। उनका छात्ररुचि वाला मन विपत्ती को परास्त करके ही दम लेता है। 'देशद्रोही' के बद्रीनाथ हो या 'दिव्या' के धर्मस्थ की प्रपौत्री, 'चक्कर क्लब' के गाधीवादी हो या 'बात बात मे बात' के सर्वोदयी महोदय, 'न्याय का सघर्ष' की पढी-लिखी लडकी हो या 'तर्क का तूफान' का अपढ सिपाही—सभी व्यक्तिवादियो के कृत्रिम और अनुपयोगी व्यवहार पर उन्होने विद्रूप-भरे चुटीले व्यग्य-वाण बरसाए है।

उन्हे कही-कही समाज के नग्न तथ्यो का वर्णन भी करना पड़ा है, किन्तु उन्होने अपनी लेखनी को अश्लीलता से सदा बचाए रखा है।

समवेत रूप से हम कह सकते है कि यशपाल ने अपनी ओर से कोई बात बिना तर्क-तराजू पर तोले नही कही। उनकी ईमानदारी सर्वत्र मुखर दीख पडती है। चुभते-चुटीले व्यग्य करते हुए भी उन्होने विनोद-प्रमोद का वातावरण बनाए रखा है और अपने दिमाग को सदा ही ठण्डा रखा है, परन्तु दिल की गर्मजोशी बिगडने नही दी।

'तर्क का तूफान' आदि कहानी-सग्रहो मे वे प्रच्छन्न रूप मे व्यग्य करते रहे किंतु 'न्याय का संघर्ष' मे उन्होने प्रत्यच्च रूप मे व्यग्य किया है। इसके उपरात उन्होने 'चक्कर क्लब' चलाया, 'बात-बात मे बात' गुप्त रखनी चाही, फिर भी उनका व्यक्तित्व छिप नही सका, क्योकि उनके अन्तस्तल के मार्क्सवादी दार्शनिक और प्रगतिवादी इतिहासज्ञ उन्हे निष्क्रिय बैठने नही देते।

मौलिक रूप मे यशपाल जी एक कथाकार है। 'न्याय का सघर्ष' यद्यपि एक निबन्ध-सग्रह है, फिर भी इसके अधिकतर निबन्ध कहानी की-सी घटनाओ और वातावरण से ओत-प्रोत है। 'न्याय' शीर्षक निबन्ध तो एक गिलहरी की करुण कहानी है। अपनी मानवी भावनाओ का मार्मिक चित्रण करके लेखक ने अपने भावुक कविहृदय का परिचय दिया है। इसमे रसमयता भी प्रचुर है, किंतु वे व्यग्य करने से कही नही चूके।

गिलहरी की तुलना मनुष्य से करते हुए वे एक व्यंग्य दयामय परमेश्वर पर भी कसते गए है—"यह तो है गिलहरी की बात। ज़मीन पर जहाँ-तहाँ पड़ा चारा-दाना चुग लेने से उसका पेट भर सकता है और पेड की कोटर उसके लिए घर है। परन्तु हाय रे मनुष्य! तेरे तो हर काम में हज़ार झंझट है और फिर

तेरे सिर पर कौन सी मुसीबत नही ? आँधी-पानी है, आग-बाढ है, भूचाल है, उस पर चोर-डाकू है, अत्याचारी की स्वेच्छाचारिता है और यह सब तुम्हारे दयामय परमेश्वर की इच्छा से—उसके न्याय से ।'

इसी प्रकार राजनैतिक निबन्धो में प्राय विवादो की कथात्मक शैली अपनाई गई है और राजनैतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक समस्याओ का विवेचन व्यग्य-विनोद की छटा के साथ किया है । वातावरण और मानसिक स्थिति का चित्रण सजीव रूप मे किया है । भाव-प्रतिमाओ की मृदुल और तीखी झाँकियाँ दिखाने मे उनकी कल्पना-शक्ति अद्भुत है । क्रोचे इसी शक्ति को कला मानते है—"The origin of art lies in the power of forming images."

यही कारण है कि उनके विवादग्रस्त लेख भी अपनी जटिलता और कटुता को मनोरंजन और विनोद द्वारा मुखर किये रहते है । उनके निबन्धो के शीर्षक भी अपनी निराली फबन से पाठक का मन मोह लेते है, जैसे, मजहब का मुलम्मा, भगवान के कारिंदे, सत्याग्रह का ठेका, रामराज की पुडिया, समाज का चौखटा चर्रा रहा है, गाधीवाद की शव-परीक्षा, आदि । व्यग्य-विनोद की कला का उत्तम रूप 'चक्कर क्लब' के परिचय मे दीख पडता है ।

यशपाल के व्यग्य-विनोद की कला पर रूसी साहित्य का प्रत्यक्ष प्रभाव पडा है । आधुनिक रूसी साहित्य मे प्राय व्यग्यात्मक शैली मे पुरातन और रूढिवादी जर्जर विचारधारा पर नवीन विचारधारा की विजय दिखाने का प्रयास किया जाता रहा हैं । पतनोन्मुख खोखले व्यक्तिवाद को चुनौती देने मे उन्होने मृदुल विनोद और तीव्र व्यग्य का खूब उपयोग किया है ।

हरजन महोदय ने लिखा है—हास्य रस कोई मामूली दिल्लगी की वस्तु नही, हमे इसका भली भाँति उपयोग करना चाहिये ।

गोगोल ( Gogol ), शेद्रिन ( Schchedrin ), चेखोव ( Chekhov ), मयाकोवस्की (Mayakovsky ) आदि साहित्यकारो ने जनता के व्यवहार और परम्परा की त्रुटियो को निर्भीकता से सुधारने, दभी और कपटी व्यक्तियो की पोल खोलने और समाजवादी चेतना को उभारने मे साहस और जोश दिखाया है । वे सच्ची लगन के साथ अपने साम्यवादी विचारो का प्रचार करके उदास मानवता को आशावादी आश्वासन देने मे प्रयत्नशील रहे है ।

जसलावस्की ( Dzaslavsky ) ने लिखा है—'रूसी हास-परिहास का स्रोत लोक-विनोद ही है । लोग अपने दुश्मन पर चुटीली हँसी हँसते है । जब उन्हे अपने हाथों के रचना-कौशल की सफलता का विचार आता है, वे खुशी मे मस्त हो जाते है । उनके हास-परिहास मे जीवन की विपुल शक्ति की बाढ-सी भरी

होती है।'

श्री यशपाल के व्यग्य-साहित्य में मार्क्सवादी सिद्धान्तो का प्रचार, व्यक्तिवाद; पूँजीवाद और रूढिवाद का खण्डन, निराशा, विवशता और कगाली से तीव्र घृणा, तग, कृत्रिम और पीडाजनक परिस्थिति से असतोष सबल कल्पना और विपुल शक्ति के साथ अकित है। उनकी विधायक प्रतिभा ने स्वाभाविकता और सहानुभूति का सदा ही साथ दिया है। उनकी आत्मीयता सदा ही प्रखर और उज्ज्वल बनी रहती है। रूसी प्रभाव को आत्मसात् कर उन्होने हिंदी मे प्राणवान साहित्य का सृजन किया है।

मार्क्स, लेनिन, चेखोव, टॉलस्टाय, और तुर्गनेव की प्रगतिशील तर्क-शैली के बहुत से उपकरण श्री यशपाल के साहित्य मे मिलते है, किन्तु हमे यह नही भूलना चाहिये कि वे अपने आरम्भिक जीवन मे स्वामी दयानद के 'सत्यार्थ प्रकाश' का गभीर अध्ययन करते रहे है। जीवन में दृष्टात और प्रश्नोत्तरी शैली उन्होने वही से अचेत रूप से अपना ली थी। वे सस्कृत की सूक्तियाँ भी कभी-कभी उसी शैली मे दे जाते है। वे पक्के कामरेड है। विचारधारा मार्क्सवादी है, परन्तु बातचीत मे दॉव-पेंच से नही, कठोर सत्य के रूप मे निर्णयात्मक बात कहना चाहते है। इसका क्या इलाज कि कई लोग उनकी कठोर उक्तियो और गहरे मजाक से बदहवास और भौचक्के होकर उन्हे सदा ही सशस्त्र क्रातिकारी के रूप मे ही याद करते है।

कला-पक्ष मे यशपाल जी के पास बहुत कुछ है। इस बुद्धिवादी युग मे उन जैसी उत्कृष्ट गद्य-कला थोडे से उच्च कोटि के लेखको मे ही दिखाई देती है। व्यग्य-विनोद के निबन्धो मे काव्यमय चित्रो के निर्माण का अवसर बहुत कम हुआ करता है, किन्तु उनका भावुक हृदय अपनी कोमल काति दिखा गया है—

'आज प्रशस्त विशाल प्रासादो मे गवाक्ष से आती हुई वर्षा की महीन-महीन फुहार, सामने क्षीण कटि कसी हुई अँगिया मे जीवन दबाये, मेहदी से चित्रित दो उँगलियो से घूँघट का कोना उठा, कान तक फैले नयनो मे मुस्कराहट भर बाण छोडती हुई नायिकाये कहाँ?' [ चक्कर क्लब, पृ० ८

'इन्सान का कौतूहल न माना। इसने इतिहास की धुँधली दूरबीन उठाकर भूत की क्षीण पगडण्डी की ओर देखना शुरू कर दिया और क्या देखा?'

[ न्याय का संघर्ष, पृ० २५

उपमा को अलंकार-शास्त्र ने काव्य की जान माना है। यशपाल जी की रचनाओ मे अछूती उपमाओ का प्रयोग उनकी व्यंग्य-शैली के लिये बहुत सहायक

सिद्ध हुआ है—

'रेडियो के समीप खडी थी प्याज की गाँठ की तरह अनेक छिलको मे लिपट कर रहने वाली एक युवती ।'

'कामरेड अपनी बर्दाश्त से अधिक सुन चुके थे । भाड के चने की तरह चटख कर उन्होने उत्तर दिया ।'

'दार्शनिक गजी मुर्गी की सी अपनी गर्दन उठा तत्परता से उनकी बात सुन रहे थे और बात हाथ मे आते ही ऐसे झपटे जैसे मुर्गी किसी भी वस्तु पर झपट पडती है ।'

व्यग्यकार यशपाल निर्णयात्मक बात कहते-कहते बहुत जगह दार्शनिकता की सीमा तक पहुँच गए है । उनके कई वाक्य सुन्दर सूक्तियो और लोकोक्तियो का स्थान सहज ही पा सकते है ।

'साहित्य के भोजन मे हाजमे के लिये निरी चटनी ही नही कुछ पेट भरने की भी बात हो ।'

'समाज क्या है ? स्थूल रूप मे समाज है हमारे सम्मिलित जीवन का क्रम ।'

'पूँजीवाद पर्देदार चोरी है ।'

'श्रम ही वास्तव मे धन है ।'

'फल जमीन का नही मेहनत का है ।'

'रुपया ही वह डोरी है जो तोप, बन्दूक और तलवार को चलाती है ।'

'हमारे समाज मे औरत की स्थिति पुरुष को रिझा सकने की शक्ति पर निर्भर करती है ।'

'जेल समाज के शरीर मे फोडे है ।'

यशपाल जी की रचनाओ मे हमे उनका चुटीला व्यग्य अनेक रूपो मे चमकता दिखाई देता है । कही वे अपनी व्यग्य-दृष्टि सामान्य औचित्य से भ्रष्ट होने की स्थिति मे करते है तो कही स्थान या देश-विशेष की विशिष्ट स्थिति के कारण उद्भूत कल्पना के रूप मे । बेमेल बातो और पैरोडी द्वारा भी वे हास्य का वातावरण पैदा कर देते है । उनके इन पैने व्यग्यो से उनके अपने प्रिय पात्र कामरेड भी नही बच पाये । यहाँ कुछ एक उदाहरणों द्वारा उनकी बहुमुखी व्यंग्य-शैली की एक झलक मात्र अपेक्षित है ।

(क) सामान्य औचित्य से भ्रष्ट होने के कारण हास्यास्पद परिस्थितियाँ :—

"अपनी सम्पत्ति को पीटने में कुछ बुराई नही । पुराने समय मे रूस मे जब बाप पति (दूल्हा) को लड़की सौंपता था, तो एक हंटर भी वक्त जरूरत के लिए

साथ मे दे देता था" ।

(ख) ठीक समय और स्थान से च्युत होने के कारण हास्यास्पद विषय.—

"और की बात छोडिये, अफ्रीदियो के मौलाना लोगो का ही फतवा है कि रेडियो शैतान की ताकत और आवाज है ।"

(ग) बेमेल बातो द्वारा हास्य का वातावरण .—

"इतिहासज्ञ—परन्तु यह पहचान जो आपने बताई है कि हम मे और आप मे जो कुछ बोलता है, वह आत्मा है । कुत्ते-बिल्ली मे जो कुछ बोलता है, वह आत्मा है तो रेल के इजन मे कौन बोलता है ?"

(घ) पैरोडी—किसी की उक्ति को फेर बदल कर प्रयुक्त करना या उसी की धारणा पर नयी व्यग्यात्मक उक्ति गढ़ना —

"शोषक श्रेणी के प्रतिनिधि ऋषि यह उपदेश तो दे गये कि—

'मा गृध. कस्यस्विद्धनम्'

परन्तु यह नही कहा कि—

'मा गृध कस्यस्विद्-श्रमम्'

क्योकि श्रम वे करते नही थे । कोई उनका श्रम क्या लेता । इससे भी अधिक चतुरता उन्होने यह की कि जनता को समझाया—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् ।'

अर्थात् तुम मेहनत करते जाओ, इस बात की चिन्ता न करो कि फल मिलता है या नही । कारण यह कि कर्म का फल तो वे स्वय खा लेना चाहते थे ।"

[ बात-बात मे बात, पृ० ४१

भाषा-पक्ष मे श्री यशपाल बहुत सफल रहे हैं । वे भाषा की सरलता के पक्षपाती हैं । उन्ही के शब्दो मे—"बात का पूरा असर इसके सीधेपन में है । यही बात क्लिष्ट शब्दो मे कहिये, वह बात नहीं आयेगी ।"

रूखे-फीके और जटिल सिद्धान्तो का सार बहुत सरल और सादे शब्दों में कह देने मे वे सिद्धहस्त हैं—

'अगर मुलम्मा की हुई चीज़ बाजार में सोने के दाम बेच देना चोरी है, तो जो माल जितनी लागत और मेहनत से बना है, उससे ज्यादा दाम वसूल कर लेना क्या चोरी नही ।' [ न्याय का सघर्ष, पृ० ६१

'बात-बात मे जब बात पक्की हो जाती है तो वह 'वाद' का रूप ले लेती है । पण्डितो की भाषा मे उसे 'वाद' कहते है । बात के दो छोर होते हैं, एक आरम्भ का दूसरा अन्त का । जब बात फैल जाती है तो उसके आदि-अंत में

द्वन्द्व होने लगता है, इससे नयी बात या नया ज्ञान पैदा होता है। ज्ञानी लोग बात से नहीं घबराते, उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं।'

[ बात-बात मे बात, पृ० ६

इस प्रकार सरल भाषा व्यग्य-विनोद से सदा मुखर रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि बातचीत सामने हो रही है। इस प्रकार वे पाठक के मन मे अपने भाव और विचार ऐसी आत्मीयता के साथ बिठा देते है जैसे ये उसके अपने विचार हो। वाक्य छोटे किन्तु प्रभावशाली, शब्द सरल किन्तु नपे-तुले, रूप-रंग और नाद की प्रतिमाएँ खडी कर देने वाले। श्री यशपाल की कला का दूसरा नाम सरलता है—वही सरलता जिसके सम्बन्ध मे वाल्ट ह्विटमैन ने कहा है—"कला की पराकाष्ठा, अभिव्यक्ति की रमणीयता और साहित्यिक प्रकाश की झलक सादगी ही है।"

अपनी रचना मे वे जहाँ कही ऐसा शब्द देख पाते है, जो पाठक के लिए कठिन हो, उसका अर्थ कोष्ठको मे दे देते है। 'दिव्या' उपन्यास मे बौद्धकालीन शब्दावली अधिक आ गई थी। आज की भाषा का विचार करके उन्होने इन सस्कृत शब्दो की अर्थावली अत मे दे दी है।

लखनऊ के वातावरण ने यशपाल की भाषा को सरल उर्दू शब्दो से सजीव बनाया है, जैसे "मकान मालिक के मुन्शी की आँखो मे कुछ अदब है। रूखे उत्तर के बजाय तफसील देने की तकलीफ गवारा करते है।"

श्री जैनेन्द्र कुमार ने लिखा है—"यशपाल सस्कृत के शब्दो को पजाबी लिबास मे पेश करेगे तो सस्कृत की कितनी भी दुहाई देने से पाठको का चाव उनके प्रति कम न होगा।" यह ठीक है कि जनभाषा की तद्भव प्रवृत्ति के कारण उन्होने तत्सम शब्दो का प्रयोग कम किया है किन्तु पजाबी लिबास वाले संस्कृत शब्द मुझे नही मिले।

काम की पूर्णता पर जोर डालने के लिए प्राय दोहरी क्रियाएँ लगाई जाती है, जैसे चल दिया, गिर पड़ा, मर मिटा, छुपा लिया आदि। श्री यशपाल जी का मन पूर्णता की ओर इतनी तेजी से भागता है कि कही-कही तो चार-चार क्रिया-शब्द इकट्ठे जुड जाते है।

हर बडे साहित्यकार की भाँति यशपाल जी ने कुछ नए शब्दो और वाक्यांशो का प्रयोग किया है। इनके द्वारा वे प्राय: व्यग्य-विनोद की भावना मे रंग भरा करते है—विप्लवी ट्रैक्ट, बेकार ऐण्ड कम्पनी लिमिटेड, चक्कर क्लब, सम्मानित बेकार या विश्वस्त बेकार, एण्ड कम्पनी या सहायक, बातवीर,

बेकार वीरो का हवाई संगठन, आध्यात्मिक प्रेम, नपुसक प्रेम, चर्खा मारका भगवान, बी० ए०, एम० ए० पति फँसाने का लेबल, साडी-गाडी समाज, वजनी गाली, पिंजरानुमा बैरक आदि।

उत्तम व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे एक चीनी लेखक ने इन तीन उपकरणों के सुन्दर समन्वय का उल्लेख किया है—स्वप्न-दर्शन, यथार्थ की खोज और हास्य की अनुभूति। सौभाग्य से हमारे यशपाल जी मे ये तीनो उपकरण विद्यमान है। उनका व्यक्तित्व सहज ही उत्तम और आकर्षक प्रतीत होता है। उन्होने जीवन की व्याख्या करने का प्रयत्न नही किया, प्रत्युत इसे बदल देने का निरतर प्रयास किया है। जर्जर और खोखली नैतिकता पर हास-परिहास करके, समाज के यथार्थ की आर्थिक और राजनैतिक खोज करके उन्होने सबल और सम्पन्न मानवता के स्वरूप देखे हैं।

वे आडम्बर-हीन, शोषण-हीन, पुष्ट, बलिष्ठ और प्रसन्न मानवता का समाजवादी विकास देखना चाहते है। वे अपने समय के आत्मविस्मृत समाज को झंझोड-झकझोर कर जागृति और क्राति की ओर लाने का कठिन परिश्रम करते रहे है। दासता, पराधीनता, और दरिद्रता को मिटा कर वे स्वतत्रता और प्रगति का वातावरण उत्पन्न करना चाहते है। इस स्वप्न को साकार रूप देने के लिए जवानी ने उन्हे पिस्तौल चलाना सिखाया था। जब एक-एक करके साथी बिछुड गए और गोलियाँ खत्म हो गईं और इन सब चीजो की आवश्यकता भी न रही तो उन्होने अपनी लेखनी की नोक से अपने यथार्थ को अकित करने की साधना की। 'विप्लव कार्यालय' खोल दिया गया।

उनकी सशक्त वाणी मे क्षात्रवीरता, प्रगतिवादी विचारधारा मे तर्कशीलता और व्यग्यात्मक शैली मे करुणा की तीखी मार्मिकता सदैव हुआ करती है। सामाजिक 'सत्यम्' को ही उन्होने 'सुन्दरम्' का रूप देने की चेष्टा की है, परन्तु उनका सत्य अतीत का पक्ष न लेकर वर्तमान से ही अतिरजित रहता है। जहाँ कही वे अपने व्यग्य की आँच तेज होती देखते है, वहाँ हास्य की बर्फ रख देते है। जनता को साथ लेकर वे प्रगति करना चाहते है।

पुराने समय मे बाबू बालमुकुन्द गुप्त निर्भीकता के साथ राजसत्ता के विरुद्ध नोकदार, चुभते लेख लिखते रहे थे, किन्तु उनका द्वन्द्व अस्पष्ट था। यशपाल जी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, आधुनिक कलाकौशल की गभीरता रखते है। अग्रेज व्यंग्यकार स्विफ़्ट की प्रतिभा से इनकी प्रतिभा की तुलना की जा सकती है- अंतर केवल इतना है कि स्विफ्ट महोदय किसी राजनैतिक दल के प्रचार से

बेलाग थे जबकि यशपाल साहित्य को सभी प्रकार के प्रचार का साधन मानते हैं।

यशपाल जी की रचना-शैली मे ऐसे अनेक नश्तर छिपे रहते हैं जो फूलदार रेशमी आवरण मे से गभीर घाव कर सकते है। निस्सदेह वे इस युग के महान व्यंग्यकार है।

# निराला : कुछ संस्मरण

अप्रैल १६३८ मे उर्दू के महाकवि इकबाल का निधन हो गया था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सभवत इस कोटि का कोई और क्रातिकारी ओजस्वी कवि भारत भर में नही होगा, किन्तु सौभाग्य से मुझे काज़ी नजरुल इस्लाम की कविताओ के कुछ उर्दू रूपान्तर मिल गए जो अख्तर हुसेन रायपुरी ने किए थे। मुझे प्रसन्नता हुई कि भारत मे इन्कलाब का जोश फैलाने वाले मौजूद है।

हिन्दी मे इकबाल की कोटि का कौन सा कवि है ? इस जिज्ञासा की तृप्ति के लिये मैंने हिन्दी के कुछ विद्वानो से चर्चा की। मुझे पता चला कि 'निराला' अवश्य इसी कोटि मे आते है। सितम्बर १६३८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से अखिल हिन्दी कवि-सम्मेलन शिमला मे ही किया जाने वाला था। इसी सिलसिले मे महादेवी, नरेन्द्र शर्मा, भगवती चरण वर्मा, निराला आदि उच्च कोटि के हिन्दी कवि पधारे थे। हमारे डी० ए० वी० हाई स्कूल, लक्कड बाजार, मे ही उनके आवास का प्रबन्ध किया गया था। आकाशवाणी दिल्ली द्वारा भी यह कार्यक्रम प्रसारित होने वाला था, इसलिये मुझ जैसे कई नवयुवक विशेष स्थानों पर अनुशासन बनाए रखने के लिये नियुक्त हुए।

शाम को कवि-सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। अभी दो एक कवि ही बोल पाए थे कि एक नवयुवक ने, जाने नरेन्द्र ही थे, कोई कविता पढी। श्रोताओ ने शोर मचाया—'छायावाद है, छायावाद'। मुझे बहुत विस्मय हुआ कि छायावाद क्या बला है ! लोग इससे बिदकते क्यो है ? स्वच्छन्द भावचित्रण, मासलता और नव-छन्द-योजना से लोगो को चिढ थी। इतिवृत्तात्मकता, सुधारवाद और गाधीवाद ने साहित्यिक भाव-धारा को सीमित दिशा मे ही चलने पर विवश कर दिया था। आधुनिकता पनप न सकती थी।

'छायावाद नही चलेगा, छायावाद नही चाहिए'। ऐसी आवाजो के उत्तर मे निर्भीक निराला मच पर आए। लम्बे कद, गौर वर्ण, पुष्ट शरीर, लम्बे स्निग्ध बाल, विशाल ललाट वाले निराला की तेजस्वी सौम्य मूर्ति और आत्म-गौरव की भावभगिमा का विशेष प्रभाव पडा। एक सन्नाटा सा छा गया और वे बोले—'छायावाद अवश्य चलेगा, वरन् हमारा कोई कवि नही बोलेगा।'

श्रोतागण स्तब्ध भाव से उनके कविता-पाठ की प्रतीक्षा करने लगे। शायद पहली कविता थी—

बादल गरजो !
घेर घेर घोर गगन धारा धर ओ !
ललित ललित, काले घुँघराले—
बाल कल्पना के से पाले
विद्युत-छवि उर में
कवि नव जीवन वाले
वज्र छिपा, नूतन कविता फिर भर दो
बादल गरजो !

लोगो के अनुरोध पर उन्होने 'जूही की कली' कविता भी सुनाई। उनकी भाव-लय के अनुसार ही सगीत-लय भी चलती थी। हजारो व्यक्ति मंत्रमुग्ध से हो गए। जिनको शब्दो के अर्थ नही पता चले वे भी कविता-पाठ की सुन्दर शैली पर रीझ गये। निराला जी सचमुच निराला बाँकपन रखते थे। इनके व्यक्तित्व की दृढता ने आधुनिक काव्यधारा को प्रवाहमय बनाया वरन् रूढिग्रस्त इतिवृत्तात्मकता के पुजारी नवाकुरित छायावाद की कोमल-कात-पदावलि, चित्रमयता, अप्रस्तुत योजना और लाक्षणिकता के सुन्दर प्रयोगो से हिन्दी-काव्य को कदाचित् वचित ही रखते।

उस दिन एक सकुचाती लडकी की कापी पर उन्होने हस्ताक्षर करते हुए लिखा था—

छोडो यह हीनता
साँप आस्तीन का
फेको दूर
मिलो भाइयों से
व्याधि भारत की छुट जाए।

मई, १९५७ के दूसरे सप्ताह मे परिमल परिगोष्ठी का वार्षिक अधिवेशन था। दूर-दूर से साहित्यकार बुलाए गए थे। मैं खोजवीन के सिलसिले मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे अध्ययन करने गया हुआ था। सौभाग्य से इस परिगोष्ठी मे मुझे कई प्रसिद्ध कवियो और लेखको के दर्शन प्राप्त हुए, किन्तु मेरी आँखे निराला को न देख सकी। वे उन दिनो अस्वस्थ तो थे किन्तु मेरा विचार था कि थोडी देर के लिये शायद वे आ ही जायेगे। ऐसा न हुआ।

पूज्य भ्राता डा० हरदेव बाहरी ने जो उन दिनो परिमल के संयोजक थे, निराला जी के दर्शन करवाने का प्रबन्ध कर दिया। मैं डा० जगदीश गुप्त के

यहाँ पहुँचा। वे कहने लगे 'भई ! निराला जी के पास इन दिनो जाना खतरे से खाली बात नही। वे विक्षिप्त अवस्था मे जाने क्या कर बैठें, क्या कह बैठें !! कई व्यक्तियो को निराश हो लौटना पडता है !'

मैने कहा—"कोई बात नही, भोले शकर कभी-कभी दयालु भी हो जाते है। बिना दर्शन किए जाना मेरे लिए कठिन है।" और वे बडी उदारता के साथ मेरे साथ चल पडे। एक दो गलियो के मोड से गुजर कर हम मकान न० ७८० ए पर जा रुके।

यह मकान बहुत मामूली-सा था। एक छोटे से कमरे में चारपाई पर 'निराला' लेटे हुए थे, छोटी-सी धोती पहने, पेट बढा हुआ, बाल अस्त-व्यस्त, दाढी भी रखी हुई, सफेद बालो मे कुछ काले बाल भी जवानी की यादगार के रूप मे मौजूद थे। मेरे मन को धक्का सा लगा। वह १९३८ वाला निराला इतना परिवर्तनशील हो सकता है !! डा० गुप्त द्वारा मेरा-परिचय मिलने पर उन्होने सुरती की चुटकी लेते हुए अपने पडोसी राधाकृष्ण को बुलाया—

'देखो डाक्टर हरदिओ बाहरो के भाई आए हैं, गुप्त जी कहते हैं ये उर्दू फारसी के विद्वान् है। हिन्दो के प्रोफेसर भी है।'

हम दोनो उन पुरानी कुर्सियो पर आगे झुके हुए बहुत गम्भीरता से उनकी बात सुनते रहे। सामने के आले मे दो-तीन अग्रेजी के ग्रन्थ पडे थे जिनमें से एक था 'Paradise Lost'। वे उस दिन अच्छी मन स्थिति मे थे। कहने लगे—उर्दू भी अच्छी भाषा है। एक शिअर है—

**भले है दोस्त से दुश्मन जो बढ़ कर नाम लेते हैं।**
**गुलों से खार बेहतर हैं जो दामन थाम लेते हैं॥**

इस भाव को फारसी मे यो कहेंगे—

**बले अज़ दोस्त बिह् दुश्मन बुलंदो नाम बिसतानी।**
**बहस्ती खारि-गुल बिहतर बदस्ते तारि दामानी॥**

मुझे आश्चर्य हुआ कि हिन्दी, बगला और सस्कृत का यह प्रकाड पडित उर्दू-फारसी भी इतनी अच्छी जानता है।

'हिन्दी को वह स्थान नहीं मिला जो दुनियाँ की किसी राष्ट्रभाषा को सहज ही प्राप्त होता है। विदेशी भावधारा ने हमारी सस्कृति को कुठित कर डाला है—औरते मर्द बनना चाहती है। स्त्री को राजदूत नियुक्त करके हमारे शासक बहुत गर्व का अनुभव करते है।'

'आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रति आपका क्या विचार है ?' मैने बहुत ही दबे शब्दों मे पूछा।

'आधुनिक कवियो मे लम्बी साँस नही रही। रामचरित मानस जैसा कोई काव्य-ग्रन्थ निर्मित नही हो सका—पुराने युग मे बडे-बडे महाकाव्य रचे गए। क्यो प० राधा कृष्ण जी! वह सबल सिंह चौहान की 'महाभारत' रचना कितनी सुन्दर थी, वह जो हम पढा करते थे, यो तो हम बीरबल विनोद भी पढते थे.

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ वे शिथिल हो रहे हैं और उनकी यह करुणाजनक दशा देखते-देखते मेरी आँखो के आँसू मचल रहे थे—इकबाल के कुछ वाक्य याद आ रहे थे—

**गाफिल अपने फल की शीरीनी से होता है शजर**
**कद्र पहचानी न अपने गौहरि यक दाना की।**

भारत कितना कगाल है, इस तथ्य का अनुमान मैं निराला की उस उपेक्षित दशा से लगा सका। इतने बडे साहित्यकार का ऐसा आवास? यह सामान? यह सेवा?

अपने आक्रोश एव दारुण रुदन को सम्हालते हुए मैंने उठकर उनके पाँव छुए। डा० जगदीश गुप्त भी उठने लगे। मैंने कहा—'अठारह वर्ष के बाद आपके दर्शन नसीब हुए, पहले आपको १६३८ मे शिमले मे देखा था ।'

'अरे भाई! वह निराला और था, वह तो कब का चला गया।'

हमारी आँखें इस व्यजित वेदना से डुबडुबा गईं और वे कह रहे थे—

**पसे मर्ग मेरे मजार पर जो दीया किसी ने जला दिया।**
**तेरी खाक बन के पतंग फिर लगी कहने तूने यह क्या किया॥**